ISSN 2321-4945

UGC CARE Research Journal

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 72 ● अंक : 5/6 ● अगस्त/सितंबर, 2022

आज़ादी का अमृत महोत्सव

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका

UGC CARE Research Journal

वर्ष : 72 अंक : 5/6 अगस्त/सितंबर-2022

परामर्श मंडल

श्री भारतभूषण महंत
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

प्रो. आर.एस. सर्राजु
सम कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

प्रो. प्रदीप के शर्मा
कुलसचिव, उच्च शिक्षा शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
टी. नगर, चेन्नई (तमिलनाडु)

डॉ. दीपक प्रकाश त्यागी
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

डॉ. दिलीप कुमार मेधि
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अच्युत शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

संपादक

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-1

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature, Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :
प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32
फोन : 9101541395, 9101541380
ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सदस्यता शुल्क :
प्रति अंक : रु.50/- (व्यक्तिगत)
प्रति अंक : रु.100/- (संस्थागत)

अलंकरण : रतिकांत कलिता

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा मेसर्स शराइघाट फोटो टाइप्स प्रा.लि., गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

हिंदी विभाग

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
	संपादकीय/आजादी का अमृत महोत्सव और हिंदी		5
1.	स्वतंत्रता संग्राम में उत्तर-पूर्वांचल का योगदान	✍ डॉ. भूपेंद्रराय चौधरी	6
2.	स्वतंत्रता संग्राम और स्वतंत्र भारत में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका	✍ प्रो. मोहन	16
3.	गाँधी की दृष्टि में राष्ट्रभाषा हिंदी	✍ डॉ. अच्युत शर्मा	19
4.	स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी-काव्य का अवदान	✍ प्रो. सुशील कुमार शर्मा	25
5.	भारत में राष्ट्रभाषा का प्रश्न और हिंदी	✍ डॉ. कंचन शर्मा	31
6.	भारतीय स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी भाषा	✍ डॉ. नवनाथ गाडेकर	34
7.	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी कविताएँ	✍ डॉ. इबरार खान ✍ डॉ. बनवारी लाल मीना	40
8.	महात्मा गाँधी और हिंदी	✍ डॉ. आकाश वर्मा	47
9.	संभावनाओं व चुनौतियों के झंझावात और हिंदी	✍ डॉ. निशा यादव	52
10.	भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी का योगदान	✍ डॉ. अमित कुमार शर्मा	57
11.	समाचारपत्रों एवं अन्य संचार माध्यमों में हिंदी की स्थिति	✍ डॉ. कोंखाम फूल्लोना देवी	62
12.	स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी की भूमिका	✍ डॉ. चंदना शर्मा	66
13.	स्वतंत्रता संग्राम और प्रेमचंद का साहित्य	✍ डॉ. नंदिता दत्त	70
14.	भारत में राष्ट्रवाद का उदय : एक ऐतिहासिक योगदान	✍ अर्चना ✍ डॉ. आशा यादव	74
15.	हिंदी के विकास में महात्मा गाँधी का योगदान : एक अवलोकन	✍ सूर्य प्रकाश	81
16.	रानी लक्ष्मीबाई : स्वतंत्रता संग्राम की वीरांगना	✍ सविता ✍ डॉ. आशा यादव	86
17.	हिंदी कविता की जातीय धारा	✍ सत्येंद्र पाण्डेय	91
18.	स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी उपन्यासों का योगदान	✍ उर्मिला भगत	98
19.	भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में असमीया महिलाओं का योगदान	✍ किरण कलिता	102
20.	राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम और हिंदी पत्रकारिता	✍ शिप्रा शुक्ला	108
21.	शहीद मांगरी उरांव का अनकहा इतिहास और असहयोग आंदोलन	✍ प्रवीण बोरा	113

অসমীয়া বিভাগ

24.	ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলন আৰু অসমীয়া উপন্যাসত ইয়াৰ প্ৰভাৱ	✍ ড° অন্বেশ্বৰ গগৈ ✍ দিপাংকৰ বৰুৱা	117
25.	মহাত্মা গান্ধীৰ ভাষা বিষয়ক চিন্তা-চৰ্চা হিন্দী ভাষা আৰু স্বাধীনতা সংগ্ৰাম ঃ এটি অধ্যয়ন	✍ ড° কণিমা পাঠক	126
26.	অসমীয়া গীতি কবিতাত মহাত্মা গান্ধী	✍ বিকাশ দাস	129
27.	শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা কৰ্মৰত শিক্ষকসকলৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীৰ অভিগম্যতা আৰু ব্যৱহাৰযোগ্যতা ঃ এক গুণগত অধ্যয়ন	✍ জুল দত্ত ✍ ড° নৃপেন্দ্ৰ নাৰায়ণ শৰ্মা	136
28.	‘কুশল শইকীয়াৰ গল্প ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	✍ প্ৰণিতা কাকতি ✍ হিৰণ্য কুমাৰ বৰা	147

संपादकीय

आजादी का अमृत महोत्सव और हिंदी

अगस्त और सितंबर का यह संयुक्तांक आपको सौंपते हुए अपार प्रसन्नता हो रही है। हमारे लिए ये गौरव और उमंग के महीने हैं। इन्हीं महीनों में 15 अगस्त 1947 को हमें आजादी मिली और 14 सितंबर, 1949 को हिंदी को संविधान में राजभाषा का दर्जा दिया गया। इसीलिए यह महीना हमारे लिए विशेष है। यह सुखद संयोग है कि देश आजादी के अमृत महोत्सव से अब आजादी के अमृत काल के महोत्सव की ओर अग्रसर है। सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता आंदोलन से भारत एक नए युग में प्रवेश करता है। इस आरंभिक आंदोलन से भविष्य में आंदोलन को सफलता तक पहुँचाने के लिए कई सूत्र मिलते हैं। इसमें पहला सूत्र यह मिलता है कि पूरे देश में समन्वय के लिए एक संपर्क भाषा का होना अनिवार्य है। इस अभाव की ओर स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेने वाले राजनीतिज्ञों और विचारकों ने ध्यान दिया। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक एकता की भाषा के रूप में हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया गया। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का विकास एक महत्वपूर्ण घटना है। इसका सर्वाधिक श्रेय हिंदीतर भाषी क्षेत्र के समाज सुधारकों, साहित्यकारों एवं राजनीतिज्ञों को है। इस दिशा में स्वामी दयानंद सरस्वती, केशवचंद्र सेन, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, चक्रवर्ती राजागोपालाचारी एवं महात्मा गाँधी ने पहल की। स्वाधीनता आंदोलन के दौर में हिंदी की भूमिका एक राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में उभरी। उदाहरण के तौर पर राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगीत इसी तरह से राष्ट्रभाषा। महात्मा गाँधी ने राष्ट्रभाषा हिंदी को राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता आंदोलन का हथियार बना दिया। इसी के सहारे महात्मा गाँधी ने पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का स्वप्न देखा था। इसकी पहली परिणति सन् 1918 में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना है। दूसरी परिणति है सन् 1938 में असम हिंदी प्रचार समिति की स्थापना। इसके संस्थापक अध्यक्ष थे लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै। आगे चलकर इस संस्था का नामकरण हुआ - असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति। यही संस्था आज भी पूरे पूर्वोत्तर भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार में पूरी तरह से समर्पित है।

स्वाधीनता के लिए जब-जब आंदोलन तेज हुआ, तब-तब हिंदी की प्रगति का रथ आगे बढ़ता रहा। सबसे पहले नेतृत्व देने वाले नेताओं ने यह पहचान लिया था कि विगत 600-700 वर्षों से हिंदी ही संपूर्ण भारत की एकता की कारक रही है। हिंदी का विकास आरंभ से ही एक संपर्क भाषा के रूप में हुआ। यह हमारी अपनी भाषा है। अपनेपन की भाषा है। इसीलिए इसे जनतंत्र की विजयगाथा कहा गया। इस भाषा ने भारत की कई भाषाओं के साथ अटूट संबंध बनाया। मनुष्य के भीतर भाषा ही एक ऐसा व्यापार, व्यवहार, लक्षण है, जो प्रकृति की देन है। वह हमारे जीवन के सबसे करीब है। भाषा हमारे समाजीकरण का माध्यम है। हिंदी का अपना गौरवशाली अतीत रहा है और विकासशील वर्तमान भी है। इसी के साथ ही हिंदी विश्व के भविष्य और भविष्य के विश्व की भाषा है। इस स्थिति में हिंदी को लेकर हमारी जिम्मेदारी भी बढ़ जाती है। हिंदी के ऊपर देश की सभी भाषाओं को एक साथ लेकर चलने का दायित्व है। इसके साथ ही संपर्क और संवाद कायम करने का भार है। इसी के साथ देश की एकता और अखंडता स्थापित करने की बड़ी जिम्मेदारी है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि संस्कृतियों के प्रसार में भाषाओं की गतिशील भूमिका रही। भाषाएँ बेहतर दुनिया रचने में मदद करती हैं। आइए हम भी इस दिशा में आगे बढ़ें।

(मोहन)

स्वतंत्रता संग्राम में उत्तर-पूर्वांचल का योगदान

डॉ. भूपेंद्रराय चौधरी

प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष
हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय
आवास :
16, सतीर्थ पथ, मथुरा नगर
डाक : असम सचिवालय
गुवाहाटी–781006 (असम)
मो. 098642–70122

हिमालय के पादप्रांत में स्थित प्राकृतिक सुषमा से सुशोभित एवं विशाल ब्रह्मपुत्र की प्राणरेखा से संजीवित भारतवर्ष का उत्तर–पूर्वांचल कभी 'प्रागज्योतिष', कभी 'कामरूप' के नाम से जाना जाता था। सदियों के बाद वही भूखंड 'असम' हुआ और राजनीतिक कारणों से खंडित होकर कई राज्यों में बँट गया। असम का नागा पहाड़ जिला 1963 में 'नागालैंड' बना, लुसाई पहाड़ 'मिजोरम' बना, उत्तर–पूर्व सीमांत अंचल 'अरुणाचल' बना तथा खासी–जयंतिया पहाड़ 'मेघालय' के रूप में सामने आया। इनके अतिरिक्त उत्तर–पूर्वांचल को समृद्ध किया 'मणिपुर' और 'त्रिपुरा' ने, प्रशासनिक सुविधा के लिए इसके साथ 'सिक्किम' भी जुड़ा। इस प्रकार भारत का उत्तर–पूर्वांचल आठ फूलों से महक उठा।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम का तात्पर्य है – ब्रिटिश शासन से देश को मुक्त करने के लिए देशवासियों द्वारा किया जानेवाला आंदोलन। इसके पूर्व भी देश के विभिन्न भागों में स्वतंत्रता की अनेक लड़ाइयाँ लड़ी गई थीं। मुगल साम्राज्य के खिलाफ भी राष्ट्रवीर शिवाजी महाराज ने 'हिंदवी स्वराज्य' हेतु युद्ध लड़े थे। 1857 में बहादुरशाह जफर के नेतृत्व में अंग्रेजों के खिलाफ प्रथम स्वतंत्रता संग्राम तो प्रारंभ हुआ, परंतु इसी वर्ष 21 सितंबर को मेजर हडसन के सामने मुगल सम्राट के आत्मसमर्पण के साथ ही उसका अंत हो गया। 1885 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा संचालित और महात्मा गांधी के नेतृत्व में 1920–21 के 'असहयोग आंदोलन' से लेकर 1942 के 'भारत–त्याग' तक स्वतंत्रता आंदोलन ने गति पकड़ी और इसने पूरे देशवासियों को एकत्र किया, जिसके परिणामस्वरूप 15 अगस्त, 1947 को द्विखंडित रूप में भारत स्वतंत्र हुआ।

स्वतंत्रता आंदोलन के समय उत्तर–पूर्वांचल में स्थित नागालैंड, अरुणाचल, मेघालय, मिजोरम असम के ही जिले थे। उस समय इन पहाड़ी और दुर्गम स्थानों में यातायात की विशेष सुविधा न थी, शिक्षा का प्रचार–प्रसार न के बराबर था, संचार–माध्यम की भी दीन–हीन दशा थी। फिर भी राष्ट्रव्यापी स्वतंत्रता आंदोलन की चिनगारी वहाँ भी फैली थी।

असम

असम में आहोम स्वर्गदेव (राजा) गौरीनाथ (1780-1895) ने 'मोवामरीया' अर्थात् वैष्णव-संतों के विद्रोह को शांत करने के लिए 8 नवंबर, 1789 को ग्वालपाड़ा में ईस्ट इंडिया कंपनी के राजनैतिक सलाहकार ह्यू वैली से सैनिक सहायता माँगी थी। कंपनी ने कैप्टन थॉमस वेल्स के नेतृत्व में 550 सैनिकों की एक टुकड़ी भेजी। 1792 के नवंबर महीने में विद्रोह को शांत करने के बावजूद 1794 के मई महीने तक अंग्रेज असम में डटे रहे। अपना आभार प्रकट करने के लिए स्वर्गदेव गौरीनाथ सिंह ने ईस्ट इंडिया कंपनी से 28 फरवरी, 1793 को एक वाणिज्यिक संधि की, जिससे उन्हें असम में व्यवसाय करने की अनुमति प्राप्त हुई।

स्वर्गदेव गौरीनाथ सिंह के बाद अन्य दो राजा हुए कमलेश्वर सिंह (1795-1810) और चंद्रकांत सिंह (1810-1818)। चंद्रकांत सिंह के समय उनके प्रधानमंत्री पूर्णानंद बुढ़ागोहाँई के साथ गुवाहाटी के आहोम राजप्रतिनिधि एवं समधी बदनचंद्र बरफुकन का वैमनस्य हुआ, जिसके कारण बर्मी सेना की सहायता से बरफुकन ने 1817 की अप्रैल में अपना अधिकार प्राप्त कर लिया, परंतु अगस्त महीने में राजनैतिक साजिश का शिकार हुए। बर्मी सेना ने 1817 के बाद पुन: 1718 और 1721 में असम पर आक्रमण किया। इसके परिणामस्वरूप बर्मी सेना का आहोम शासन पर अधिकार हो गया। बर्मियों को असम से भगाने के लिए पुन: आहोम शासन को ईस्ट इंडिया कंपनी से सहायता माँगनी पड़ी। कंपनी ने सैनिक सहायता से बर्मी सेना को असम से खदेड़ा, परंतु आहोम शासन और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच 26 फरवरी, 1826 को होनेवाली 'यांडाबु संधि' के कारण असम अंग्रेजों के अधिकार में चला गया। आहोम के अंतिम राजा स्वर्गदेव कंदर्पेश्वर सिंह को अनुग्रह राशि मिलने लगी।

असम में अंग्रेजों का अधिकार होने पर पदच्युत राजा चंद्रकांत सिंह ने 1828 में चिंफौ, खामती, गारो, खासी आदि जनगोष्ठियों से मिलकर स्वतंत्रता की लड़ाई छेड़ दी। राजा का साथ होनेवालों में विशिष्ट जन थे - जीउराम दुलीया बरुवा, धनंजय बरगोहाँई, उनका पुत्र हरनाथ बरगोहाँई, पियलि फुकन, गमधर कोंवर आदि। कैप्टन रिसर्ड्स के नेतृत्व में अंग्रेज फौजों ने विद्रोहियों को तितर-बिहर किया, परंतु कुछ सिपाही पकड़े गए। अत: नवंबर में पंचायत हुई। कैप्टन नौविल के समक्ष हरनाथ बरगोहाँई, जीउराम दुलीया बरुवा, रूपचंद्र कुँवर, देउराम दिहिंगीया फुकन, बम चिंफौ, पियलि फुकन आदि को उपस्थित कराया गया। प्रशासन के खिलाफ विद्रोह करने के कारण शिवसागर के जयपुखुरी के तट पर दोषी पाए जानेवाले पियलि फुकन और जीउराम दुलीयाबरुवा को फाँसी दी गई। अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करके 1828 में ही असम के दो वीर शहीद हुए।

आहोम शासन के अन्यतम मंत्री मणिराम देवान (21 अप्रैल, 1806-26 फरवरी, 1858) को ईस्ट इंडिया कंपनी सरकार के कैप्टन निउफदाइन ने 1828 में तहसीलदार की पदवी दी। अपनी सूझबूझ से मणिराम ने काफी कर-वसूली करके सरकारी खजाने को भरा। इससे संतुष्ट होकर सरकार ने उन्हें तहसीलों के अधिकारी का दायित्व देकर 'बरभंडारी बरुवा' बनाया, परंतु अंग्रेजों के अपमानजनक बरताव से असंतुष्ट होकर मणिराम ने पद से इस्तीफा दे दिया। अंग्रेजों से लोहा लेने के लिए मणिराम ने मौके की प्रतीक्षा की। 1857 में कलकत्ता जाने पर उन्हें प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन की जानकारी मिली और इससे प्रभावित होकर 1857 की दुर्गा-पूजा के समय अंग्रेजों की बलि चढ़ाकर पुन: कंदर्पेश्वर सिंह को राजा बनाने की योजना को आगे बढ़ाते हुए विद्रोह प्रारंभ किया। डिब्रुगढ़, ग्वालपाड़ा और पहाड़ों से सटे चाय बगीचों के विद्रोहियों ने उग्र रूप धारण किया। अंग्रेजों ने विद्रोह पर काबू पाने के लिए धड़-पकड़ शुरू की, स्वर्गदेव कंदर्पेश्वर सिंह को बंदी बनाया गया।

मणिराम देवान, पियलि बरुवा, दुतिराम बरुवा, बहादुर खनिकर आदि अनेक विद्रोही नेता पकड़े गए। अंग्रेजों ने दिखावे के लिए पंचायत की। इन विद्रोहियों पर मुकदमा चलाया और अंतत: दोषी करार देकर 26 फरवरी, 1858 को जोरहाट की टोकलाई नदी के तट पर

मणिराम देवान और पियलि बरुवा को फाँसी दी। स्वर्गदेव कंदर्पेश्वर सिंह को कलकत्ते के अलीपुर जेल में स्थानांतरित किया गया। इस प्रकार असम में प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन की चिनगारी को अंग्रेजों ने बुझा दिया।

1905 के बंग-भंग आंदोलन का प्रभाव यहाँ भी पड़ा था, परंतु यह आंदोलन गुवाहाटी-कछाड़ में ही सीमित रहा। ब्रिटिश सरकार की देश-विरोधी गतिविधि को बाधा देने के लिए 1903 में 'असम एसोसिएशन' की स्थापना हुई थी। इसके अध्यक्ष बने गौरीपुर के उदारवादी राजा प्रभातचंद्र बरुवा, महामंत्री हुए गुवाहाटी के माणिकचंद्र बरुवा और सह-मंत्री बने जोरहाट के जगन्नाथ बरुवा। 22-24 अप्रैल, 1905 में डिब्रुगढ़ में इसका प्रथम अधिवेशन हुआ और अंततः 1918 से लगातार भारतीय कांग्रेस से इसका संबंध स्थापित हुआ। 1918 में दिल्ली, 1919 में अमृतसर और 1920 में कलकत्ता के कांग्रेस अधिवेशन में एसोसिएशन की तरफ से नवीनचंद्र बरदलै ने प्रतिनिधित्व किया था। अंततः इस एसोसिएशन का कांग्रेस में विलय हुआ। नवीनचंद्र बरदलै, कुलधर चलिहा, चंद्रनाथ शर्मा आदि नेताओं ने 5 जून, 1921 को 'असयम प्रदेश कांग्रेस समिति' का गठन किया। बरदलै के आवास में ही कांग्रेस-कार्यालय खोल गया। असम के स्वतंत्रता संग्राम में गुवाहाटी के त्रिमूर्ति - कर्मवीर नवीनचंद्र बरदलै (3 नवंबर, 1875 - 12 फरवरी, 1936), देशभक्त तरुणराम फुकन (22 फरवरी, 1877-28 जुलाई, 1939) और लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै (6 जून, 1890 - 5 अगस्त, 1950) के अपार योगदान को स्मरण किया जा सकता है, जिनके नेतृत्व में असमवासियों ने उसे सफल बनाया।

असम प्रदेश कांग्रेस समिति के आमंत्रण पर गांधीजी यमुनालाल गांधी, कृष्ण दास, मौलाना मुहम्मद अली आदि के साथ 18 अगस्त, 1921 को असम पहुँचे। गुवाहाटी में तरुणराम फुकन के घर में अतिथि हुए और उसी दिन विशाल सभा में विदेशी वस्त्रों का दाहन-यज्ञ कर असम में 'असहयोग' का बिगुल बजाया। इस दौड़ में गांधीजी ने असम के तेजपुर, नगाँव, जोरहाट, डिब्रुगढ़, सिलचर की विभिन्न सभाओं में भाग लेकर जनता से असहयोग आंदोलन में भरपूर सहयोग देने का आह्वान किया था।

मणिराम देवान, पियलि बरुवा, दुतिराम बरुवा, बहादुर खनिकर आदि अनेक विद्रोही नेता पकड़े गए। अंग्रेजों ने दिखावे के लिए पंचायत की। इन विद्रोहियों पर मुकदमा चलाया और अंततः दोषी करार देकर 26 फरवरी, 1858 को जोरहाट की टोकलाई नदी के तट पर मणिराम देवान और पियलि बरुवा को फाँसी दी। स्वर्गदेव कंदर्पेश्वर सिंह को कलकत्ते के अलीपुर जेल में स्थानांतरित किया गया। इस प्रकार असम में प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन की चिनगारी को अंग्रेजों ने बुझा दिया।

1921 में गाँधीजी के असम भ्रमण से प्रभावित होकर असम प्रादेशिक कांग्रेस ने राष्ट्रीय कांग्रेस का 41वाँ अधिवेशन गुवाहाटी में रखा। स्वागत समिति के अध्यक्ष तरुणराम फुकन और महामंत्री नवीनचंद्र बरदलै के अपार परिश्रम के फलस्वरूप 26 - 28 दिसंबर, 1926 तक गुवाहाटी के पांडु में राष्ट्रीय कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। अधिवेशन की अध्यक्षता की थी श्रीनिवास आयंगर ने। पांडु कांग्रेस अधिवेशन को गांधीजी, मोतीलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, राजेंद्र प्रसाद, पं. मदन मोहन मालवीय, मुह्हमद अली, शौकत अली, सरोजिनी नायडू, अब्दुल कलाम आजाद, रंगा स्वामी आयंगर समेत अनेक राष्ट्रीय नेताओं ने सुशोभित किया। केवल सोलह हजार निवासियों के गुवाहाटी में कांग्रेस अधिवेशन को सफलतापूर्वक संपन्न कराने में गांधीजी ने आश्चर्य प्रकट किया था। पर स्वामी श्रद्धानंद की हत्या की घटना से अधिवेशन में शोक छाया रहा।

1930 के 'कानून तोड़ो' और 1942 के 'भारत छोड़ो' आंदोलन ने असम के जनजीवन में स्वतंत्रता की आग भड़का दी। प्रदेश के नेताओं की धड़-पकड़ शुरू हुई। इसके बावजूद तिरंगा झंडा फहराने जाते समय ब्रिटिश सरकार के सिपाहियों ने अनेक सत्याग्रहियों के प्राण लिये। हेमराज बरदलै, गुणाभि पाटर, कलाइ कोछ, हेमराज बरा, तिलक डेका, भोगेश्वरी फुकननी, लक्ष्मी हाजरिका, बलो सूत, ठगी सूत, राउतराम कछारी, मदन बर्मन, कनकलता, मुकुंद काकति, मनवर नाथ, तिलेश्वरी बरुवा, मदन राओता, निधानु राजवंशी, कमला मिरि आदि अनेक स्त्री-पुरुष शहीद हुए। रेल उड़ाने के दोष में कुशल कुँवर को फाँसी दी गई। 'भारत त्याग' अर्थात् बयालीस के गण-विप्लव के समय असम में छिटपुट आतंकवादी गतिविधियाँ भी चलीं, जिनमें सैनिक कैंप में बम रखना, सैनिक रेल-पटरियों को नुकसान पहुँचाना इत्यादि शामिल है। गांधी जी 1934 और 1946 में भी असम दौरे पर आए थे और उनके भाषणों से सत्याग्रहियों को लड़ने का साहस मिला था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व असम को 'ग' श्रेणी युक्त कर पाकिस्तान का हिस्सा बनाने का कूट-कौशल भी गांधी जी के आशीर्वाद और लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै की दृढ़ता से निरस्त हुआ।

अरुणाचल

सन् 1826 को आहोम शासन के साथ ईस्ट इंडिया कंपनी की 'यांडाबु संधि' होने के उपरांत समग्र ब्रह्मपुत्र घाटी उपनिवेश शासन के अंतर्गत आ गया। इसके तुरंत बाद असम और आदिवासी गाँवों में पुलिस चौकियाँ बैठाई गईं। इससे आदिवासियों को खतरा महसूस हुआ और उनकी स्वतंत्रता छिनती दिखने लगी। फलत: अंग्रेजों के खिलाफ आदिवासियों का क्रोध भड़क उठा। धीरे-धीरे आदि (आबर) भूमि पर अंग्रेजों का दखल बढ़ने लगा और विरोध करने पर प्रजा को तरह-तरह से सताया जाने लगा। जब तत्कालीन शदिया (असम) का सहकारी राजनैतिक अधिकारी मि. नोयेल विलियमसन सिपाहियों के साथ पासीघाट के समीपस्थ यंगरू गाँव आया, तब उस गाँव के मुखिया मातमुर जमोह का खून खौल उठा। मातमुर जमोह के अपने साथी लतियांग तालोह के साथ यंगरू गाँव से कमसिंग गाँव तक चलकर योजना बनाई। उन्होंने केबांग गाँव में जाकर अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए एक टुकड़ी तैयार की, जिसमें लमलो दरंग, बापक लेरांग, लानंरुग तामुक, नामु नोनांग, बिसंग ताबिओं आदि शामिल हुए। मि. नोमेल विलियमसन के नेतृत्व में सिपाही की एक टुकड़ी ने कमसिंग गाँव में और डॉ. ग्रेगर्सन की टुकड़ी ने सियांग नदी पार कर पनजी गाँव में डेरा डाला। 31 मार्च, 1911 को मातमुर जमोह और उसके साथियों ने दोनों अंग्रेज अधिकारियों समेत 42 सिपाहियों को मौत के घाट उतार दिया। इसी वर्ष अक्तूबर में मेजर जनरल हेमिल्टन बाओर ने घेरा डालकर विद्रोहियों को पकड़ा और उन्हें अंडमान जेल की सजा दिलवाई।

अरुणाचल प्रदेश के लोहित जिले में इथुन घाटी के एलोपेन नामक गाँव के कृषक परिवार के ताजी मीदेरिन ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर 1905 में विक्रांत नदी के तट पर तीन अंग्रेज अधिकारियों की हत्या कर दी। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए ताजी-मीदेरिन ने निशमी संगठन खड़ा किया और गोरे शासकों पर आक्रमण जारी रखे। उन्हें पकड़ने के लिए अंग्रेजों ने अनेक प्रयास किए और आखिर 1917 में धोखे से शदिया में पकड़ लिए गए। अंग्रेजों ने उनके ऊपर हत्या का मुकदमा चलाया और तेजपुर जेल में 11 जनवरी, 1918 को फाँसी पर चढ़ा दिया।

अरुणाचल प्रदेश के पश्चिमी सियांग क्षेत्र के बासार मंडल के दारिंग गाँव के मीजे रीबा संत स्वभाव के थे, इसलिए लोग उन्हें 'आबो निजी' (अर्थात् 'बापू') कहकर संबोधित करते थे। गांधी जी के आह्वान को सुनकार और असम के गोपीनाथ बरदलै से दिशा-निर्देश लेकर उन्होंने दारिंग के लोगों की एक सभा बुलाई और स्वतंत्रता संग्राम के लिए आह्वान किया। बरदलै जी की सहायता से वे राष्ट्रीय कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्ता बने। इन्होंने अरुणाचल में भारतीय कांग्रेस की इकाई की स्थापना

की, जिसके वह संस्थापक अध्यक्ष बने। इनके नेतृत्व में अरुणाचल प्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम को नई गति मिली। स्वतंत्रता की रजत जयंती के अवसर पर श्रीमती इंदिरा गांधी ने 15 अगस्त, 1972 के इन्हें ताम्रपत्र देकर सम्मानित किया था। 1982 में अपने पैतृक गाँव में उनका देहावसान हुआ।

नागालैंड

मुंडों के शिकार करनेवाले नागा जनगोष्ठी के लोग स्वभावत: स्वतंत्रताप्रिय हैं। वे प्राय: असम घाटी, कछार और मणिपुर में छापामारी भी करते थे। वे भी नागाभूमि में ब्रिटिश शासन की संभावना से डरते थे और इसीलिए इसका डटकर विरोध करते थे। 1832 में जेनकिन एवं पंपर्टन शताधिक सिपाहियों के साथ अनजामी और कुच्चा (जेलियांगरंग) नागाओं की बस्तियों से होकर असम से मणिपुर जाने का सीधा रास्ता बनवाने का सर्वेक्षण करने गए थे, परंतु हर नागा गाँव में उन्हें बाधा पहुंचाई गई। इसीलिए अगले वर्ष लेफ्टिनेंट जॉर्ज गर्डन ने मणिपुर के राजा गंभीर सिंह के साथ नागा गाँवों में घूमकर उन्हें बाधा पहुंचानेवालों को गंभीर परिणाम भोगने की चेतावनी दी। ब्रिटिश सरकार को नागा भूमि में चाय उत्पादन कर काफी राजस्व पाने की आशा थी। नागा छापामारे पर काबू पाने के लिए 1846 में अंग्रेजों ने सामगुटिंग (सुमुकेदिमा) में एक पुलिस चौकी स्थापित की, परंतु इसका नतीजा कुछ न निकला, क्योंकि छापामारी से नागाओं को रोका नहीं जा सका।

सन् 1849 में भोगचंद ने सिपाहियों के साथ अंजामी इलाका मेजोमा का दौरा किया, परंतु लौटने पर पिफीमा नामक स्थान में उनके अधिकांश लोगों का नागाओं ने वध कर दिया, कुछ भाग खड़े हुए। इस हत्याकांड से क्रोधित होकर पाँच सौ सिपाहियों के साथ लेफ्टिनेंट कर्नल फोकुडट ने 10 दिसंबर, 1850 को मोजोमा से चलकर खोनोमा गाँव पर आक्रमण किया। खोजोमा गाँव के वीर योद्धा उनके साथ सोलह घंटे तक साहस से लड़े, परंतु शस्त्रों की कमी के कारण गाँववासियों को आक्रमण रोकना पड़ा। इसी का फायदा उठाकर अंग्रेजों ने गाँव को खाली कराया और घरों को आग लगा दी। इसका बदला लेने के लिए किक्रुमा गाँव के लगभग सौ वीरों ने अंग्रेजों से लड़कर वीरगति प्राप्त की। नागाओं के उपद्रव के कारण अंतत: अंग्रेज सरकार को सामगुटिंग की पुलिस चौकी को हटाना पड़ा। खोनोमा और मेजोमा के वीर अंजामियों ने लगभग घाटी की चालीस पुलिस चौकियों पर आक्रमण किया, जिसके परिणामस्वरूप तीन सौ से अधिक पुलिस और आम लोगों को जान गँवानी पड़ी।

सामान्यत: नागा लोग ब्रिटिश को 'कंपनी के लोग' के रूप में जानते थे और उन्हें आक्रमण करने के लिए हर नागा गाँव के लोग तैयार रहते थे। कैप्टन बाटलर को विस्तार कार्य हेतु पांगटि में सर्वेक्षण करते समय 1876 में प्राण गँवाने पड़े। इसीलिए अंजामी क्षेत्रों में ब्रिटिश सैनिकों को निर्विरोध रखने का सुलह प्रस्ताव लेकर 13 अक्तूबर, 1897 को कैप्टन दमंट ने फंटियर पुलिस और 43 बंगाल रेजीमेंट को साथ लेकर जोटसोमा से खोनोमा जाते समय भी नागाओं के आक्रमण का सामना करना पड़ा और 33 सैनिकों के साथ दमंट को भी प्राण गँवाने पड़े थे। इसी वर्ष विभिन्न गाँवों से जुटे 6,000 नागा वीरों ने कोहिमा के अंग्रेज सुरक्षा क्षेत्र को घेर लिया था, जिसे 'खोनोमा-विप्लव' कहा जाता है। इसी तरह वीर नागाओं ने अंग्रेजों को नाकों चने चबवाए। ब्रिटिश उपनिवेश और ईसाई मिशनरियों के खिलाफ खोनोमा की लड़ाई तब तक जारी रही, जब तक द्वितीय विश्वयुद्ध के समय फिजो ने आजाद हिंद फौज को खोनोमा की तरफ बढ़ने में सहायता की।

नागा भूमि में स्वतंत्रता-वीर के रूप में जादोनांग का स्मरण किया जाता है। 1905 में कांबीरान गाँव (अब मणिपुर में) में जन्मे जादोनांग बचपन से ही देशभक्त थे। 1926 में गुवाहाटी के पांडु कांग्रेस अधिवेशन के समय उन्होंने गांधी जी के बारे में सुना था। एक सौ लड़के और एक सौ लड़कियों का एक दल लेकर गांधी जी से मिलने सिलचर पहुँचे, परंतु 1921 की तरह गांधी जी इस बार सिलचर नहीं आए। जादोनांग ने जेमी, लियांगमई तथा रांग्मई जनजातियों को विभिन्न रीति-रस्म के अनुयायी होने के बावजूद एकत्र किया

और उनमें स्वतंत्रता संग्राम का बीज बोया। युवकों को शस्त्रों की शिक्षा दी गई। रानी गाइंडिल्यू, ताखेनांग जैसे गाँवों में इन फौजी युवकों का आवास था। कांबीरान में चुंगचांग तथा मुदनांग सेनापति थे। इन्हें लुरींगुपु अर्थात् 'मुक्तिदाता' कहा जाने लगा। अपने इस ब्रिटिश विरोधी कार्य के कारण 6 दिसंबर, 1928 को जादोनांग को गिरफ्तार करके जले भेजा गया। जेल से निकलकर वह पुन: सक्रिय हो गए। इसी बीच 1930 के मार्च महने में मणिपुर के चार व्यापारियों की हत्या हो गई। निरपराध होने के बावजूद सरकार का जादोनांग पर संदेह हुआ। उसके ऊपर अंग्रेज ऐसे भी खफा थे कि नागा गाँवों से सरकार को कोई कर नहीं मिलता था। धोखे से सरकार ने 19 फरवरी, 1931 को उन्हें पकड़ा और इंफाल कारागार में डाल दिया। उन्हें घोर कष्ट दिए गए और मुकदमे का नाटक रचकर इंफाल जेल में ही 29 अगस्त, 1931 को फाँसी दे दी गई।

जादोनांग के असंपूर्ण कार्य को रानी माँ गाइंडिल्यू ने आगे बढ़ाया। उनके पास एक बंदूक थी। नागा समाज को स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के लिए रानी माँ ने प्रोत्साहित किया था, जिससे वे सरकार की आँखों की किरकिरी बन गईं। उन्हें पकड़ने का वारंट जरी हुआ, परंतु वे छिपती रहीं। अंतत: 16 अक्तूबर, 1932 को उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। 1937 में पं. जवाहरलाल नेहरू के असम प्रवास में उन्हें गाइंडिल्यू के नेतृत्व में स्वतंत्रता की जानकारी मिली। गाइंडिल्यू को मात्र सत्रह वर्ष की आयु में आजीवन कारावास की सजा दिए जाने के विरोध में हरू ने सरकार की आलोचन की थी और उनकी रिहाई के लिए ब्रिटिश संसद की महिला सदस्या लेडी एस्टर को पत्र लिखकर विनती की थी। रानी माँ एक वर्ष गुवाहाटी, छह वर्ष शिलांग, तीन वर्ष आईजोल और चार वर्ष तुरा जेलों में रहीं। चौदह वर्षों के बाद 31 वर्ष की आयु में स्वतंत्र भारत में स्वतंत्रता की साँस ली। इन्होंने वीर जादोनांग की स्मृति में 1974 में जेलियांगरोंग हरक्का एसोसिशन की स्थापना की थी।

मणिपुर

मणिपुर में स्वतंत्रता वीरों में वीर टिकेंद्रजीत सिंह का नाम सर्वोपरि है। वे एक वीर योद्धा ही नहीं थे बल्कि स्वतंत्रता प्रेमी थे। घोर ब्रिटिश विरोधी होने के कारण वे मणिपुर वीर सैनिकों के साथ अंग्रेजों के खिलाफ लड़े थे। 1819 से 1826 तक मणिपुर राज्य में उथल-पुथल रही। बर्मियों ने मणिपुर पर आक्रमण करके अनेक अत्याचार किए थे। मणिपुर के राजा गंभीर सिंह ने ब्रिटिश सेना की सहायता से बर्मी सेना को मणिपुर से बाहर निकाला था। 24 फरवरी, 1826 को बर्मा के साथ 'यांडाबु संधि हुई, जिसमें गंभीर सिंह को ब्रिटिश एवं वबर्मा की सहमति से राजा बनाया गया। 1834 में गंभीर सिंह की मृत्यु होने पर उनका बालक पुत्र चंद्रकीर्ति राजा तो बना, परंतु सेनापति नरसिंह के संरक्षण में शासन करने लगा। कुछ समय बाद चंद्रकीर्ति की माता कुमुदिनी देवी से नरसिंह का वैमनस्य होने पर वह पुत्र सहित कछार चली गई। 1844 को नरसिंह को ब्रिटिश सरकार ने मणिपुर का राजा बनवाया। 1850 में नरसिंह की मृत्यु होने पर देवेंद्र सिंह राजा बने। 1851 में उसे पराजित कर चंद्रकीर्ति पुन: राजा बन गए। 1866 में चंद्रकीर्ति की मृत्यु होने पर भाइयों में अंतर्कलह हुआ। राजा पद त्यागकर सुरचंद्र सिंह सिलचर पहुँचा और ब्रिटिश अधिकारियों से उसे पुन: राजा बनवाने और युवराज टिकेंद्रजीत को बंदी बनाने का आग्रह किया। 1891 में असम के कमिश्नर ने टिकेंद्रजीत को बंदी बनाने के लिए मणिपुर पर आक्रमण किया। स्वतंत्रता प्रेमी मणिपुरी जनता और राजा कुलचंद्र ने अंग्रेजों के इस आक्रमण का ईंट का जवाब पत्थर से दिया। ब्रजवासी पाओना ने मातृभूमि की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए मुट्ठी भर सैनिकों के साथ अंतिम साँस तक युद्ध किया। वीर टिकेंद्रजीत और सेनापति थांगाल अंग्रेज सेना पर भारी पड़ गए, परंतु मणिपुर को तीनों ओर से अंग्रेज सेना ने घेर लिया, जिसके परिणामस्वरूप मणिपुरी सेना की हार हुई। 13 अगस्त, 1891 में वीर टिकेंद्रजीत और सेनापति थांगाल को फाँसी दी गई। अन्य वीरों को बंदी बनाया गया। प्रथम विश्वयुद्ध के समय महाराजा चूड़ाचांद सिंह के शासनकाल में ब्रिटिश ने लेबर कोर में जब कुकी जनजाति को जबर्दस्ती भर्ती

करना प्रारंभ किया तो उन्होंने विद्रोह किया, परंतु 1919 में कुचल दिया गया।

ब्रिटिशों को काबू करने के लिए 10 मई, 1942 को जापानी बमवर्षकों ने इंफाल पर बम गिराए, जिससे घाटी की कानून-व्यवस्था ध्वस्त हो गई। बर्मा से आजाद हिंद फौज ने जापान के साथ 8 मार्च, 1944 को मणिपुर पर आक्रमण किया। 14 अप्रैल, 1944 को आजाद हिंदी फौज ने मोइरांग कस्बे पर अपना अधिकार जमाया और तिरंगा फहराकर स्वतंत्रता की खुशी मनाई। मोइरांग के डाक बँगले में आजाद हिंद फौज का मुख्यालय स्थापित हुआ। लगभग 1500 वर्ग मील क्षेत्र जून तक आजाद हिंद फौज के नियंत्रण में रहा। मानसून के सक्रिय होने तथा ब्रिटिश विजय के कारण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक विजय अध्याय यहीं समाप्त हुआ।

मिजोरम

जब अंग्रेजों ने मिजोरम में अपना शासन लागू करने का प्रयास किया तो मिजो वीरों ने उसका प्रतिरोध किया था। इस दृष्टि से राजा ललसुथलहा (1813 - 1844), राजा कलखमा (सन् 1847 - 1891) और रानी दौपुईलियानी (सन् 1825 - 1895) के नाम आदर से लिये जा सकते हैं, जिनके नेतृत्व में मीजो वीरों ने अंग्रेजों से लोहा लिया।

वर्तमान त्रिपुरा के कुछ क्षेत्रों में देशवासियों का अधिकार बनाए रखने के लिए मिजो राजा ललसुथलहा ने 16 अप्रैल, 1844 को कचुबारी नामक स्थान में अंग्रेजों से लड़कर उनके 50 सैनिकों को मार डाला। इसमें आग बबूला होकर अंग्रेज सरकार ने कैप्टन हैकवुड के नेतृत्व में सेना की एक टुकड़ी भेजी, परंतु राजा ललसुथलहा ने कैप्टन हैकवुड को मौत के घाट उतार दिया। राजा ललसुथलहा अंग्रेजों के लिए सिर दर्द बन गया। आखिर संधि करने का प्रस्ताव भेजकर धोखे से 4 दिसंबर, 1844 को गिरफ्तार कर लिया और आजीवन कारावास सुनाकर संभवत: जेल में ही यातना देकर उन्हें मार डाला गया। मिजो राजाओं में शहीद होनेवाले ललसुथलहा प्रथम राजा थे।

सेनलांग नामक राज्य का राजा कलखमा अंग्रेज विद्वेषी था। मिजो युवकों को कुली बनवाने की अंग्रेजों की साजिश का उन्होंने विरोध किया था। अत: अंग्रेजों को मिजोरम से भगाने के लिए उन्होंने अपने बड़े भाई राजा लियानफुंगा तथा अन्य मिजो राजाओं से मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध छेड़ा, जिसमें अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर मि. बॉन मारा गया। इसका बदला लेने के लिए अंग्रेजों ने मि. मककैव स्कॉटिश सेनापति के नेतृत्व में फौज भेजी। निहत्ये लोगों को इस फौज ने गाजर-मूली की तरह काटा। मिजो राजा अपनी सीमित शक्ति से अंग्रेजों के खिलाफ लड़े। 17 नवंबर, 1890 को राजा पर दबाव डालने के लिए कलखमा के नगर सेनालांग में आग लगा दी गई। आखिर धोखे से राजा को गिरफ्तार करके 13 जनवरी, 1891 को हजारीबाग (वर्तमान झारखंड में) की जेल में पहुँचा दिया और यातना देकर इसी वर्ष के 11 दिसंबर को मार डाला।

रानी झाँसी लक्ष्मीबाई की तरह मिजोरम की रानी रौपुईलियानी (1825 - 1895) अंग्रेजों की कट्टर दुश्मन थीं। वे आईजोल के राजा लालसाबुडा की पुत्री थीं और दक्षिण मिजोरम के राजा रौलुरहुआ के पुत्र वानदुला की पत्नी थीं। विवाह के बाद 1859 में वे पति-पत्नी क्रमश: कोमजोल और देडलुंग गाँव में बसे। 1893 में अंग्रेज साम्राज्य के प्रति इन्होंने विद्रोह किया। युद्ध में पति वानदुला, पुत्र दौतोना और पुत्री ललरेंगपुई की मृत्यु हुई। ब्रिटिश अधिकारी जनरल ट्रीगर के हाथों दौतोना ने वीरगति प्राप्त की। पति की मृत्यु के बाद रानी रौपुईलियानी ने अंग्रेजों से संघर्ष करते हुए जनता के साथ स्वतंत्रता संग्राम जारी रखा। रानी चाहती थीं कि अंग्रेज मिजोरम से बाहर हो जाएँ। वे नहीं चाहती थीं कि अंग्रेज जबरन प्रजा से गुलामों की तरह काम करवाएँ, पेड़-जंगल काटकर रास्ता बनवाएँ, जबरन कर वसूलें। इसके निमित्त वे प्रजा में जागरुकता उत्पन्न कर कहती थीं कि इन फिरंगियों का कोई अधिकार नहीं है, जो हमें अपनी चालों में फँसाकर हमारे ऊपर राज करें। अंग्रेजों ने रानी

से सुलह करनी चाही, परंतु रानी ने उनके विस्तारवादी रवैये पर कुठाराघाट किया। रानी ने अंग्रेजों को एकत्र कर संगठित किया, परंतु गुप्तचरों से अंग्रेज कप्तान मुरै को इस विद्रोह की तैयारी की भनक लग गई। इसलिए उसने 10 अगस्त, 1893 को रानी के गाँव पर धावा बोल दिया और रानी के छोटे पुत्र लालहुआमा सहित रानी को गिरफ्तार कर लिया। कैद होने पर पैदल जाने से इनकार करने पर रानी को लुंगलेई तक पालकी में बिठाकर ले जाना पड़ा। 12 अगस्त, 1893 में रानी को लुंगलेई को कैदखाने में रखा गया। कैदखाने से ही रानी अपने प्रमुख सैनिकों के विद्रोह जारी रखने के लिए प्रेरित करती थीं तथा अंग्रेजों पर विश्वास न करने की हिदायत देती थीं। कुछ दिनों के पश्चात् रानी के दो विश्वस्त साथी कैदखाने से भागने में सफल हुए। इसलिए अंग्रेज अधिकारी सतर्क हुए और रानी को वहाँ से 18 अप्रैल, 1894 को चिटगाँव (बांग्लादेश) कैदखाने में स्थानांतरित किया गया। इसी कैदखाने में अतिसर की बमारी के कारण 3 जनवरी, 1895 को रानी रौपुई लियानी ने वीरगति प्राप्त की।

मेघालय

मेघालय यानी पूर्व खासी जयंतिया और गारो पहाड़ों में स्वतंत्रता संग्राम के मुख्य वीरों में चियेम (राजा) उ. तिरोत सिंह, उ. कियांग नागंबाह और तगान संगमा के नाम आदर के साथ लिये जाते हैं। तिरोत सिंह राजा थे, परंतु नांगबाह और तगान संगमा साधारण परिवार से थे। तीनों असामान्य वीर थे और अंग्रेजां को नाकों चले चबवाए थे चियेम उ. तिरोत सिंह नांगखली इलाके के थे। उन्होंने अपने जाँबाज सिपाहसलार उ. मनभुट, लार्सन जारैन, खेन कंगौर और कफान नंगलैत के साथ अंग्रेजों से लोहा लिया।

सन् 1826 में यांडायु संधि होने पर संपूर्ण ब्रह्मपुत्र घाटी पर अंग्रेज का अधिकार हो गया था। 1765 में अंग्रेजों ने बंगाल का 'दीवान' होने के बाद सुरमा घाटी पर कब्जा जमाया था। अब अंग्रेज चाहता था कि दोनों घाटियों पर अधिकार बनाए रखने के लिए यातायात की सुविधा हेतु एक रास्ता चाहिए, जिसे खासी-जयंतीया पहाड़ से होकर ही निकाला जा सकता था। साथ ही एक सैनिक छावनी स्थापित करने का विचार था। इसलिए अंग्रेज के पॉलिटिकल एजेंट डेविड स्कॉट ने खादसफ्रा के चियेम उ. तिरोत सिंह के पास उनके राज्य से होकर रास्ता बनवाने का प्रयास रखा। तिरोत सिंह ने दरबार बुलाकर दो दिन-दो रात विचार करने के पश्चात् बेमन से अनुमति दे दी। अंग्रेजों ने तुंरत एक सैनिक टुकड़ी और मजदूरों के साथ नंगखली में अड्डा जमाया। बाद में तिरोत सिंह को पता चला कि गुवाहाटी और सिलचर में सैनिक एकत्र किए गए हैं। उन्हें लगा कि खासी जयंतीया पहाड़ पर कब्जा जमाने के लिए अंग्रेजों ने इस प्रकार की चाल चली है। इसलिए उन्होंने तुरंत रास्ता बनाने का काम रोककर अंग्रेजों को नंगखली छोड़ने की हिदायत दी। इसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने खासी पहाड़ पर हमला बोल दिया। वीर तिरोत सिंह साहस के साथ लड़ा और डेविड स्कॉट को युद्ध में मार डाला। स्कॉट का उत्तराधिकारी टीसी रॉबर्टसन चाहता था कि युद्ध का अंत हो, इसीलिए तिरोत सिंह के पास सुलह का प्रस्ताव भेजा। दोनों गुटों में काफी विचार-विमर्श हुआ, परंतु खासी जयंतीया में रास्ता न बनवाने का प्रस्ताव कंपनी को स्वीकार नहीं हुआ। इसके परिणामस्वरूप अंग्रेजों ने खासी पहाड़ी पर आर्थिक अवरोध खड़ा किया। खासी पहाड़ी पर बाजार बंद हो गया, सभी प्रकार के सामानों की आवाजाही रुक गई, खाद्य सामग्री मिलना मुश्किल हो गया। इससे प्रभावित होकर कुछ खासी सरदार अंग्रेजों के सामने आत्मसमर्पण करने लगे। खासी जयंतीया के इस संकट काल में असम के मणिराम देवान, पियलि बरुवा ने खासी वीर योद्धाओं के पास कामरूप सीमांत से अनाज भेजा था।

तिरोत सिंह की यह छापामारी लड़ाई तीन वर्षों तक चली। उनके सारे विश्वस्त वीर सैनिक मारे गए थे। युद्ध के समय उनके एक वीर सैनिक बरमाणिक को गोली लग गई। खासी साथियों ने घायल बरमाणिक को उनियाम नदी के पास की गुफा में लाए, जहाँ तिरोत सिंह भी उन्हें देखने आए थे। मरने के पूर्व बरमाणिक ने तिरोत सिंह और साथियों को समझाया कि अंग्रेजों के

आधुनिक हथियारों और सैन्यबलों के सामने अब अधिक दिन खासियों का टिकना संभव नहीं है। अत: सम्मानपूर्वक अंग्रेजों से सुलह कर ले। आखिर तिरोत सिंह को अंग्रेजों ने पकड़कर ढाका जेल भेज दिया, जहाँ 17 जुलाई, 1835 को उन्होंने वीरगति प्राप्त की।

जयंतीया पहाड़ में 1835 में जन्मे उ. वियांग नांगबाह सामान्य सिंकन गोष्ठी के परिवार से थे। बचपन से ही अपनी मातृभूमि में अंग्रेज घुसपैठियों को देखते आए थे और अपनी माता से जानकारी मिलती थी कि ये लोग विदेशी हैं। जब अंग्रेजों ने 1860 में आवास-कर लगाया और इसे न देने पर कर-वसूलदाय प्रजाओं से जिस निर्ममता से पेश आते थे, उसे देखकर जवान नांगबाह का खून खौल उठता था। 1861 में एक दूसरी घटना हुई। जोवाइ के निकट लालंग गाँव के लोग अपने धार्मिक उत्सव 'पस्तिएह' में परंपरानुसार ढाल-तलवार लेकर नृत्य करते समय अंग्रेज शासन ने बाधा पहुँचाई, जिससे स्थिति बिगड़ गई। यह उनके धार्मिक विषय में हस्तक्षेप था। तब से नांगबाह गाँव-गाँव घूमकर लोगों को अंग्रेजों के खिलाफ एकत्र करने लगे और उनसे लोहा लेने के विषय में बताने लगे। उन्होंने जोवाइ के निकट सिंटु क्षियर मैदान में एक दरबार बुला, जिसमें पुरुष-स्त्री, युवक-युवती, बूढ़े-बुजुर्ग अनेक लोगों ने भाग लिया और सर्वसम्मति से अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र संग्राम करने का निश्चय किया। दरबार में नांगबाह को नेता चुना गया। जोवाइ के अंग्रेजों पर आक्रमण शुरू किया गया, थाने को जलाया गया। जयंतीया पहाड़ के मिनसो, सांगपुंग, रोलियाँ, नाहरियांग, बोरेटो, मुकाइओ, सुरंगा आदि स्थानों में युद्ध की चिनगारी भड़क उठी। अंग्रेजों की गोली का जवाब ये लोग छापामारी से, परंपरागत धनुष-बाण, शूल, ढाल-तलवार आदि अस्त्र-शस्त्रों से दे रहे थे। यह युद्ध 1860 से 1862 तक चला। नागंबाह के पकड़ने के लिए अंग्रेजों ने 1000 रुपए का इनाम घोषित किया। एक घर-शत्रु विभीषण खासी उ. दलोइ टिंगकर ने अंग्रेजों की बात में आकर पैसे के लोभ से मिनसो गाँव में छिपे हुए नांगबाह को पकड़ा दिया। वह काला दिन था 27 दिसंबर, 1862। नांगबाह को पकड़कर जोवाइ लाया गया और झूठा मुकदमा चलाकर जोवाइ के लमुसियांग में 30 दिसंबर, 1862 को सामूहिक रूप में फाँसी दी गई।

मेघालय के गारो पहाड़ के विलियम नगर के समीपस्थ रोंगबिल बांगरि गाँव में पा तगान एन संगमा का जन्म हुआ था। बचपन से ही वे वीर प्रकृति के और साहसी थे। ईस्ट इंडिया कंपनी ने गारो पहाड़ के तुरा में 1869 में अपना कार्यालय खोला। जिलाधिपति डब्ल्यूजे विलियमसन ने 1871 में पश्चिमी गारो पहाड़ के 100 गाँवों को जबर्दस्ती दखल किया था। पूर्वी गारो पहाड़ के 60 गाँवों पर अधिकार करने के लिए अंग्रेजों ने कैप्टन डेली, कैप्टन डेविस और कैप्टन विलियमसन के नेतृत्व में तीन टुकड़ियाँ बनाकर इन गाँवों को घेरने की योजना बनाई। अंग्रेजों के संभावित आक्रमणों से गाँववासी सावधान हुए, क्योंकि वे लोग स्वतंत्रता खोना नहीं चाहते थे। तगान संगमा ने गारो पहाड़ के 50 गाँवों को संगठित किया, उन्हें युद्ध के लिए प्रशिक्षण दिया और अस्त्र-शस्त्रों को एकत्र किया। गारो पहाड़ के प्राकृतिक भूगोल को देखकर अंग्रेजों ने दक्षिण, पूर्व और पश्चिम से गाँवों पर आक्रमण किया। घरों को जलाया गया, आम लोगों पर अत्याचार किया। रंगग्रोंगगिरि नामक स्थान में युद्ध प्रारंभ हुआ। एक ओर आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित शक्तिशाली साम्राज्यवादी शक्ति और दूसरी ओर धनुष-बाण, शूल, ढाल-तलवार, दाओ आदि परंपरागत हथियार लेकर तगान संगमा की अगुवाई में वीर गारोवासी। स्वाभाविक रूप में अंग्रेज गारो-योद्धाओं पर भारी पड़े और 12 सितंबर, 1872 को गोली लगकर युद्धस्थल पर ही तगान संगमा शहीद हुए।

त्रिपुरा

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में पूरे देश के साथ त्रिपुरा ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। शचींद्र पाल सिंह, वीरेन दत्त, वंशी ठाकुर, प्रभात राय, देव प्रसाद सेनगुप्त, उमेश पाल सिंह, सुखमय सेनगुप्त, हरिगंगा बसाक, अली अहमद, अब्दुल गफूर छायवाली, माधव घोष, यतींद्र नाथ, जितेन पाल आदि स्वदेशी-प्रेमी सत्याग्रहियों ने त्रिपुरा में 'असहयोग', 'कानून तोड़ो', 'भारत छोड़ा' आंदोलनों को सफलतापूर्वक कार्यान्वित

किया था। अग्रणी नेता जितेन पाल का 1932, 1935, 1937 को कारावास हुआ था। 1935-36 में वे गृहबंदी हुए। कानून तोड़ने के अपराध में उन्हें आठ बार गिरफ्तार किया गया था। त्रिपुरा में स्वतंत्रता संग्रामियों में जितेन पाल का स्थान ऊँचा रहा है।

सिक्किम

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गोरखाओं ने भाग लिया था, परंतु उनके बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती। बताया जाता है कि स्वतंत्रता आंदोलन में 84 गोरखा शहीद हुए थे। स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी वीरांगना हेलेन लेप्सा (1902-1980) को गांधी जी का सान्निध्य और आशीर्वाद मिला था। गांधी जी के बुलाने पर जब वे साबरमती आश्रम गई, तब गांधी जी ने उनका हेलेन लेप्सा नाम बदलकर 'सावित्री देवी' रखा था। हेलेन लेप्सा का जन्म दक्षिण सिक्किम के सांगमुंग गाँव में हुआ था। वे अचुंग लेप्सा की तीसरी संतान थीं। लेप्सा परिवार ने बाद में स्थानांतरित होकर दार्जिलिंग के निकटस्थ कर्चेंग में अपना निवास बनाया।

गांधी जी ने स्वतंत्रता संग्राम प्रारंभ करने के साथ स्वदेशी खादी वस्त्र और चरखा का प्रचार किया था। दार्जिलिंग में एक बंगाली सज्जन से यह सुनकर हेलेन लेप्सा ने दिलचस्पी ली और कलकत्ता जाकर चरखा चलाने का प्रशिक्षण लिया। 1920 में जब बिहार में बाढ़ आई थी, उस समय वे मुजफ्फरपुर में थीं। वे बाढ़-पीड़ितों की सेवा में जी-जान से जुट गई थीं। बाढ़ग्रस्तों को देखने जब गांधी जी बिहार आए थे, तब उनकी भेंट हेलेन लेप्सा से हुई और खुले तौर पर उन्होंने प्रशंसा की थी। गांधी जी ने हेलेन को गुजरात के साबरमती आश्रम बुलाया था। बिहार और उत्तर प्रदेश को हेलेन ने अपना कार्यस्थल बनाया। गण आंदोलन के समय झरिया, कोयला मजदूरों को उन्होंने संगठित किया और कांग्रेस के आंदोलन में उतारा।

हेलेन लेप्सा काफी दिनों तक इलाहाबाद के आनंद भवन में रही थीं। उस समय इंदिरा जी काफी छोटी थीं और हेलेन को 'आंटी' कहकर पुकारती थीं। ब्रिटिश सरकार की पैनी नजर हेलेन पर थी, परंतु वे जल्दी-जल्दी स्थान बदलकर अपने को छुपाती रहती थीं। वे 1921 के अहमदाबाद कांग्रेस अधिवेशन में डॉ. सरोजिनी नायडू के साथ भाग लेने गई थीं। कांग्रेस संगठन का अधिकतर काम वे बिहार और उत्तर प्रदेश में करती थीं। गोरखा सत्याग्रहियों के साथ वे सिलिगुड़ी में 'स्वदेशी आंदोलन' में भाग लेने गई थीं और कानून तोड़ने के कारण बारह गोरखा सत्याग्रहियों के साथ वे भी गिरफ्तार हुईं। हेलेन को छह मास जेल की सजा हुई। उसके बाद तीन वर्षों तक गृहबंदी बनकर रहना पड़ा।

सन् 1939-40 में जब सुभाष चंद्र बोस गृहबंदी थे, तब हेलेने उन्हें डबलरोटी के भीतर गुप्त सूचनाएँ भेजती थीं। गृहबंदी से सुभाष को भगाने में हेलेन की सराहनीय भूमिका रही है, क्योंकि सुभाष के लिए पठान-पहनावा उन्होंने ही तैयार किया था। स्वतंत्रता के बाद वे कर्चेंग म्यूनिसपैलिटी की अध्यक्षा चुनी गईं। बंगाल सरकार ने 1958 में उन्हें 'पहाड़ की जनजाति मुखिया' का सम्मान दिया था। दार्जिलिंग आने पर इंदिरा जी अपनी इस प्रिय आंटी से जरूर मिलती थीं। 1972 में उन्हें 'ताम्रपत्र' का सम्मान और स्वतंत्र-सेनानी की पेंशन दी गई।

इस प्रकार देखा जाता है कि समूचा उत्तर-पूर्वांचल अंग्रेजों के खिलाफ लड़ा था, चाहे वे ईस्ट इंडिया कंपनी में रहे हों या ब्रिटिश शासक के रूप में हों। राष्ट्रपिता गांधी जी के नेतृत्व में विदेशी बहिष्कार, मादक द्रव्य बहिष्कार, खादी और स्वदेशी का प्रचार, असहयोग, कानून तोड़ो, भारत त्याग आदि आंदोलनों में संपूर्ण देश के साथ उत्तर-पूर्वांचल ने भी एकजुटता दिखाई थी। यह भी देखा जाता है कि अशिक्षित, अनपढ़ और सभ्यता से दूर दुर्गम पहाड़ों-वनांचलों में रहनेवाले स्वतंत्रता-प्रेमियों ने भी अपनी स्वतंत्रता को कायम रखने के लिए जीवन की आहुति दी थी और सीमित शक्ति से ब्रिटिशों के उपनिवेश विस्तार को रोकने का प्रयास किया था। इसलिए अंग्रेजों के खिलाफ लड़नेवाले हर प्रकार के विरोध को स्वतंत्रता आंदोलन के दायरे में लाने का श्रेय मिलना चाहिए। ❑

स्वतंत्रता संग्राम और स्वतंत्र भारत में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी की भूमिका

प्रो. मोहन

प्रोफेसर, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
आवास :
फ्लैट नंबर-214
ब्लॉक सी एंड डी
पॉकेट-1, शालीमार बाग
दिल्ली-110088
मो. : 9871115500

सन् 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम से भारत में एक नए युग की शुरुआत होती है।

सन् 1857 की पहली लड़ाई हम इसलिए हार गए कि उस समय हमारे बीच संपर्क की 'एक भाषा' का अभाव था। इस अभाव को स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाले राजनीतिज्ञों और विचारकों ने भी महसूस किया और 'राष्ट्रभाषा हिंदी' को राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक एकता की भाषा के रूप में स्वीकार किया। साथ ही मान्यता प्रदान की।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का विकास एक महत्वपूर्ण घटना है। निस्संदेह इसका सर्वाधिक श्रेय हिंदीतरभाषी क्षेत्र के समाज सुधारकों, राजनीतिज्ञों एवं साहित्यकारों को है।

इस दिशा में स्वामी दयानंद, केशवचंद्र सेन, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, राजगोपालाचारी, महात्मा गाँधी ने पहल की। ये सभी हिंदीतर भाषा-भाषी थे।

स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी की भूमिका एक राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में उभरी। उदाहरण के तौर पर राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगीत, इसी तरह से राष्ट्रभाषा।

महात्मा गाँधी ने 'राष्ट्रभाषा' को राष्ट्रीय एकता एवं स्वतंत्रता संग्राम का एक हथियार बनाकर पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का स्वप्ना देखा था। इसकी परिणति सन् 1918 में 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की स्थापना से हुई।

राष्ट्रीय एकता से प्रेरित दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की सर्वप्रथम कक्षा गाँधी जी के पुत्र देवदास गाँधी जी ने आरंभ की थी। स्वयं महात्मा गाँधी जीवन पर्यंत इस संस्था के अध्यक्ष रहे। उस समय सभा के उपाध्यक्ष हिंदी के हिमायती नेता चक्रवर्ती राजगोपालाचारी थे। दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार-प्रसार का यह स्वर्णकाल था।

महात्मा गाँधी ने सन् 1917 में गुजरात के भड़ौंच में गुजरात शिक्षा परिषद के अधिवेशन में हिंदी के महत्व को घोषित किया। ''राष्ट्र की भाषा अंग्रेजी नहीं हो सकती।'' ''अंग्रेजी को राष्ट्रीय भाषा बनाना हमारी दुर्बलता की निशानी है।''

सन् 1920 में गाँधी जी ने गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की, जिसमें हिंदी पढ़ना अनिवार्य था। गाँधी जी की प्रेरणा से ही हिंदी की राजनीतिक स्थिति सुदृढ़ हुई।

गाँधी जी ने राष्ट्रीय दृष्टिकोण से हिंदी को साध्य और साधन दोनों बना दिया।

हिंदी को राष्ट्रभाषा की संज्ञा स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ही मिली। उस समय के राष्ट्रीय नेतृत्व ने देश को जोड़ने की भूमिका का ख्याल करके हिंदी को खुले मन से अपनाया। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय ने महाराष्ट्र तथा पंजाब में हिंदी को लोकप्रिय बनाया। नेताजी सुभाषचंद्र बोस के आजाद हिंद फौज की आंतरिक भाषा हिंदी ही थी। उस समय के साहित्य में देश की एकता के सूत्र के रूप में हिंदी की महत्ता स्वीकार की गई। भारतीय कवि सुब्रह्मण्यम भारती ने राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता की भावना से प्रेरित होकर हिंदी की कक्षाएँ चलाईं। लोकमान्य को इसकी सूचना स्वयं सुब्रह्मण्यम भारती ने पत्र द्वारा दी थी।

राष्ट्रीय एकता की इसी भावना से प्रेरित होकर विश्वकवि गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर ने शांतिनिकेतन में 'हिंदी भवन' की स्थापना की थी। हमारी आजादी की लड़ाई के राष्ट्रीय नेताओं की यह दृढ़ धारणा थी कि आजादी के बाद हमारे लोगों की आकांक्षाओं को पूरा सम्मान मिलना चाहिए।

हमारा स्वाधीनता संग्राम इस तथ्य का प्रबल प्रमाण है कि भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय एकीकरण सुगमता से संपन्न किया जा सकता है। स्वाधीनता संग्राम के दौरान राष्ट्रीय अस्मिता और आत्म पहचान के अनुसंधान का प्रश्न भी हमारे सामने था। राष्ट्रीय आंदोलन के नायकों ने इसके लिए हिंदी को माध्यम रूप में स्वीकार किया। यह सदियों से हिंदी द्वारा भारतीयता की धारणा का प्रतिनिधित्व करने की महत्वपूर्ण स्वीकृति थी। राष्ट्रीय एकता और संहति की रक्षा हिंदी का सबसे बड़ा दायित्व बन गया।

स्वतंत्रता आंदोलन के संगठन और प्रसार में हिंदी की परिवर्तनकारी भूमिका रही है। आर्थिक और राजनीतिक रूप से भी हिंदी प्रदेश अंग्रेजों के भारत आने से पहले

राष्ट्रीय जीवन की धुरी रही है। सन् 1857 ई. की साम्राज्य विरोधी क्रांति का केंद्र भी यही क्षेत्र रहा है। हिंदी प्रदेश की जनता का चरित्र हमेशा उपनिवेश विरोधी रहा है।

जैसे ही हिंदी राष्ट्रभाषा है और हिंदी जनता की जातीय भाषा वैसे ही सन् 1857 ई. का गदर भारत का राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम है। साथ ही हिंदी प्रदेश की जनता का जतीय संग्राम भी है।

स्वाधीनता आंदोलन के समय लगभग 1914 में भारत भारती का प्रकाशन होता है। देखते ही देखते यह रचना क्रांतिकारियों के लिए कंठहार के सम्मान हो जाती है। गाँधी जी ने गुप्त जी के जन्मदिन पर आयोजित एक संगोष्ठी में कहा था कि 'वे राष्ट्रकवि हैं' वे हमलोगों के कवि हैं। देशभर की आवश्यकता को समझकर लिखते हैं।''

15 अगस्त 1947 की रात बी.बी.सी. के प्रतिनिधि ने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की प्रतिक्रिया जानने की कोशिश की तो महात्मा गाँधी ने अपने सचिव से कहा कि उन्हें बता दो कि गाँधी अंग्रेजी भूल गया है। यह बात केवल गाँधी जी ही कह सकते थे। वे जानते थे कि किसी देश की पहचान अपनी भाषा से ही बन पाती है, विदेशी भाषा से नहीं।

हिंदी का विकास आरंभ से ही एक संपर्क भाषा के रूप में हुआ है। हिंदी ने भारत की कई भाषाओं के साथ अटूट संबंध बनाया है।

भूमंडलीकरण के कारण हिंदी बदल रही है।

मीडिया ने हिंदी को बहुत अधिक बदला है। मीडिया की हिंदी में पहुँच बढ़ी है। ज्यादातर चैनल और अखबार हिंदी में ही हैं। आज हिंदी सबके लिए बाजार मुहैया करा रही है। एक ही समय में कंपनियों के लिए करोड़ों का बाजार दे रही है। आज हर मामले में हिंदी का दायरा बढ़ा है। सूचना प्रौद्योगिकी के मामले में हिंदी बहुत आगे निकल गई है। सच तो यह है कि तमाम बातों के बावजूद आज हिंदी देश की धड़कन और लोगों की जरूरत बनकर उभरी है। हिंदी के व्यवहार-क्षेत्र का निरंतर विस्तार हो रहा है। हिंदी के बाजार का महत्व बढ़ रहा है।

हिंदी के विकास का प्रतीकात्मक अर्थ है – भारतीय भाषाओं का विकास। हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय फलक पर नई पहचान मिल रही है। हिंदी को सभी लोगों ने खुले मन से अपनाया है।

हिंदी का अपना गौरवशाली अतील रहा है और विाकसशील वर्तमान भी है। इसी के साथ हिंदी विश्व के भविष्य और भविष्य के विश्व की भाषा है। इस स्थिति में हिंदी को लेकर हमारी जिम्मेदारी भी बढ़ जाती है।

हमें आज के मुताबिक हिंदी के विकास और प्रचार-प्रसार से जुड़ी समस्याओं के सटीक समाधान खोजने होंगे।

बंद कमरों से बाहर निकलकर उनलोगों तक पहुँचना होगा, जो इसे सीखना चाहते हैं। इसके साथ संवाद करना चाहती है। इसमें काम करना चाहते हैं। इसमें काम करना चाहते हैं।

आज हिंदी के ऊपर देश और दुनिया की भाषाओं को एक साथ लेकर चलने की जिम्मेदारी है। साथ ही संपर्क और संवाद कायम करने का भार भी है। इसी के साथ देश की एकत और अखंडता को स्थापित करने की बड़ी जिम्मेदारी है। यह काम अकेले एक आदमी से नहीं हो सकता। सभी मिलकर एक हो जाएँ तो यह काम आसानी से हो सकता है। हिंदी जनसाधारण से फैलती है। और विद्वानों द्वारा ऊपर उठती है।

''विस्तार'' और ''उन्नयन'' इन दोनों आयामों में हिंदी को आगे बढ़ाना हमारी राष्ट्रीय जिम्मेदारी है।

आज हिंदी का दायरा निरंतर वैश्विक होता जा रहा है। इसके लिए अब यह आवश्यक हो गया है कि हम हिंदी के प्रचार-प्रसार के तौर-तरीकों में भी उदार बनें। हिंदी की अंतरराष्ट्रीय शैलियों का जिस तेजी से विस्तार हो रहा है, उस पर भी ध्यान देने की जरूरत है। यह इस बात का प्रतीक है कि वर्जनाएँ टूट रही हैं। ❑

सहायक पुस्तकें :

1. डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, भाषाई अस्मिता और हिंदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1996
2. रामविलास शर्मा, भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1989
3. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, दूसरा संस्करण, 1977
4. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, हिंदी भाषा : संरचना के विविध आयाम, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, पहली आवृत्ति, 1999
5. शंभुनाथ (संकलन), गवेषणा संचयन, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, प्रथम संस्करण, 2008

गाँधी जी की दृष्टि में राष्ट्रभाषा हिंदी

डॉ. अच्युत शर्मा

पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय
गुवाहाटी, असम
मो. 9954072905
ई-मेल : sarmaachyut291058@mail.com

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के कर्णधार महात्मा गाँधी भाषा-शास्त्री तो नहीं थे, परन्तु बहुभाषी देश भारत की भाषा-समस्या के बारे में उन्हें सम्यक् जानकारी थी। उनकी भाषा-नीति बिल्कुल स्पष्ट, व्यावहारिक, न्यायोचित और स्वतंत्रता एवं स्वाभिमान की भावना से प्रेरित थी। उन्होंने पूर्णतः न्यायसंगत रूप में चाहा था कि प्रान्तीय स्तर पर प्रान्तीय भाषा का, राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी भाषा का उपयोग किया जाए। इसीलिए उन्होंने 1917 ई. को भड़ौंच में आयोजित द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण के दौरान स्पष्ट रूप में कहा था – **''उचित और संभव तो यही है कि प्रत्येक प्रान्त में उस प्रान्त की भाषा का, सारे देश के पारस्परिक व्यवहार के लिए हिन्दी और आन्तर-राष्ट्रीय उपयोग के लिए अंग्रेजी का व्यवहार हो।''**[1]

गाँधी जी भाषायी चेतना को जाग्रत करके देशवासियों के मन में स्वतंत्रता एवं आत्माभिमान की भावना को उभारना चाहते थे। इसलिए वे मानते थे कि प्रत्येक शिक्षित भारतीय को अपनी मातृभाषा अवश्य जाननी चाहिए। हिन्दू को संस्कृत भाषा की, मुसलमान को अरबी की और पारसी को फारसी भाषा की जानकारी जरूर ही रखनी चाहिए – ताकि वे अपनी-अपनी परम्परा को भली-भाँति समझ सकें। साम्प्रदायिक सद्भावना को बढ़ावा देने के लिए महात्मा जी आशा रखते थे कि हिन्दू लोग अरबी-फारसी सीखें और मुसलमान तथा पारसी लोग संस्कृत का अध्ययन करें। उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत की भाषिक खाई को पाटकर दोनों को एक-दूसरे के नजदीक लाने हेतु गाँधी जी उम्मीद रखते थे कि जब दक्षिणी भारत के लोग श्रमपूर्वक हिन्दी सीख रहे हैं, तो उत्तर-पश्चिमी भारत के लोग तमिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नड़ भाषाओं में से कोई एक भाषा अवश्य सीखें। सारे भारत के लोगों को भावात्मक एकता की डोरी से बाँधने के लिए गाँधी जी चाहते थे कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी हिन्दी जरूर सीखें और राष्ट्रीय जीवन में उसका उपयोग करें। इसीलिए गाँधी जी ने 'इंडियन होमरूल' में 1909 ई. को ही लिखा था– ''हर एक पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का, हिन्दू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को पर्शियन का और सबको हिन्दी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिन्दुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों को और

कुछ पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। उत्तर और पश्चिम में रहने वाले हिन्दुस्तानी को तमिल सीखनी चाहिए। सारे हिन्दुस्तान के लिए तो हिन्दी ही होनी चाहिए।''[2]

महात्मा जी से पहले भारतीय नवजागरण के उन्नायकों, राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं तथा साहित्य-संस्कृति के कर्णधारों ने अनुभव किया था कि एक ऐसी भारतीय भाषा की जरूरत है, जिसके माध्यम से देशवासियों में पारस्परिक संपर्क सहजता से स्थापित हो सके। भारत भर में हिन्दी भाषा की कमोबेश उपस्थिति के कारण उनलोगों का ध्यान हिन्दी पर गया और उन्होंने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी के पक्ष में अपना मत प्रकट किया था। गाँधी जी ने तो माना कि - '' **राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है।**'' अत: आपने देश भर में सबसे अधिक बोली जाने वाली हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करते हुए स्वतंत्रता आन्दोलन के समानान्तर राष्ट्रभाषा के आन्दोलन को भी आगे बढ़ाया था। गाँधी जी स्वराज्य और स्वतंत्रता अंग्रेजी न जानने वाले अशिक्षित एवं अर्ध-शिक्षित लोगों के लिए भी चाहते थे। इसलिए आपने अंग्रेजी के बदले हिन्दी का पक्ष लेकर उसे अमल में लाने की बात की थी। उन्होंने 1917 ई. में ही भड़ौंच के गुजरात शिक्षा सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में घोषणा की थी - ''**अगर स्वराज्य अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए हो तो निस्सन्देह अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी, लेकिन अगर स्वराज्य करोड़ों भूखों मरनेवालों का, करोड़ों निरक्षरों का, निरक्षर बहनों का और दलितों व अंत्यजों का हो और इन सबके लिए हो, तो हिन्दी ही एकमात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।**''[3]

गाँधी जी ने राष्ट्रभाषा के मसले पर काफी सोच-विचार करने के उपरान्त ही हिन्दी के पक्ष में निर्णय लिया था। वे चाहते थे कि भारत की राष्ट्रभाषा में अग्रलिखित पाँच गुण या लक्षण हों - (क) वह भाषा सरकारी नौकरों के लिए आसान होनी चाहिए, (ख) उस भाषा के द्वारा भारत के आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक काम-काज हो सकना चाहिए, (ग) उस भाषा को भारत के ज्यादातर लोग बोलते हों, (घ) वह भाषा राष्ट्र के लिए आसान हो, और (ङ) उस भाषा का विचार करते समय क्षणिक या कुछ समय तक रहनेवाली स्थिति पर जोर न दिया जाए। अंग्रेजी भाषा में इन पाँचों लक्षणों की अनुपस्थिति और हिन्दी भाषा में सभी के सभी पाँच लक्षणों की उपस्थिति के कारण गाँधी जी ने स्वयं अन्त:करण से हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अंगीकार कर लिया था और देशवासियों को भी वैसा करने का उपदेश दिया था।

बापूजी राष्ट्रभाषा हिन्दी के जरिए भारत-जननी की गोद में पली सभी सन्तानों को एक हृदयवाला बनाना चाहते थे, ताकि सारे भारतवासी एक ही भाव महसूस करें। '**एक हृदय हो भारत-जननी**' का नारा गाँधी की इस चाहत को प्रतिध्वनित करता है। देश भर में भावात्मक एकता स्थापित करने, सभी भारतीय भाषाओं को आदर देने, सबका सहयोग लेने और सबकी सेवा करने की शक्ति को बापूजी ने हिन्दी में लक्षित किया था। इसीलिए उन्होंने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को अपनाने हेतु देशवासियों को संदेशा दिया था। राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-संग्राम के अग्रणी सेनापति काकासाहब कालेलकर ने बापूजी की चाहत और संदेशे के बारे में लिखा है - ''**गाँधी जी ने भारतभूमि के सब लोगों को, सब प्रदेशों को और भारत की सब भाषाओं को एक हृदय बनाना चाहा था। इसी को पं. जवाहरलाल 'राष्ट्र की भावात्मक एकता' कहते हैं। 'राष्ट्रभाषा सब भाषाओं का आदर करे, सबकी सेवा करे, सबसे सहयोग प्राप्त करे, तभी वह राष्ट्रभाषा बनती है।' यही था गाँधीजी का संदेशा।**''[4]

महात्मा गाँधी राष्ट्रभाषा को मुक्तिदात्री और शक्तिदायिनी मानते थे। जिस भाषा में सन्त कबीरदास, मलिक मोहम्मद जायसी, सूरदास, मीराँबाई, गोस्वामी तुलसीदास जैसी अमर विभूतियों ने काव्य-रचना की हो, उस हिन्दी भाषा को वे अत्यन्त पावन मानते थे। इसलिए वे मुख्य रूप से हिन्दी सीखने की बात करते थे। फरवरी, 1916 ई. में काशी नागरी प्रचारिणी सभा में दिए गए अपने व्याख्यान में उन्होंने कहा था ''**जिस भाषा में तुलसीदास जैसे कवि ने कविता की हो, वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई भाषा ठहर**

नहीं सकती। हमारा मुख्य काम हिन्दी सीखना है, पर तो भी हम अन्य भाषाएँ भी सीखेंगे।''[5]

राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की वकालत गाँधीजी ने सिर्फ इसलिए नहीं की थी कि देश के करोड़ों अशिक्षित एवं अर्ध-शिक्षित लोगों के लिए वह सुगम और सुविधाजनक रहेगी, अपितु उन्हें दृढ़ विश्वास था कि वह शिक्षित समुदाय के लिए भी उपयोगी बन पाएगी। देवभाषा संस्कृत की योग्य उत्तराधिकारिणी के रूप में हिंदी की अभिव्यक्ति क्षमता पर उनको पूरा भरोसा था। वे आश्वस्त थे कि अपने देश में अंग्रेजी का स्थान हिंदी जरूर ले पाएगी। मई, 1917 ई. को प्रकाशित एक लेख में गाँधीजी ने इसलिए कहा था – **''हिन्दी ही हिन्दुस्तान के शिक्षित समुदाय की सामान्य भाषा हो सकती है, यह बात निर्विवाद सिद्ध है। यह कैसे हो, केवल यही विचार करना है। जिस स्थान को अंग्रेजी भाषा आजकल लेने का प्रयत्न कर रही है और जिसे लेना उसके लिए असंभव है, वही स्थान हिन्दी को मिलना चाहिए, क्योंकि हिन्दी का उस पर पूर्ण अधिकार है।''**[6]

बापूजी राजनीतिक-आर्थिक आजादी के साथ-साथ भाषायी स्वतंत्रता के भी प्रबल पक्षधर थे। उन्हें भली-भाँति ज्ञात था कि भाषायी पराधीनता के साथ-साथ शैक्षिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और मानसिक परतंत्रता भी बढ़ती चली जाती है। ऐसी परतंत्रता अत्यन्त घातक होती है, क्योंकि इसका दिल, दिमाग और आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। वे मानते थे कि राजनैतिक और भाषायी पराधीनता एक-दूसरे की पूरक और लोगों को परावलंबी बनाए रखने वाली होती हैं। इसीलिए गाँधी जी ने राजनैतिक स्वाधीनता के साथ-साथ भाषायी स्वाधीनता के लिए भी आन्दोलन छेड़ा था। उन्होंने अंग्रेजों से मुक्ति के साथ ही अंग्रेजी से भी मुक्ति चाही थी। गाँधीजी के इस भगीरथ प्रयत्न पर अपना मत प्रकट करते हुए राष्ट्रभाषा प्रचार-यज्ञ के अन्यतम होता सेठ गोविन्ददास जी ने लिखा है – **''हिन्दी के साथ महात्मा गाँधी का नाम उसी अमिट अमरता के साथ जुड़ा हुआ है, जिस प्रकार देश की आजादी के साथ। दक्षिण अफ्रीका में अपने सत्याग्रहों के सफल परीक्षणों के बाद स्वदेश लौटते ही एक ओर उन्होंने देश की स्वाधीनता का शंखनाद किया, तो दूसरी ओर लोक-मानस और उसकी स्वतंत्रता पर भी बल दिया, क्योंकि उनका अनुभव था कि पराधीनता चाहे वह राजनैतिक क्षेत्र की हो अथवा भाषायी क्षेत्र की, दोनों ही एक-दूसरे की पूरक और पीढ़ी-दर-पीढ़ी सदा परमुखापेक्षी बनाए रखने वाली है।''**[7]

यह बात स्फटिक की तरह स्पष्ट है कि गाँधी जी हिन्दुस्तान की प्रमुख भाषा हिन्दी (जिसे वे हिन्दुस्तानी भी कहते थे) को जागृति, एकता, मुक्ति और प्रगति की वाहिका मानते थे। सच्चे अर्थ में स्वतंत्र भारत के सपने को साकार रूप देने हेतु वे दृढ़प्रतिज्ञ थे। इसके लिए जरूरत थी राष्ट्रीय भावना और राष्टीय एकता की। इन्हें कायम करने हेतु वे जन-जन की भाषा हिन्दी की तरफ बढ़े। डॉ. मलिक मोहम्मद ने इस प्रसंग में उचित ही कहा है – **''गाँधी जी के भीतर ज्यों-ज्यों राष्ट्रीयता की आग सुलगती जाती थी, त्यों-त्यों वे देश की एकता को मजबूत करने के रास्ते खोजने लगते थे और ज्यों-ज्यों उनके भीतर भारत की एकता की चिन्ता बढ़ती जाती थी, त्यों-त्यों उनका ध्यान हिन्दी पर केंद्रित होता था।''**[8]

यहाँ राष्ट्रभाषा हिन्दी के स्वरूप के बारे में महात्मा गाँधी के दृष्टिकोण को जान लेना सर्वथा उचित होगा। वे मानते थे कि अखिल भारतीय रूप में प्रयुक्त होने के लिए हिन्दी का रूप सरल, सहजबोधगम्य और ग्रामीण बोली के नजदीक होना चाहिए। वह संस्कृत और अरबी-फारसी के बहुप्रचलित शब्दों से युक्त तथा देहाती बोली की मिठास से सनी होनी चाहिए, ताकि जनता उसे सुगमतापूर्वक उपयोग में ला सके। 1918 ई. को इन्दौर में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण देते हुए महात्माजी ने हिन्दी के स्वरूप पर स्पष्ट रूप से अपना अभिमत रखा था – **''हिन्दी भाषा वह भाषा है, जिसको उत्तर में हिन्दू व मुसलमान बोलते हैं, और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिन्दी एकदम संस्कृतमयी नहीं है, न वह एकदम फारसी शब्दों से लदी हुई है। देहाती बोली में जो माधुर्य मैं देखता हूँ, वह न लखनऊ के मुसलमान भाइयों की**

स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान महात्मा गाँधी और उनके सहयोगियों एवं अनुगामियों की प्रेरणा से जिस हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' की मर्यादा मिल चुकी थी, किन्हीं कारणों से उसे संविधान के जरिए भारतीय संघ की 'राजभाषा' यानी प्रशासनिक एवं अन्य काम-काज की भाषा की पदवी दी गई। हिन्दी राजभाषा तो बनी, परन्तु उसके साथ अंग्रेजी लगी ही रही और वह आज भी जुड़ी हुई है। बल्कि यह कहा जा सकता है कि प्रशासन, कार्यालय,न्यायालय आदि के काम-काजों में आज अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बहुलता से हो रहा है। हिन्दी का प्रयोग मूल रूप में अत्यन्त कम है, अनुवाद के सहारे ही इसका उपयोग आगे बढ़ रहा है। प्रान्तीय स्तर पर देखा जाए तो वहाँ भी अंग्रेजी का ही बहुल प्रयोग देखा जा सकता है। शिक्षा के माध्यम के रूप में तो आज गाँधी जी की इच्छा के प्रतिकूल अंग्रेजी का ही बोलबाला है। सहूलियत और सुविधा की दुहाई देकर आज ज्यादातर प्रसंगों में अंग्रेजी से ही काम लिया जा रहा है। इसके फलस्वरूप ज्यादातर प्रान्तीय भाषाओं का समुचित विकास नहीं हो पा रहा है।

बोली में, न प्रयाग के पंडितों की बोली में पाया जाता है।''[9]

यहाँ इस बात का उल्लेख करना भी अत्यन्त जरूरी है कि राष्ट्रीय स्वाभिमान और व्यावहारिक सुविधा को ध्यान में रखकर ही सत्य-प्रेम-अहिंसा के पुजारी बापू ने भारतवर्ष के सन्दर्भ में प्रन्तीय तथा राष्ट्रीय प्रयोग हेतु अंग्रेजी के विरोध में अपना मत प्रकट किया था। वस्तुत: विश्व-भाषा अंग्रेजी के प्रति उनके मन में किसी प्रकार का बैर अथवा बुरा भाव नहीं था। वे तो सिर्फ इतना चाहते थे कि भारतीय सन्दर्भ में उसका उपयोग हद से बाहर न होकर यथोचित रूप में हो। वे दिल से चाहते थे कि भारतवर्ष के कुछ लोग अंग्रेजी भाषा पर अधिकार प्राप्त करें, ताकि वे अपने देश की तरफ से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और कूटनीति को संभाल सकें। साथ ही वे अंग्रेजी में अभिव्यक्त पाश्चात्य साहित्य, विचार और विज्ञान को भारतीयों के लिए सुलभ कर सकें। सन् 1917 ई. को द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलन में दिए गए अपने अध्यक्षीय भाषण में गाँधीजी ने साफ तौर पर कहा था - **''अंग्रेजी आन्तर-राष्ट्रीय व्यापार की भाषा है, कूटनीति की भाषा है, उसमें अनेक साहित्यिक रत्न भरे हैं। उसके द्वारा हमें पाश्चात्य विचार और संस्कृति का परिचय होता है। इसलिए हम में से कुछ लोगों के लिए अंग्रेजी जानना जरूरी है। वे आन्तर-राष्ट्रीय व्यापार और आन्तर-राष्ट्रीय कूटनीति के विभाग चला सकते हैं और राष्ट्र को पश्चिम का उत्तम साहित्य, विचार और विज्ञान दे सकते हैं। यह अंग्रेजी का उचित उपयोग होगा।''**[10]

राष्ट्रभाषा हिन्दी की जोरदार वकालत करते हुए महात्मा जी ने अन्य भारतीय भाषाओं को भी महत्व देने की बात की थी। वे मानते थे कि अन्य भारतीय भाषाएँ तो हिन्दी की बहनें हैं, सहचरियाँ हैं। गाँधी जी भारतीयों को भारतीय भाषाओं, उनकी मातृभाषाओं में ही शिक्षा देने के पक्षधर थे, ताकि उनका स्वाभाविक बौद्धिक विकास हो सके। भाषाओं की शिक्षा के संदर्भ में वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के अलावा आधुनिक भारतीय भाषाओं, और साथ ही संस्कृत, अरबी, फारसी आदि को भी शामिल करने के पक्षपाती थे। वे सीमित रूप में ही अंग्रेजी की शिक्षा देने के हिमायती थे, शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को बनाने के पक्षपाती तो वे बिल्कुल ही नहीं थे। स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् 'बीबीसी' को दिए गए प्रथम साक्षात्कार में गाँधी जी ने कहा था - **''दुनिया से कह दो कि गाँधी अंग्रेजी नहीं जानता।'** यह वस्तुत: स्वतंत्र भारत के लिए बापू का संदेशा था कि स्वाधीन भारतवर्ष में राष्ट्रभाषा हिन्दी सहित समस्त भारतीय भाषाओं का आदर हो।

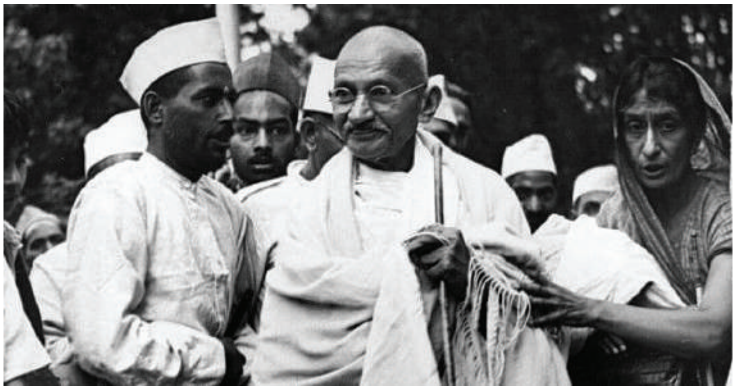

गाँधी जी 1909 ई. से अपने देहावसान के काल तक भारत की भाषा-समस्या पर अपना मत प्रकट करते हुए अंग्रेजी के जरूरत से ज्यादा प्रयोग के विरोध में तथा भारत की अन्य भाषाओं सहित राष्ट्रभाषा हिन्दी के समर्थन में अपनी आवाज बुलन्द करते रहे। उन्होंने अहिंसक असहयोग आन्दोलन के साथ-साथ अपने रचनात्मक कार्यक्रम को भी आगे बढ़ाया और उसमें अन्य बातों के अलावा हिन्दी-प्रचार-कार्य को भी समाविष्ट किया। उनके प्रयास से देश भर में हिन्दी के अनुकूल वातावरण बनने लगा और लोग मानने लगे कि **'हिन्दी सीखना और सिखाना देश-सेवा के कार्य हैं।'** बापूजी की प्रेरणा और उनके अनुगामियों के प्रयत्न से राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रचार-प्रसार हेतु हिन्दी साहित्य सम्मेलन-प्रयाग, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा-मद्रास, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-वर्धा, गुजरात विद्यापीठ-अहमदाबाद, बंबई हिन्दी विद्यापीठ-बंबई, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा-पुणे, हिन्दी विद्यापीठ-देवघर, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-गुवाहाटी, हिन्दी प्रचार सभा-हैदराबद, मैसूर हिन्दी प्रचार सभा-बंगलौर, केरल हिन्दी प्रचार सभा-त्रिवेन्द्रम, उड़ीसा राष्ट्रभाषा परिषद-पुरी, मणिपुर हिन्दी परिषद-इम्फाल आदि संस्थाएँ बनीं और पूरे देश में तथा देश के बाहर भी हिन्दी का प्रचार-कार्य आगे बढ़ता गया।

15 अगस्त, 1947 ई. को देश आजाद हुआ। स्वतंत्र भारत के लिए संविधान बना, जो 26 जनवरी, 1950 ई. से लागू हुआ। गाँधीजी की भाषा-नीति में परिवर्तन-परिवर्धन के साथ संविधान के 343वें अनुच्छेद से लेकर 351वें अनुच्छेद के अन्तर्गत भाषिक प्रावधान समाविष्ट हुए। 343वें अनुच्छेद के जरिए भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया। 345वें अनुच्छेद के अन्तर्गत प्रान्तीय स्तर पर किसी प्रान्त में प्रयुक्त होने वाली भाषाओं में से किसी एक या एकाधिक को अथवा हिन्दी को अंगीकार करने की बात हुई। फिर 351 संख्यक अनुच्छेद के द्वारा संघ या केन्द्रीय सरकार पर यह दायित्व सौंपा गया कि संविधान की अष्टम अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं, विशेषत: संस्कृत की सहायता से हिन्दी को अखिल भारतीय रूप में विकसित किया जाए, ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके।

स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान महात्मा गाँधी और उनके सहयोगियों एवं अनुगामियों की प्रेरणा से जिस हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' की मर्यादा मिल चुकी थी, किन्हीं कारणों से उसे संविधान के जरिए भारतीय संघ की 'राजभाषा' यानी प्रशासनिक एवं अन्य काम-काज की भाषा की पदवी दी गई। हिन्दी राजभाषा तो बनी, परन्तु उसके साथ अंग्रेजी लगी ही रही और वह आज भी जुड़ी हुई है। बल्कि यह कहा जा सकता है कि प्रशासन, कार्यालय,न्यायालय आदि के काम-काजों में आज अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बहुलता से हो रहा है। हिन्दी का प्रयोग मूल रूप में अत्यन्त कम है, अनुवाद के सहारे ही इसका उपयोग आगे बढ़ रहा है। प्रान्तीय स्तर पर देखा जाए तो वहाँ भी अंग्रेजी का ही बहुल प्रयोग देखा जा सकता है। शिक्षा के माध्यम के रूप में तो आज गाँधीजी की इच्छा के प्रतिकूल अंग्रेजी का ही बोलबाला है। सहूलियत और सुविधा की दुहाई देकर आज ज्यादातर प्रसंगों में अंग्रेजी से ही काम लिया जा रहा है। इसके फलस्वरूप ज्यादातर प्रान्तीय भाषाओं का समुचित विकास नहीं हो पा रहा है।

जहाँ तक हिन्दी भाषा के विकास का प्रश्न है, संविधान के 351वें अनुच्छेद के अनुसार गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग, विभिन्न मंत्रालयों, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग इत्यादि संस्थाओं के प्रयास से हिन्दी में इतनी योग्यता आ गयी है कि सर्जनात्मक साहित्य के अलावा ज्ञान-विज्ञान के विविध विषयों, चिकित्सा, आभियांत्रिकी, प्रौद्योगिकी, जन-संचार के माध्यमों, बैंकिंग, कॉरपोरेट, कंप्यूटर, इंटरनेट इत्यादि सभी अधुनातन क्षेंत्रों में उसका सुगमतापूर्वक व्यवहार किया जा सके। यहाँ इस बात का उल्लेख करना जरूरी है कि आज हिन्दी में पारिभाषित शब्दों की संख्या लाख से ऊपर पहुँच गई है। परन्तु एक विशेष मानसिकता के चलते हिन्दी भाषा का बहुल प्रयोग नहीं हो पा रहा है।

इस विशेष मानसिकता को हमें बदलना है। हमें विश्वास रखना है कि हम अपनी भाषा या भाषाओं के माध्यम से एकजुट रहकर प्रान्तों का विकास कर सकते हैं और अपने देश को विकसित राष्ट्र का दर्जा दिला सकते हैं।

विश्व के रूस, चीन, जापान, फ्रांस, अमरीका, जर्मनी, इटली, ग्रेट ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया इत्यादि देशों ने अपनी-अपनी भाषाओं के जरिए ही प्रगति की है। आजादी की प्राप्ति के समय से भारतीय भाषाओं में काम-काज हुए होते तो भाषाओं का समुचित विकास भी होता और साथ ही सही आर्थिक प्रगति भी होती। अब भी बहुत देर नहीं हुई है। अब भी हम सही रास्ते पर वापस आ सकते हैं। हिन्दी में एक कहावत है - **'सुबह का भुला शाम को अगर घर वापस आए तो वह भुला नहीं कहलाता।'**

महात्मा गाँधी की भाषा-नीति को आधार बना कर आज भी हमलोग अपने में भाषायी स्वाभिमान को जगा सकते हैं तथा प्रांतों की एवं देश की भाषिक स्थिति को पटरी पर लाकर समवेत स्वर से नारा दे सकते हैं -**'एक हृदय हो भारत-जननी।'** ❑

संदर्भ सूची :

1. महात्मा गाँधी, 'राष्ट्रभाषा का सवाल' शीर्षक लेख, स्मारिका (1991), स्वर्ण जयन्ती समारोह, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पृष्ठ-7
2. महात्मा गाँधी, इंडियन होमरूल (हिन्द स्वराज्य, 1909), 18वाँ अध्याय
3. महात्मा गाँधी, 'राष्ट्रभाषा का सवाल' शीर्षक लेख,स्मारिका (1991), स्वर्ण जयन्ती समारोह, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पृष्ठ-10
4. काकासाहब कालेलकर, 'गाँधीजी और राष्ट्रभाषा' शीर्षक लेख, स्मृति ग्रंथ, रजत जयन्ती समारोह (1964), असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पृष्ठ-4
5. संपूर्ण गाँधी वाङ्मय, खण्ड-16, पृष्ठ-212
6. संपूर्ण गाँधी वाङ्मय, खण्ड-13, पृष्ठ-424
7. गोविन्ददास, गाँधी हिन्दी दर्शन, पृष्ठ-306
8. डॉ. मलिक मोहम्मद, राजभाषा हिन्दी : विकास के विविध आयाम (1999), पृ. 107
9. डॉ. भोलानाथ तिवारी, राजभाषा हिन्दी (1998), पृष्ठ-34 से उद्धृत
10. महात्मा गाँधी, 'राष्ट्रभाषा का सवाल' शीर्षक लेख, स्मारिका (1991), स्वर्ण जयन्ती समारोह, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पृष्ठ-10

स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी-काव्य का अवदान

प्रो. सुशील कुमार शर्मा

अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मिजोरम केंद्रीय विश्वविद्यालय
आइजल-796004,
मो. 9436105977
ई-मेल : sksharma19672@gmail.com

शोध-सार :

जब हम आज आजादी के अमृत महोत्सव की बेला में काव्य के अवदान को रेखांकित करने का उपक्रम कर रहे हैं तो यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि भारत शौर्य और पराक्रम की धरा है। हमें और हमारे काव्य को वीरता का पाठ तब से पाया जाता है, जब देश अलग-अलग राज्यों-रियासतों में बंटा हुआ था। यह अलग बात है कि वे परस्पर ही लड़ते थे और स्वजाति तथा स्वधर्म को हानि पहुँचाते थे। परंतु राजपूताना शौर्य और देश के अन्यान्य भागों में विस्तारित शौर्य से हमारे काव्य को ऊर्जा प्राप्त हुई। सन् 1947 में देश आजाद हुआ। राष्ट्र के सम्मुख अपने पैरों पर खड़ा होने की चुनौतियाँ थीं। अंग्रेजी राज समाप्त हो चुका था और जनता का राज स्थापित हो चुका था। स्वतंत्रता के तत्काल पश्चात देश का बंटवारा, पाकिस्तान से युद्ध, चीन से युद्ध जैसी विभीषिकाओं को देश ने झेला। इन सब के मध्य आम चुनाव हुए। नई-नई नीतियाँ बनीं तथा भारत का परिदृश्य ही बदल गया। अभी विश्व के समक्ष खड़ा होने की चुनौती देश के समुख थी। तदनुसार कवियों का काव्य और भी परिवर्तित हुआ, लेकिन राष्ट्रीय चिंतन न्यून नहीं हुआ। कवि ने अपनी वाणी के द्वारा राष्ट्र की चुनौतियों को मुखर किया और उसके अनुसार अपने काव्य को इस परिवेश में डाला परंतु यहाँ इसकी व्याख्या अभिप्रेत नहीं है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दोनों चरणों पर हिंदी काव्य का अप्रतिम प्रभाव पड़ा। हिंदी काव्य का जो ज्ञात इतिहास है - तब से लेकर अद्यतन हिंदी काव्य पग-पग पर राष्ट्र के साथ कदम ताल करता रहा। कहीं न्यून, तो कहीं अधिक, कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं परोक्ष।

बीज-शब्द : स्वतंत्रता, हिंदी काव्य, अमृत महोत्सव, राष्ट्र, अवदान, संग्राम, क्रांतिकारी, देश प्रेम।

विश्लेषण :

आधुनिक काल के पूर्व रीतिकाल का समापन हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार रीतिकाल का समय सन 1643 से 1843 तक है। सन 1843 के 14 वें वर्ष में अर्थात 1857 में भारतवर्ष का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम लड़ा गया और लगभग यही काल आधुनिक युग के प्रारंभ होने का है। इसे भारतेंदु हरिश्चंद्र ने सर्वाधिक प्रभावित किया। बाबू भारतेंदु हरिश्चंद्र युग प्रवर्तक

साहित्यकार थे। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। हिंदी साहित्य को विविध विधाओं को प्रारंभ करने का श्रेय भारतेंदु को ही है परंतु हिंदी काव्य में स्वतंत्रता आंदोलन के विभिन्न पहलुओं का उल्लेख भारतेंदु के पूर्व होने लगा था। यह और बात है कि इस काव्य का वृहद मूल्यांकन न तब हुआ और न अब हो रहा है।

राजपूताना शौर्य और देश के अन्यान्य भागों में विस्तारित शौर्य से हमारे काव्य को ऊर्जा प्राप्त हुई। आदिकाल का परमाल रासो शौर्य का यही संदेश देता है-

बारह बरीस लौ कूकर जीवे,
और तेरह लौ जिये सियार।
बरिस अठारह छत्री जीवे,
आगे जीवन को धिक्कार।। [1]

शौर्य की यही भाषा भक्ति काल - रीतिकाल में परिलक्षित होती है। यद्यपि रीतिकाल श्रृंगार का युग था, लेकिन इसी काल के भूषण, गोरे लाल तिवारी, लाल तथा छत्रसाल जैसे कवियों ने काव्य को जो स्वर दिए उसके दूरगामी परिणाम सन 1857 की क्रांति के समय सृजित काव्य पर परिलक्षित हुए।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम दो चरणों में लड़ा गया। प्रथम चरण था 1857। दूसरा चरण था 1914। प्रथम चरण का समापन ब्रिटेन की महारानी की घोषणा पत्र के साथ सन 1859 में हुआ। यहाँ आकर ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन समाप्त हो जाता है और अंग्रेजी शासन पूरी तरह भारत में स्थापित हो जाता है। सन 1860 से 1910 तक का समय भारत में अंग्रेजों के द्वारा किए गए विभिन्न निर्माण कार्यों का काल है। इस काल में कारखाने खोले गए, छापेखाने खोले गए, डाकखाने और तारघर खोले गए। रेल पथों का निर्माण द्रुत गति से हुआ। परंपरागत शिक्षा के स्थान पर भारतीय शिक्षा प्रणाली में पश्चात शिक्षा ने अपने पैर जमाए। महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र के पश्चात भी स्वतंत्रता आंदोलन रुका नहीं चलता रहा। सन 1914 में महात्मा गांधी का प्रवेश भारतीय राजनीति में हुआ और यहीं से स्वतंत्रता आंदोलन का दूसरा चरण प्रारंभ होता है, जो 1947 तक अर्थात स्वतंत्रता प्राप्ति तक चलता रहा।

सन 1857 के अनेक अनछुए पृष्ठ अब भी बंद हैं, जो न तो खोले गए और न ही पढ़े गए। इनमें मध्य प्रदेश के मंडला के शंकर शाह और उनके सुपुत्र रघुनाथ शाह की ऐसी ही दुखद कहानी है। संभवत यह कहानी अपने आप में इकलौती हृदय विदारक कहानी है, शायद ही इतिहास में ऐसी कोई दूसरी घटना हुई होगी, जहां केवल क्रांतिकारी कविता का आरोप लगाते हुए, क्रांतिकारियों को तोप से बांध कर उड़ा दिया गया हो।

वीरांगना दुर्गावती के वंशज थे - महाराज शंकर शाह और रघुनाथ शाह। ये दोनों कविता करते थे। विरोधियों और अंग्रेजों के पिट्ठुओं ने अंग्रेज सार्जेंट के कान भर दिए कि शंकर शाह और रघुनाथ शाह अंग्रेज सरकार के विरुद्ध कविता करते हैं तथा जनता को अंग्रेज सरकार के विरुद्ध उकसाते हैं। अंग्रेज सरकार ने शंकर शाह की हवेली पर छापा डलवाया। उनकी हवेली की तलाशी में केवल दो कविताएँ प्राप्त हुई। इन दोनों कविताओं के आधार पर अंग्रेज सरकार ने इन पर मुकदमा चलाया और 18 सितम्बर, 1857 को जबलपुर में खुले मैदान में पास-पास तोपों से बंधवा कर उड़ा दिया गया। जिन छन्दों के आधार पर अंग्रेजों ने इन्हें उड़ाया, महाराज शंकर शाह ने निम्नलिखित छंद उच्च स्वर में सुनाया -

मूँद मूख डण्डिन को चुगलों की चबाई खाई
खूब दौड़ दुष्टन को शत्रु संहारिका।
मार अंगरेज रेज कर देई मात चण्डी
बचे नाहिं बैरी बाल बच्चे संहारिका।
संकर की रक्षा कर दास प्रतिपाल कर
वीनती हमारी सुन अब मात पालिका।
खाई लेइ मलेच्छन को झेल नाहिं करो अब
भच्छन ततच्छन कर बैरिन कौ कालिका।। [2]

रघुनाथ शाह ने और भी उच्च स्वर में निम्नलिखित

छंद सुनाया –

कालिका भवानी माय अरज हमारी सुन
डार मुण्डमाल गरे खड्ग कर धर ले।
सत्य के प्रकासन औ असुर बिनासन कौ
भारत समर माँहि चण्डिके संवर ले।
झुण्ड-झुण्ड बैरिन के रुण्ड मुण्ड झारि-झारि
सोनित की धारन ते खप्पर तू भर ले।
कहै रघुनाथ माँ फिरंगिन को काटि-काटि
किलिक-किलिक माँ कलेऊ खूब कर ले।।[3]

उपर्युक्त दोनों छंदों में दुर्गा और काली माता से अंग्रेजों के सर्वनाश करने की प्रार्थना की गई है।

सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रसिद्ध झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई रचना खड़ीबोली में सृजित है –

चमक उठी सन सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी
बुंदेले हरबोलों के मुँह, हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झाँसी वाली रानी थी॥ [4]

खड़ीबोली के विकास होने के पूर्व लक्ष्मीबाई पर अनेक शौर्य गीत लिखे गए और कई रासो ग्रंथ को लिखे गए। इनमें 'रानी लक्ष्मीबाई जू कौ रायसो' प्रमुख है। झाँसी की रानी के शौर्य को प्रदर्शित करती घासीराम व्यास की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

ले के कर बालिका कराल काल बालिका सी,
कालिका सी कठिन प्रन ठाने थे।
रण रस रंगी जंगी फौज के तिलंगी हुये,
अमित उमंगी तेग जंगी के निशाने थे।
व्यास कहैं महारानी लक्ष्मी तुम्हारे मास,
सारे शत्रुओं के हीय हौसिले हिराने थे।
कोई बने मोची कोई धोबी बने पोची कोई,
कोई अंग्रेज रंगरेज से दिखाने थे।[5]

इसी प्रकार का एक और छंद जो सेवकेंद्र त्रिपाठी के द्वारा लिखा गया –

साहस की प्रतिमा प्रतीति वीरता बढ़ी,
चढ़ी आज सिंह वाहनी भवानी सी।
छाय गई यश के अखण्ड तेज बूतल पै,
मूर्तिमती सॉची वलिदान की कहानी सी।।
सेवकेन्द्र आन बान शान में प्रभान लीक,
पावन प्रतीक ज्योति अमिट निशानी सी।
खण्ड लै उमंग सौ फिरंग दल काट कीन्हें,
गंगाधर रानी कढ़ी गंगाधर रानी सी।।[6]

पदमाकर रीतिकाल के अंतिम कवि हैं। वे शृंगार एवं प्रकृति के कवि हैं, परंतु उनका एक रूप राष्ट्रीयता का भी है –

कहैं पदमाकर, कसक काश नीर हूँ को।
पंजिर-सा घिरि के , कलिंजर छुड़ावेगा।
दिल्ली दहलाउ, पटना हूँ को छटपटाकर।
कहूँ कलकत्ता के, लत्ता से उड़ावेगा।[7]

प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन के पश्चात अंग्रेजी सत्ता का पूर्ण वर्चस्व देश पर हो चुका था। यही वह समय था, जब भारतेंदु का पदार्पण हिंदी काव्य में होता है और हिंदी काव्य की धारा एकदम से परिवर्तित हो जाती है। भारतेंदु प्रथम बार हिंदी काव्य में निर्भीक होकर यह घोषणा करते हैं –

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेश चलि जात इहै अति ख्वारी॥[8]

भारतेंदु का अंधेर नगरी, भारत दुर्दशा आदि नाटक देश प्रेम के अद्भुत उदाहरण हैं। उनके माध्यम से अनेक कविताएँ भारतेंदु ने राष्ट्र प्रेम की लिखी हैं। इन कविताओं में उनकी राष्ट्र गौरव के प्रति चिंता, देश की अवनति और भारतीय संस्कृति की दुरावस्था भी समाहित है। 'भारत दुर्दशा' नाटक का यह गीत उल्लेखनीय है –

रोअहू सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो।
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो।
सबके पहिले विद्या फल जिन गहि लीनो॥
अब सब के पीछे सोई परत लखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।[9]

भारतेंदु की प्रेरणा से उनके समकालीन अन्य कवियों ने भी राष्ट्र प्रेम के प्रति उनका अनुसरण किया। भारतेंदु युग के पश्चात द्वितीय उत्थान में इस प्रवृत्ति का विकास हुआ। इस समय तक भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी

का प्रवेश हो चुका था। गांधी जी ने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से हिंदी कविता को भी प्रभावित किया। इस काल के दौरान तमाम कवि से गांधी जी से प्रभावित हुए, तदनुसार कविताओं तथा काव्य-ग्रंथों का सृजन किया। इन कवियों में सियारामशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्याम नारायण पांडे, माखन लाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा अन्यान्य हजारों कवियों का स्वर रहा। परंतु इन सब के ऊपर मैथिलीशरण गुप्त का स्वर अत्यन्त मुखर रहा। उनकी 'भारत भारती' ने तो समूचे देश की चेतना को झकझोर कर रख दिया। गुप्त जी ने देश की चिंतनीय अवस्था पर दुख प्रकट करते हुए लिखा है-

हम कौन थे, क्या हो गये हैं और क्या होंगे ।
आओ विचारें आज मिल कर, येइ समस्या सभी।[10]

इस काल के कवियों में स्पष्ट रूप से दो धाराएँ परिलक्षित होती हैं, एक गांधीवाद से प्रभावित धारा तो दूसरी क्रांतिकारी भावना से प्रभावित धारा। भक्तिकाल और रीतिकाल में जो नायिकाएँ थीं। उन्हें इस काल के कवियों ने सर्वथा नया रूप प्रदान किया और वे समाज सेविकाओं के रूप में उभर कर प्रस्तुत हुईं। हरिऔध जी ने राधा को एक समाज सेविका के रूप में प्रस्तुत किया। भक्तिकाल की वियोगिनी राधा रीतिकाल की रसिक राधा अब न कृष्ण के विरह में रोती है और न ही कुंज गलियों में कृष्ण के साथ रास रचाती है। अब वह घंटों समाज सेवा में अपना समय व्यतीत करती है -

राधा जाती प्रति-दिवस थीं पास नन्दांगना के।
नाना बातें कथन करके थीं उन्हें बोध देती।
जो वे होतीं परम-व्यथिता मूर्छिता या विपन्ना।
तो वे आठों पहर उनकी सेवना में बितातीं।। [11]

देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ बदल रही थीं। गांधी जी के आगमन के पूर्व बंग भंग आंदोलन हो चुका था। गांधी जी के आगमन के पश्चात सन 1919 में जलियां वाला कांड की विभीषिका ने देश को दहला दिया था। और इसी प्रकार की क्रांतिकारी गतिविधियाँ चल रही थीं।

सुभद्रा कुमारी चौहान, श्याम नारायण पांडे, माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवि क्रांतिकारियों का स्तवन कर रहे थे। जहाँ सुभद्रा कुमारी चौहान लिखकर क्रांतिकारियों का मनोबल बढ़ा रही थीं -

वीरों का कैसा हो वसन्त ?
आ रही हिमाचल से पुकार
हि है उद्धि गरजता बार-बार
प्राची पश्चिम भू नभ अपार
सब पूछ रहे हैं दिग दिगंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ? [12]

वहीं माखनलाल चतुर्वेदी वीरों का उत्साह वर्धन कर रहे थे -

चाह नहीं, मैं सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध
प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर
हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर
चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ,
मुझे तोड़ लेना बनमाली,
उस पथ पर देना तुम फेंक!
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ पर जावें वीर अनेक! [13]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल के तृतीय उत्थान को छायावाद की संज्ञा दी है। यद्यपि यह काल वेदना, निजी सुख-दुख और रहस्यवाद के लिए चर्चित है तथापि राष्ट्र प्रेम का भाव इस युग में पर्याप्त लिखा गया।

जयशंकर प्रसाद ने नाटकों के द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं को पुष्ट किया है। प्रसाद राष्ट वंदना करते हुए लिखते हैं-

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।। [14]

प्रसाद स्वतंत्रता की कामना करते हुए लिखते हैं-

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती -
स्वयं प्रभा समुज्वला
स्वतंत्रता पुकारती -

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है - बढ़े चलो, बढ़ चलो॥ [15]

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' भारत स्तवन करते हुए लिखते हैं-

भारति, जय, विजय करे
कनक-शस्य-कमल धरे!
लंका पदतल-शतदल
गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण-युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे!
तरु-तण वन-लता-वसन
अंचल में खचित सुमन
गंगा ज्योतिर्जल-कण
धवल-धार हार लगे!
मुकुट शुभ्र हिम-तुषार
प्राण प्रणव ओंकार
ध्वनित दिशाएँ उदार
शतमुख-शतरव-मुखरे! [16]

सुमित्रानंदन पंत ने भी देश प्रेम की कविताएँ लिखी हैं-

भारत माता ग्रामवासिनी
खेतों में फैला है श्यामल,
धूल भरा मैला सा आँचल,
गंगा यमुना में आँसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी!
दैन्य जड़ित अपलक नत चितवन,
अधरों में चिर नीरव रोदन,
युग-युग के तम से विषण्ण मन,
वह अपने घर में
प्रवासिनी! [17]

हिंदी काव्य इसके आगे बढ़ता है और प्रगतिवाद तक पहुँचता है। इस काल में असंतोष और विद्रोह की भावना प्रबल थी। रामेश्वर शुक्ल अंचल ने लिखा है -

देखो मुट्ठी भर दाने को
तड़प रहे कृषकों को काया,
कब से शुद्ध पड़ी खेतों में
जागो इंकलाब फिर आया। [18]

यह काल मार्क्सवादी चिंतन के काव्य रूपांतरण के लिए जाना जाता है। इस काल में कार्ल मार्क्स और साम्यवादी विचारों को ध्वनित किया गया है।

इसके बावजूद भी राष्ट्र चेतना की व्याप्ति प्राप्त होती है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का उल्लेखनीय योगदान इस काल का है। नवीन, महात्मा गांधी और विनोबा भावे से प्रभावित हैं। फिर भी इनके गीतों में राष्ट्रीयता की भावना परिलक्षित होती है -

मैं हूं भारत के भविष्य का
मूर्तिमान विश्वास महान
मैं हूं अटल हिमाचल-सा स्थिर
मैं हूँ मूर्तिमान बलिदान। [19]

प्रगतिवाद के प्रभाव से आवेष्ठित नवीन की कविता क्रांति का विस्फोट करती है -

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाए,
एक हिलोर इधर से आए,
एक हिलोर उधर से आए,
नियम और उपनियमों के ये
बंधक टूक-टूक हो जाएँ,
विश्वंभर की पोषक वीणा
के सब तार मूक हो जाएँ। [20]

श्याम नारायण पांडेय इस युग के क्रांतिकारी कवि थे। इन्होंने 'हल्दीघाटी' और 'जौहर' जैसे महाकाव्य सृजित किए। राष्ट्र प्रेम की क्रांतिकारी कविताएँ लिखने वालों में मोहन लाल महतो, डॉ.रामकुमार वर्मा, रामधारी सिंह 'दिनकर', रघुवीर शरण सिंह, श्री गोपाल शरण सिंह, श्याम नारायण प्रसाद, लक्ष्मी नारायण कुशवाहा, आनंद मिश्र तथा राम अवतार 'अरुण'आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महान सेनानियों को केंद्र में रख कर अनेक काव्य सृजित किए।

सन 1947 में देश आजाद हुआ। राष्ट्र के सम्मुख अपने पैरों पर खड़ा होने की चुनौतियाँ थीं। अंग्रेजी राज

समाप्त हो चुका था और जनता का राज स्थापित हो चुका था। स्वतंत्रता के तत्काल पश्चात देश का बंटवारा, पाकिस्तान से युद्ध, चीन से युद्ध जैसी विभीषिकाओं को देश ने झेला। इन सब के मध्य आम चुनाव हुए। नई-नई नीतियाँ बनीं तथा भारत का परिदृश्य ही बदल गया। अभी विश्व के समक्ष खड़ा होने की चुनौती देश के समुख थी। तदनुसार कवियों का काव्य और भी परिवर्तित हुआ, लेकिन राष्ट्रीय चिंतन न्यून नहीं हुआ। कवि ने अपनी वाणी के द्वारा राष्ट्र की चुनौतियों को मुखर किया और उसके अनुसार अपने काव्य को इस परिवेश में डाला परंतु यहाँ इसकी व्याख्या अभिप्रेत नहीं है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दोनों चरणों पर हिंदी काव्य का अप्रतिम प्रभाव पड़ा। हिंदी काव्य का जो ज्ञात इतिहास है - तब से लेकर अद्यतन हिंदी काव्य पग-पग पर राष्ट्र के साथ कदम ताल करता रहा। कहीं न्यून, तो कहीं अधिक, कहीं प्रत्यक्ष तो कहीं परोक्ष। ❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. परमाल रासो, जगनिक, पृ. 49
2. बुंदेलखंड का स्वतंत्रता संग्राम (राष्ट्र गौरव परिचय) - संपादक दशरथ जैन (स्वतंत्रता अभियान में बुंदेली भूमि के काव्य स्वरों में युगल बंदी श्रीनिवास शुक्ल प्रकाशित आलेख), पृ. 4
3. रामगढ़ की रानी, वृंदावन लाल वर्मा, पृ. 37
4. मुकुल तथा अन्य कविताएँ, सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ. 64
5. बुंदेलखंड का स्वतंत्रता संग्राम (राष्ट्र गौरव परिचय), संपादक दशरथ जैन (स्वतंत्रता अभियान में बुंदेली भूमि के काव्य स्वरों में युगल बंदी श्रीनिवास शुक्ल प्रकाशित आलेख), पृ. 456
6. वही, पृ. 457
7. हिम्मत बहादुर विरदावली, पद्माकर, पृ.39
8. भारत दुर्दशा, भारतेंदु, पृ.18
9. वही, पृ. 21
10. भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 10
11. प्रियप्रवास, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पृ. 134
12. मुकुल तथा अन्य कविता, सुभद्रा कुमारी चौहान, पृ. 111
13. मरण ज्वर, माखनलाल चतुर्वेदी, पृ. 15
14. चंद्रगुप्त,जयशंकर प्रसाद, पृ. 53
15. वही, पृ.177
16. राग विराग (सूर्यकांत त्रिपाठी निराला), संपादक रामविलाश शर्मा, पृ.76
17. ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, पृ. 19
18. मधुलिका, रामेश्वर शुक्ल अंचल, पृ. 27
19. विप्लव गायन- बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृ. 58
20. वही, पृ. 36

भारत में राष्ट्रभाषा का प्रश्न और हिंदी

डॉ. कंचन शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग,
मणिपुर केंद्रीय विश्वविद्यालय
इंफाल-795003 (मणिपुर)
मो. 9435308852
ई-मेल : sarnmuktasharma@gmail.com

भारत में राष्ट्रभाषा का प्रश्न उन्नीसवीं शताब्दी की देन है। भारतवर्ष दो सौ वर्षों तक अंग्रेजों का उपनिवेश बना रहा। भारत के अपनी आजादी के लिए चुकाए गए कीमतों में सांप्रदायिकता का जन्म, देश का विभाजन और राष्ट्रभाषा का प्रश्न मुख्य रहे। आज विचार किया जाए तो पाकिस्तान से शत्रुता अपने ही देश के एक टूटे हुए हिस्से से चोट है। इसके पीछे एक ही देश में मिल-जुलकर रहनेवाले बाशिंदों के बीच की धार्मिक असुरक्षा और असहिष्णुता है। इसकी चुभन भी आज तक भारत झेल रहा है और आए दिन हजारों जानों की बली चढ़ती है दोनों देशों से - भारत से भी और पाकिस्तान से भी, परंतु सांप्रदायिकता का रक्तबीजी नर्तन थमता ही नहीं। और अंतत: भाषिक एकता जो संपूर्ण स्वाधीनता संघर्ष-काल तक प्रश्न-रहित था, स्वतंत्रता के बाद प्रश्नों के घेरे में खड़ा कर दिया गया। सच पूछा जाए तो यह कोई प्रश्न है ही नहीं और बना दिया जाए तो पहाड़ है। पहाड़ तो है। आखिर ये राष्ट्रभाषा-पहाड़ है क्या ?

भारतवर्ष के संदर्भ में रोचक बात यह है कि औपनिवेशिक काल से पहले संपूर्ण या कहें अधिकांश भारतवर्ष में अद्भुत सांस्कृतिक एकता थी। धार्मिक और सांस्कृतिक एकता का अद्भुत फैलाव था। यहाँ तक कि सनातन धर्म में आस्था रखने वालों के बीच विधवा-विधान, छुआछूत, वर्ण-व्यवस्था के नियम संपूर्ण भारतवर्ष में एक-से थे। इसी सांस्कृतिक एकता के प्रतीक-स्वरूप देश के चार कोने में चार महातीर्थ - (1) बद्रीनाथ (2) जगन्नाथपुरी (3) रामेश्वरम् (4) द्वारिकाधाम स्थापित किए गए थे। इतना ही नहीं, रीति-रिवाजों के साथ-साथ पर्व-त्योहार और पूजा-अर्चना पद्धति में भी बहुत हद तक समानता थी। उदारवादी चिंतन जॉन स्टुअर्ट मिल के अनुसर राष्ट्रीयता में चार तत्वों की प्रधानता आवश्यक है - पूर्वजों की एकता, भौगोलिक एकता, भाषा और जाति की एकता तथा राजनीतिक लक्ष्य की एकता। भाषिक एकता का जहाँ तक प्रश्न है भारतवर्ष के संबंध में यह स्वाधीनता-आंदोलन के दौर तक विवादित नहीं था। प्राचीन भारतवर्ष में दीर्घ काल तक संस्कृत-साहित्य की भाषा बनी रही, फिर प्राकृत-अपभ्रंश। आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्यिक स्वरूप के विकास में ब्रजभाषा अग्रणी रही और फिर खड़ीबोली 'हिन्दी'। यह भी तथ्य है कि सन् 1835 ई. के बाद भारतीय भाषाओं का विकास अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व से जूझता रहा। इन सबके बावजूद साहित्य और जनमानस के केंद्र में सन् 1857 की क्रांति से लेकर सन् 1947 तक राष्ट्र

के संघर्ष की अभिव्यक्ति की भाषा हिन्दी बनी रही।

राष्ट्रवाद के व्याख्याकारों ने प्राय: दो तरह के राष्ट्रवाद के स्वरूपों की व्याख्या की है ज्ञानात्मक राष्ट्रवाद, जिसे वे 'पश्चिमी राष्ट्रवाद' कहते हैं और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, जिसे 'पूरबी राष्ट्रवाद' कहते हैं। जॉन प्रेमेनॉत्ज, गेलनर, एरिक हॉब्सबॉम, होरेस बी. डेविस और बेनेडिक्ट एण्डरसन ऐसे चिंतकों में प्रमुख हैं। बेनेडिक्ट एण्डरसन ने तो तीन प्रकार के राष्ट्रवाद का उल्लेख किया है। पहला – क्रिओल राष्ट्रवाद (Crcole), दूसरा – यूरोपीय मॉडल, तीसरा – रूसी मॉडल। ये सारी अवधारणाएँ और परिभाषाएँ यूरोप के मॉडल पर आधारित थीं। भारतवर्ष के संबंध में इन्हें लागू नहीं किया जा सकता।

भारतवर्ष में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग अत्यंत प्राचीन है। वैसे तो पश्चिमी – आधुनिक चिंतकों एवं इतिहासकारों के अनुसार भारतवर्ष को 'राष्ट्र' नहीं माना जा सकता, क्योंकि 'राष्ट्र' की अवधारणा के लिए आवश्यक तत्वों का भारतवर्ष के संदर्भ में अभाव है। वहीं यह भी समझना चाहिए कि प्राचीन भारत 'एक सरकार, एक जाति' के अर्थ में राष्ट्र कभी नहीं था। दरअसल 'रष्ट्रीयता' का संबंध चेतना और संवेदना से अधिक है। यह किसी भी देश की भौगोलिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विरासत से जुड़ी होती है। भारत के प्राचीनतम साहित्य – वैदिक साहित्य, यजुर्वेद और अथर्ववेद[1] में 'राष्ट्र' शब्द का उल्लेख मिलता है। राष्ट्र शब्द का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद[2] में तो है ही, विष्णु-पुराण में भी 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी' की भावना की अभिव्यक्ति हुई है।

> **''गायन्ति देवा किल गीतकानि**
> **धन्यास्तुते भारतभूमि भागे,**
> **स्वर्गापवर्गास्पद मार्गभूते भवन्ति भूयः**
> **पुरूषाः सुरत्वात्॥''**

(विष्णु पुराण 2/3/25)

(भारत-भूमि में जन्म लेनेवाले धन्य हैं। देवता भी उनका गुणगान करते हैं। भारत ऐसी भूमि है, जहाँ जन्म लेने से स्वर्ग एवं मोक्ष दोनों ही प्राप्त हो जाते हैं। भारतवासी स्वर्ग के देवताओं से भी अधिक भाग्यशाली हैं, भारतीयों के लिए यह भूमि जन्मभूमि, पुण्यभूमि, मातृभूमि तथा स्वर्गभूमि सभी कुछ है।)

भारत के संदर्भ में आधुनिक काल में राष्ट्रीयता के चार तत्वों में से दो तो मिलते ही हैं –

(1) राजनीतिक लक्ष्य की एकता – अंग्रेजी साम्राज्य की दासता से मुक्ति और लोकतंत्र की स्थापना भारतवर्ष का एक राजनीतिक लक्ष्य था। (2) भाषिक एकता – यह सच है कि जितनी भाषागत भिन्नता आधुनिक भारत में है, उतनी प्राचीन काल में नहीं थी। वैदिक और लौकिक संस्कृत फिर प्राकृत और अपभ्रंश के बाद भारत की भाषागत भिन्नता तो बढ़ी – प्रत्येक दो कोस पर बोली और दस कोस पर भाषा बदल जाती है। हैंसकोन ने जिले 'आइडिया ऑफ नेशनलिज्म' कहा था, वह भारतवर्ष के संदर्भ में 'हिंदीज्म' से आता है। लोकतांत्रिक भारतवर्ष में सन् 2000 में अब भारत के उत्तरपूर्व राज्य मणिपुर में अलगाववादियों ने भारतवर्ष का विरोध करना प्रारंभ किया और कहा 'Stamp Out Indianization' तो सबसे पहले उन लोगों ने 'हिंदी' का विरोध किया और संस्कृति का प्रतीक हिंदी-सिनेमा, हिन्दी-गीतों पर प्रतिबंध लगाया। यानी जनमानस में 'Indianization' का अर्थ भाषा के स्तर पर हिंदी है। और इसीलिए अलगाववादी शक्तियों ने 'हिंदी भाषा' पर रोक लगा दी। परन्तु हुआ इसका उलटा। अब सरकारी गैर सरकारी स्कूलों में हिंदी पढ़ना आठवीं कक्षा तक आवश्यक है। हिंदी प्रचार-प्रसार के तैंतीस पंजीकृत संस्था हैं। महाविद्यालय-विश्वविद्यालय में हिंदी पठन-पाठन और हिन्दी में शोध होता है। जनता दूरदर्शन पर हिंदी सिनेमा, सिरियल देखती है। मोबाइल, कार में हिंदी गाने बजते हैं। अभिप्राय यह कि बंदूक की नोंक और बम के धमाकों से भी अलगाववादी हिन्दी का विकास नहीं रोक पाए, यह हिंदी की जनप्रियता का, जन-भाषाई स्वरूप का प्रमाण है।

सन् 1857 की क्रांति में इसी जनप्रिय हिंदी को संदेश भेजने का माध्यम बनाया गया था। अंग्रेज शासक भी इसी हिंदी भाषा के माध्यम से सामंतों से संवाद करते थे। जनता के बीच भी बोलचाल की भाषा, संपर्क की भाषा यही हिंदी थी। अंग्रेजी राज व्यवस्था ने जिस 'हिंदी गद्य' को संचार की भाषा बनाकर अपने साम्राज्य के सुदृढ़ संचालन का आधार विकसित करना चाहा, उसी अंग्रेजी राज व्यवस्था को हिंदुस्तान से समाप्त कर, हिंदुस्तान को आजाद कर लेने के लिए देश के विभिन्न क्रांतिकारी संगठनों, राजनीतिक-सामाजिक

संगठनों ने भी अपने संचार का माध्यम उसी 'हिंदी' को ही बनाना तय किया और बनाया भी।

सन् 1925 में कानपुर अधिवेशन में भारत के कांग्रेस पार्टी ने एक भाषा विषयक नीति निर्धारण हेतु प्रस्ताव पास किया, जिसमें स्पष्ट रूप से निर्देश अंकित है कि 'प्रत्येक प्रांत अपने प्रांत के अंतर्गत जिस माध्यम भाषा का उपयोग राजनीतिक संचार के लिए करेगा, वह वहाँ की स्थानीय भाषा होगी। और, जब वहीं प्रांत दूसरे प्रांतों से संपर्क बनाएगा या संघ से सम्पर्क स्थापित करेगा तो माध्यम भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करेगा।' स्वाधीनता संग्राम के दौर में विभिन्न संगठनों ने भी अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंकने के लिए माध्यम भाषा के रूप में, विचारधारा के प्रचार-प्रचार के माध्यम के रूप में हिंदी को ही स्वीकारा और यह काम गैर हिंदी भाषी राजनेताओं ने आगे बढ़कर किया। मदनमोहन मालवीय, महात्मा गाँधी, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, सुनीति कुमार चटर्जी, केशवचंद्र सेन, विद्यासागर, सुभाषचन्द्र बोस, स्वामी दयानंद सरस्वती आदि सभी तो अहिंदी क्षेत्र से ही थे। इतना ही नहीं, कांग्रेस पार्टी ने अपना कार्यालय इलाहाबाद में, क्रांतिकारियों का संगठन कार्यालय कानपुर में और समाजवादियों का लखनऊ में लाया गया, क्योंकि सबने यह अनुभव किया कि पूरे हिंदुस्तान में सबसे अधिक बोलने-समझनेवाले लोग हिंदी भाषी हैं - इसलिए इस भाषा को 'स्वाधीनता की वाणी' के रूप में विकसित किया गया। 'हिन्दी' राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गयी, वतन का पर्याय बन गयी।

'हिंदी' की त्रासदी की शुरुआत होती है स्वाधीन भारत से। स्वाधीन भारत की संविधान सभा ने हिंदी को 'राजभाषा' के रूप में स्वीकार किया। 'जन-भाषा' अब 'राजभाषा' बन गयी। आम भाषा, आम जन से कटकर राजसत्ता की भाषा बन गयी, अभियान की भाषा बन गयी। हालाँकि संविधान में 'Language of Communication', 'संपर्क भाषा' कहा गया है 'हिन्दी' को, न 'राष्ट्रभाषा' न राजभाषा। यही कारण है कि स्वाधीन भारत में हिंदी को 'राष्ट्रभाषा' या राजभाषा के रूप में विकसित करने के बजाय उसे अंतर्विरोधों के केंद्र में ला खड़ा किया, परन्तु प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने आज स्वाधीनता सेनानियों द्वारा देखे गए 'हिंदी' के लिए स्वप्न को साकार कर दिया है। आज हिंदी संचार की भाषा है संपर्क की भाषा है, बाजार और इलेक्ट्रॉनिक वर्ल्ड की भाषा है। 'हिंदी' को राष्ट्रभाषा का 'हार' जनता ने पहनाया है। हिंदी जन की भाषा थी और है। हिंदी आज भी अनेकता में एकता को पिरोनेवाली कड़ी है। हिंदी स्वाधीनता आंदोलन के ौर में उत्सर्ग, बलिदान और त्याग की भाषा थी। स्वाधीन भारत में 'हिंदी' भारत की सामासिक-संस्कृति की भाषा है। देशज, विदेशज भाषाओं को पचाकर हिंदी विश्व हृदय की भाषा है आज। 'हिंदी' भारत के संदर्भ में 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' का प्रतीक है और आनेवाले समय में 'ज्ञानदीप्त राष्ट्रवाद' का भी पर्याय बनेगी। अंततः इतना ही कि 'राष्ट्रध्वज', 'राष्ट्रगान' और 'राष्ट्रभाषा' जनसंवेदना से जुड़ा होता है। भारतवर्ष का राष्ट्रगान बंगला भाषा में है, लेकिन उसे 'राष्ट्रगान' जन-संवेदना ने बनाया है। भारत का राष्ट्रध्वज अपने में कई प्रतीक समेटे है, परंतु वह जन-संवेदना का गौरव-भाल है। ठीक ऐसे ही संविधान और राजनीतिक लड़ाई चाहे जैसे भी चले 'हिंदी' को राष्ट्रभाषा का सम्मान 'जन-हृदय' ने दिया है। पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आप कहीं भी चले जाएँ यहां तक कि विदेशों में भी 'हिंदी' को 'जन-स्वर' राष्ट्रभाषा ही पुकारता है। जन-संवेदना जिस भाषा में मुखरित होती है, वह 'हिंदी' है इसलिए कवि इकबाल लिख गए हैं-

''हिंदी हैं हम, वतन है,
हिंदोस्तान हमारा''।

अब आप कागज-कलम पर या पार्टियों के बैनर तले या फिर संसद में राष्ट्रभाषा और 'हिन्दी' को लेकर चाहे जितना चिल्लम-पों करें क्या फर्क पड़ता है। जनमानस में हिन्दी राष्ट्रभाषा है तो है और रहेगी। ❑

संदर्भ : 1. अथर्ववेद -/ (12/1/12), (12/1/58), (12/1/54) 2. ऋग्वेद - 36/16)

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी भाषा

डॉ. नवनाथ गाड़ेकर

सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग
भारत महाविद्यालय
जेऊर (म.रेल)
तहसील-करमाला, जिला-सोलापुर
(महाराष्ट्र) 413202
मो. नं. 9960949298
ई-मेल : nawnathgadekar@gmail.com

शोध सारांश :

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में भाग लेनेवाले क्रांतिकारी एवं नेता देश के अलग-अलग प्रांतों के थे। इन सभी को एक जगह मिलकर आंदोलन की रणनीति तैयार करने के लिए बहुत कठिनाइयाँ होती थीं। इसका कारण यह था कि सभी अलग-अलग प्रांतों के होने के कारण और उनकी मातृभाषा भी अलग होने कारण संपर्क में कठिनाइयाँ आती थीं। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को सफल बनाने में हिंदी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। हिंदी भाषा को सभी भारतीय जनमानस जानता था। इसी कारण जब सभी क्रांतिकारी एक जगह मिलते थे, उस समय वे हिंदी भाषा में विचार विनिमय करते थे। हिंदी भाषा की शक्ति एवं क्षमता को उस समय के नेताओं ने समझ लिया। जिनको हिंदी नहीं आती थी, वे हिंदी भाषा सीखने लगे। जो काम पहले अँग्रेजी में किए जाते थे वह अब हिंदी भाषा में किए जाने लगे। सभी भारतीय जनता उस वक्त के शासन के खिलाफ लड़ने के लिए हिंदी भाषा को सीखना पसंद कर रही थी। उस समय के नेता महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक, राजाराम मोहन राय, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, मदन मोहन मालवीय, सेठ गोविंददास, राजेंद्र प्रसाद आदि हिंदी में भाषण देते थे। सामान्य जन उनके विचार समझने लगे। परिणाम यह हुआ कि सभी भारतीय जनता के मन में अँग्रेजों के खिलाफ लड़ने की भावना प्रबल हुई। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को सही दिशा में लाने के लिए हिंदी भाषा ने बहुत बड़ा योगदान दिया है। स्वाधीनता आंदोलन में बड़ी मात्रा में इसका प्रयोग होने के कारण इसको राजभाषा के पद पर स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान स्वाधीनता आंदोलन में सहभागी नेताओं ने दिया।

बीज शब्द :

स्वाधीनता, नेता, हिंदी, जनता, योगदान, क्रांतिकारी, भारत, नेतृत्व, राजभाषा, संपर्क , राष्ट्रभक्ति, अँग्रेज, शासन और सरकार आदि।

मूल आलेख :

हिंदी भारत की राजभाषा तथा संपर्क भाषा है। भारत देश की 80 प्रतिशत जनता हिंदी भाषा को जानती है। वे सभी हिंदी भाषा के माध्यम से एक-दूसरे के साथ संपर्क स्थापित करते हैं। यह भारत की प्रमुख तथा जनता के परस्पर विचार विनिमय की भाषा है। हिंदी भाषा को वर्तमान समय में विदेशों में भी बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाया जा रहा है। इससे स्पष्ट है कि हिंदी का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। हिंदी भाषा ने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिंदी भाषा में सभी भारतीय भाषाओं के शब्द बड़ी संख्या में दिखाई देते हैं। इसी कारण प्रत्येक भारतीय व्यक्ति को हिंदी अपनी भाषा लगती है। इसी अपनेपन के कारण भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में राजनेताओं ने संपर्क भाषा के रूप में हिंदी भाषा का प्रयोग किया। स्वाधीनता आंदोलन में विभिन्न जाति, धर्म, पंथ के लोग शामिल थे। वे अपनी-अपनी दृष्टि से भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में योगदान दे रहे थे। उनकी एक ही इच्छा थी कि भारत देश अँग्रेजों की गुलामी से मुक्त होना चाहिए। भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के लिए अँग्रेजों के विरूद्ध जो आंदोलन हुए, वे दो प्रकार थे-एक अहिंसक आंदोलन और दूसरा हिंसक या सशस्त्र क्रांतिकारी आंदोलन। भारत की स्वाधीनता के लिए 1857 से लेकर 1947 तक जितने भी आंदोलन हुए, उनमें स्वाधीनता या स्वतंत्रता प्राप्ति ही मुख्य उद्देश्य था। वस्तुतः यह समय भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास का स्वर्ण युग है। अपने देश के प्रति जितनी भक्ति और मातृभावना उस समय थी, उतनी कभी नहीं रही। मातृभूमि की सेवा और उसके लिए मर-मिटने की भावना उस समय हर भारतीय में में थी।

'भारतीय स्वाधीनता आंदोलन' भारत के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण आंदोलनों में से एक है। अँग्रेजों ने रेशम, चाय और कपास आदि वस्तुओं का व्यापार करने के बहाने भारत में प्रवेश कर लिया। उन्होंने व्यापार के साथ-साथ देश पर शासन करना भी शुरू किया। भारतीय जनता को अपना गुलाम बनाना शुरू किया। परिणामस्वरूप अँग्रेजी शासन के खिलाफ भारत को स्वाधीनता पाने के लिए कठिन दौर से गुजरना पड़ा। संसार के प्रत्येक देश में किसी एक भाषा का व्यवहार संपर्क भाषा के रूप में होता है। यही भाषा उस देश की राजभाषा या राष्ट्रभाषा कहलाती है। कुछ राष्ट्रों ने अपने देश की मातृभाषा को इसी भावना से पुनः स्थापित किया है। यह उस देश की जनता का अपने देश के प्रति राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रभाषा प्रेम का अद्वितीय उदाहरण है। डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया इस संदर्भ में कहते हैं कि, "भारत में मध्यकाल से ही सारे देश में संतों के कारण हिंदी का प्रचार-प्रसार था। मध्यदेश की भाषा परंपरा में हिंदी को अपूर्व स्थान प्राप्त था, जिसका जिक्र विस्तार से अन्यत्र किया गया है। अन्य देशों की तुलना में हिंदी की स्थिति पर्याप्त भिन्न रही। हिंदी निरंतर किसी-न-किसी रूप में सारे देश में समझी जाती रही है।"[1] बीसवीं शताब्दी के पूवार्द्ध में भारत ने महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारतीय स्वाधीनता आंदोलन शुरू किया। इस स्वाधीनता आंदोलन में देश के हर प्रांत के व्यक्तियों की सहभागिता थी। ये सभी भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में आपसी पारस्परिक व्यवहार के लिए हिंदी भाषा का प्रयोग किया करते थे। स्वयं महात्मा गाँधी ने हिंदी अध्ययन-अध्यापन को जन आंदोलन का रूप दिया। उन्होंने हिंदी भाषा के प्रचार एवं प्रसार के लिए एक फौज तैयार की, जो थैले में किताबें और हाथ में लालटेन लेकर बस्ती-बस्ती में जाकर लोगों को हिंदी सिखाने का काम करती थी। उन्होंने दक्षिण में हिंदी के प्रचार एवं प्रसार के लिए अपने पुत्र देवदास गाँधी को मद्रास भेज दिया था। उन्होंने वहाँ जाकर 'हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रचार

कार्यालय' खोला था, जिसका नाम आगे चलकर 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' हो गया। इतना ही नहीं, महात्मा गाँधी ने वर्धा में भी 'हिंदी प्रचार समिति' की स्थापना की जो वर्तमान समय में भी कार्यरत है। मदन मोहन मालवीय, पुरुषोत्तमदास टंडन, डॉ. राजेंद्र प्रसाद और काका कालेकर जैसे निष्ठावान कार्यकर्ता महात्मा गाँधी की प्रेरणा की देन थे। इन्होंने हिंदी को न केवल जन-जन की भाषा बनाया, अपितु उसकी साहित्यिक समृद्धि में भी उल्लेखनीय योगदान दिया। हिंदी भाषा के संदर्भ में तेजपाल चैधरी कहते हैं, ''भारत एक बहुभाषी देश हे। यहाँ अनेक धर्मों और संस्कृतियों के लोग रहते हैं, जिनकी अपनी-अपनी वेशभूषा है, अपने-अपने लोकव्यवहार हैं, अपनी-अपनी भाषाएँ है। फिर भी एक भाषा उन्हें एक सूत्र में पिरोती है। वह भाषा हिंदी है, हमारी राष्ट्रभाषा। आज हम देखते हैं कि रेलगाड़ी में सफर करने वाले यात्री हो या बंदर, भालू नचाकर पेट पालने वाले मदारी, राष्ट्रीय खेलकूद प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाले खिलाड़ी हों या राजनैतिक मंच से भाषण देने वाले नेता, सब अंतरप्रांतीय व्यवहार में हिंदी का ही प्रयोग करते हैं।''[2] हिंदी की महत्ता तब बढ़ गई, जब भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के समय संपूर्ण देश को आपस में जोड़ने वाली सबसे सशक्त संपर्क भाषा के रूप में उसका प्रयोग होने लगा। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में सहभागी सभी नेताओं का मानना था कि सभी देशवासियों को एक सूत्र में बाँधकर रखने के लिए हिंदी भाषा ही सहायक बन सकती है। हिंदी भाषा के सामर्थ्य को महात्मा गाँधी ने समझ लिया था। इसके साथ ही नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने भी समझ लिया था। हिंदी भाषा के सामर्थ्य को लेकर आचार्य विनोबा भावे कहते हैं कि यदि मैं हिंदी को सीख नहीं पाता या हिंदी का सहारा न लेता तो कश्मीर से कन्याकुमारी और असम से केरल तक के गाँव-गाँव में जाकर मैं भूदान, ग्रामदान का संदेश जनता तक पहुँचा नहीं पाता। हिंदी भाषा के सामर्थ्य को लेकर डॉ. अंबादास देशमुख कहते हैं, ''1857 में भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम लड़ा गया। इसमें सर्वत्र हिंदी ही माध्यम थी। अँग्रेजी या फारसी नहीं। सभी क्रांति के समाचार, संवाद और संदेश हिंदी में प्रसारित किए जाते थे। उस प्रथम स्वाधीनता संग्राम का मुख पत्र 'पयाम-ए-आजादी' था, जो दिल्ली से हिंदी और उर्दू दोनों लिपियों में निकलता था। प्रसिद्ध राष्ट्रभाषा और स्वतंत्रता सेनानी अजीम उल्ला खान इसके संपादक थे।''[3]

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में विख्यात पुरुष पंडित मदन मोहन मालवीय का नाम हिंदी भाषा के प्रचारकों में बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। वे न केवल एक महान हिंदी के समर्थक थे, बल्कि हिंदी आंदोलन के अग्रणी नेता भी थे। हिंदी भाषा के प्रचार एवं प्रसार और हिंदी के स्वरूप निर्धारण दोनों ही दृष्टियों से उन्होंने हिंदी की अभूतपूर्व सेवा की है। उनके ही प्रेरणा, प्रोत्साहन, समर्थन के कारण हिंदी प्रशासन एवं राजकाज की भाषा बनी। इस संदर्भ में कृष्ण कुमार गोस्वामी कहते हैं, "हिंदी को यह सम्मान इसीलिए नहीं दिया गया कि इसका साहित्य अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य से श्रेष्ठ है या यह भाषा सबसे प्राचीन है। वास्तव में अन्य कई भारतीय भाषाओं का साहित्य हिंदी से अधिक श्रेष्ठ है और कई भाषाएँ इससे पुरानी भी हैं। हिंदी को सम्मान इसलिए दिया गया क्योंकि भारत में इस भाषा को बोलने वाले और समझने वाले अन्य भाषाओं से अधिक हैं। मातृभाषा के रूप में इसका व्यवहार क्षेत्र अन्य भाषाओं की अपेक्षा सर्वाधिक है और दूसरी भाषा के रूप में इसे बोलने वालों की संख्या भी सबसे ज्यादा है।

धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक स्तर पर तो हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के अनेक उल्लेखनीय प्रयास बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध

तक हो गए। राजनीतिक स्तर पर इस दिशा में सबसे अधिक योगदान मिला भारत के स्वाधीनता आंदोलन से जिसके सूत्रधार महात्मा गाँधी थे। उनकी मातृभाषा गुजराती थी और उच्च शिक्षा उन्होंने अँग्रेजी के माध्यम से प्राप्त की थी। भारत के राजनीतिक मंच पर उनका उदय 1916 के आसपास हुआ। इससे पहले वे हिंदी अच्छी तरह से नहीं जानते थे, केवल कुछ-कुछ समझ सकते थे। तब उन्होंने स्वअध्ययन के बल पर हिंदी का समृध्द ज्ञान प्राप्त किया। 1916-1917 ई. कोलकाता के कांग्रेस अधिवेशन में पहली बार वे एक राष्ट्रीय नेता के रूप में उभरे और तभी से उन्होंने एक राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को प्रतिष्ठित करना अपने समूचे स्वदेशी आंदोलन तथा राष्ट्रीय कार्यक्रम का अभिन्न अंग बना लिया। उन्होंने 1916 ई. में ही अधिवेशन का सारा कार्य हिंदी में चलाने का शुभारंभ किया। इसके साथ-साथ उन्होंने इस अधिवेशन के अध्यक्ष लोकमान्य तिलक से भी हिंदी में ही भाषण देने का आग्रह किया। महात्मा गाँधी की इस भावना को लोकमान्य तिलक ने सच्चे ह्रदय से स्वीकार किया। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान अँग्रेजी सरकार के द्वारा गठित युद्ध परिषद में जब महात्मा गाँधी को आमंत्रित किया गया, तब उन्होंने अँग्रेजी सरकार के सामने पहली शर्त रखी कि मुझे हिंदी में बोलने की इजाजत दी जाए। तत्कालीन अंग्रेज वायसराय को उनकी यह शर्त स्वीकार करनी पड़ी। जब भारत के कई प्रदेशों में कांग्रेस की निर्वाचित सरकारों का गठन हुआ तो मद्रास के तत्कालीन मुख्यमंत्री जो स्वाधीनता के बाद 1947 में भारत देश के प्रथम गवर्नर जनरल बने श्री राजगोपालाचारी ने मद्रास प्रांत के सभी विद्यालयों में हिंदी शिक्षण अनिवार्य कर दिया। उस समय महात्मा गाँधी ने अन्य राज्यों को भी इस नीति का अनुसरण करने की प्रेरणा देते हुए लिखा, ''अगर हमें अखिल भारतीय राष्ट्रीयता प्राप्त करनी है तो प्रांतीय आवरणों को भेदना ही पड़ेगा। जो लोग यह मानते हैं कि भारत एक देश है उन्हें राज गोपालाचारी के विचारों का समर्थन करना ही चाहिए।'' इस प्रकार अन्य ऐसे कई उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हिंदी का राष्ट्रभाषा के रूप में बड़ी तेजी से विकास हुआ। स्वाधीनता आंदोलन का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समर्थन करने वाले असंख्य नेताओं, क्रांतिकारियों, बलिदानी, वीरों, लेखकों, कवियों और पत्रकारों ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में भरपूर मात्रा में योगदान दिया।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में सन 1857 में भारतीय क्रांतिकारियों की हार हुई। यह हार उन्हें खलने लगी। सन 1885 में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के कारण भारतीयों के मन में स्वाधीनता आंदोलन की चिंगारी पूरी तरह बुझी नहीं थी। अपनी इस हार पर भारतीय क्रांतिकारियों, नेताओं और वीरों ने अपने अभियान की असफलता की आंतरिक गंभीर पड़ताल की, तब उन्हें यह एक महत्वपूर्ण सूत्र मिल गया कि उपयुक्त सहज, सरल सामान्य जन-मन के समझ में आने वाली एक सामान्य भाषा न होने के कारण स्वाधीनता आंदोलन के इस अभियान को यथासंभव जन सामान्य तक पहुँचाया नहीं जा सका। परिणामस्वरूप भारतीय जनता को स्वाधीनता के आंदोलन में संगठित करने में असफल हुए। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को अँग्रेजों द्वारा अपनाई गई दमनात्मक नीति के कारण सामान्य जन-जन के मन में अँग्रेजी सरकार के विरुद्ध घृणा पनपी। भारतीयों में मन में इस घटना के कारण राष्ट्रीय चेतना का निर्माण हुआ। सन 1885 में कांग्रेस की स्थापना के कारण भारतीय स्वाधीनता के राष्ट्रीय आंदोलन का सूत्रपात हुआ। भारतीय जनता के मन में स्वराष्ट्र, स्वतंत्रता, स्वदेशी, स्वभाषा, राष्ट्रीय शिक्षण तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार आदि शब्दों के प्रति जागरूकता पैदा हुई। भारतीय जनता के मन में पनपी राष्ट्रीय भावना के संदर्भ में डॉ. विनोद गोदरे कहते है, ''संपूर्ण देश अब क्रमश: एक राजनीतिक इकाई में परिवर्तित हो चुका था। अत: सभी के बीच संपर्क भाषा की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं, समाज-सुधारकों, शिक्षा-शास्त्रियों तथा साहित्यकारों ने हिंदी को इस लक्ष्य के लिए सर्वथा योग्य पाया। सर्वश्री बंकिमचंद्र चटर्जी, कवींद्र रवींद्र, महात्म गाँधी आदि ने सर्वानुमति से हिंदी को स्वीकार किया।''[4] इस प्रकार भारतीय जनता के मन में स्वशासन की भावना जागृत हुई। इस स्वशासन

की भावना की पूर्ति के लिए संपूर्ण देश अँग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए तैयार हुआ। सभी भारतीय जनता को एकसूत्र में बाँधने के लिए राष्ट्रीय विचारों के प्रचार एवं प्रसार के लिए हिंदी भाषा को सर्वानुमति से स्वीकार किया गया।

संपूर्ण भारतवर्ष में राष्ट्रभाषा का संबंध भारतीय स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ा हुआ रहा है। राष्ट्रीय आंदोलनों में या यों कहें कि इस आंदोलन से पूर्व ही बहुभाषी भारतवर्ष में संपर्क सूत्र के रूप में हिंदी को राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त हो चुका था। रेल, तीर्थस्थलों, वाणिज्य-व्यापार, सिनेमा, फौज आदि के कारण हिंदी भाषा को भाारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में व्यापक रूप से प्रचार एवं प्रसार मिला। भाषिक एकता, समानता, तथा महत्ता बनाए रखने के लिए ही भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में भारत देश की बाईस भाषाओं को राष्ट्रीय भाषाओं का दर्जा दिया गया है। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के आरंभ से पूर्व ही भारतीय जनता ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के गौरवपूर्ण स्थान पर बिठा दिया। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की बागडोर जब महात्मा गाँधी के हाथों में आई तो उन्होंने इसका प्रचार कार्य सन 1918 में प्रारंभ किया। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के अंतर्गत एक अभिन्न अंग के रूप में उन्होंने राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार एवं प्रसार का कार्य अपने हाथ में ले लिया। इससे ठीक पहले सन 1917 में भड़ौच में हुई दूसरी गुजरात शिक्षा परिषद में सभापति पद से भाषण देते हुए उन्होंने हिंदी और अँग्रेजी की तुलना करते हुए हर प्रकार से हिंदी को राष्ट्रभाषा पद के योग्य बताया। राष्ट्रभाषा के क्या-क्या लक्षण होने चाहिए, इस पर गंभीरता से विचार करते हुए उन्होंने कहा है, ''1. उसे सरकारी कर्मचारी आसानी से सीख सकें। 2. वह सारे भारत में धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक संपर्क के माध्यम के रूप में प्रयोग करने के लिए सक्षम हो। 3. वह अधिकतर भारतीयों द्वारा बोली जाती हो। 4. सारे देश को उसे सीखने में आसानी हो। 5. ऐसी भाषा को चुनते समय अस्थायी या क्षणिक परिस्थितियों को महत्व न दिया जाए।''[5] स्पष्ट है कि अँग्रेजी भाषा इनमें से किसी भी तरह सक्षम नहीं है। सभी भारतीय भाषाओं में केवल हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जिसमें उपयुक्त सभी गुण हैं। इस प्रकार भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के पहले से लेकर आज तक सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक आदि स्तर पर भारत में हिंदी ही राष्ट्रभाषा के रूप में अधिकतर भारतीय जनमानस के मध्य विराजमान है।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में विख्यात पुरुष पंडित मदन मोहन मालवीय का नाम हिंदी भाषा के प्रचारकों में बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। वे न केवल हिंदी के एक महान समर्थक थे, बल्कि हिंदी आंदोलन के अग्रणी नेता भी थे। हिंदी भाषा के प्रचार एवं प्रसार और हिंदी के स्वरूप निर्धारण दोनों ही दृष्टियों से उन्होंने हिंदी की अभूतपूर्व सेवा की है। उनके ही प्रेरणा, प्रोत्साहन, समर्थन के कारण हिंदी प्रशासन एवं राजकाज की भाषा बनी। इस संदर्भ में कृष्ण कुमार गोस्वामी कहते हैं, ''हिंदी को यह सम्मान इसीलिए नहीं दिया गया कि इसका साहित्य अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य से श्रेष्ठ है या यह भाषा सबसे प्राचीन है। वास्तव में अन्य कई भारतीय भाषाओं का साहित्य हिंदी से अधिक श्रेष्ठ है और कई भाषाएँ इससे पुरानी भी हैं। हिंदी को सम्मान इसलिए दिया गया, क्योंकि भारत में इस भाषा को बोलने वाले और समझने वाले अन्य भाषाओं से अधिक हैं। मातृभाषा के रूप में इसका व्यवहार क्षेत्र अन्य भाषाओं की अपेक्षा सर्वाधिक है और दूसरी भाषा के रूप में इसे बोलने वालों की संख्या भी सबसे ज्यादा है।''[6] डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने एक साधारण कांग्रेसी कार्यकर्ता से लेकर स्वंतत्र भारत देश के प्रथम राष्ट्रपति पद से हिंदी की सेवा की है। उनका संबंध हिंदी भाषा परिषद कलकता, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास से रहा है। उन्होंने हिंदी तथा हिंदुस्तानी में कोई फर्क न करते हुए हिंदुस्तानी का समर्थन किया। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में जितना महत्वपूर्ण योगदान महात्मा गाँधी का है, उतना ही हिंदी भाषा को राजभाषा बनाने के लिए है। उनके साथ लाल लाजपतराय, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, सेठ गोविंददास, राजाराम मोहन राय, ऋषि दयानंद सरस्वती आदि नेताओं ने हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में

महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन सभी नेताओं ने मन, वाणी और कर्म से हिंदी की जो सेवा की है, जिसके कारण हिंदी को एक नई गति, एक नई चेतना तथा एक नया स्पंदन एवं कंपन के साथ-साथ नवजीवन मिल गया।

निष्कर्ष :

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी भाषा के संदर्भ में यह कह सकते हैं कि भारतीय क्रांतिकारियों, वीरों और नेताओं ने स्वाधीनता आंदोलन में आपसी विचार विनिमय के लिए संपर्क भाषा के रूप में हिंदी भाषा का प्रयोग बहुतायत में किया।

इसका कारण यह या था कि देश की जनता अन्य भाषा की तुलना में हिंदी भाषा को समझ सकती थी। इसी कारण महात्मा गाँधी, लोकमान्य तिलक, राजेंद्र प्रसाद, मदन मोहन मालवीय, सेठ गोविंददास आदि नेताओं ने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी भाषा का प्रयोग किया। उन्होंने दो पद्धति का संघर्ष किया- एक भारतीय स्वाधीनता संग्राम और दूसरा हिंदी को राजभाषा के पत पर प्रतिष्ठित करना। इन सभी नेताओ और क्रांतिकारियों ने अपने प्राणों की बाजी लगाकर भारत देश को अँग्रेजों की गुलामी से 15 अगस्त, 1947 को आजाद किया। उस समय से यह दिन सभी भारतीय जनता एक राष्ट्रीय त्योहार के रूप में मनाती है। संपूर्ण भारतवर्ष में 'वर्ष 2022' आजादी का अमृत महोत्सव वर्ष के रूप में बड़े धूमधाम से विविध कार्यक्रमों के साथ मनाया जा रहा है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. हिंदी भाषा, डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया, साहित्य भवन प्रा. लि. इहमाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 1998, पृ. 91
2. प्रयोजनमूलक हिंदी स्वरूप एवं व्याप्ति, तेजपाल चैधरी, विकास प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2015, पृ. 25
3. प्रयोजनमूलक हिंदी अधुनातन आयाम, डॉ. अंबादास देशमुख, शैलजा प्रकाशन, कानपुर, द्वितीय संस्करण, 2016, पृ. 30
4. प्रयोजनमूलक हिंदी, डॉ. विनोंद गोदरे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण, 2009, पृ. 54
5. प्रयोजनमूलक हिंदी के आधुनिक आयाम, डॉ. महेद्रसिंह राणा, हर्षा प्रकाशन आगरा, प्रथम संस्करण, 2003, पृ. 28
6. व्यावहारिक हिंदी रचना, कृष्ण कुमार गोस्वामी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1998 पृ. 11

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी कविताएँ

डॉ. इबरार खान

असिस्टेंट प्रोफेसर व अध्यक्ष
हिंदी विभाग
मिर्जा गालिब कॉलेज
गया-823001, बिहार
ई-मेल- ibkhan88@gmail.com

डॉ. बनवारी लाल मीना

असिस्टेंट प्रोफेसर-शिक्षा
मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी,
गच्चीबौली, हैदराबाद-500032,
तेलंगाना
ई-मेल : blalmeena@gmail.com

भारत बराबर आक्रमणकारियों का शिकार होता रहा है। यहाँ कभी आर्य, शक, हूण, मुगल आए तो कभी अंग्रेज आए। कुछ का उद्देश्य मात्र लूटपाट था तो उन्होंने लूटपाट की। कुछ ने लूटपाट की और यहीं के होकर रह गए। यह एक महत्वपूर्ण बिंदु है कि जितना शोषण व फूट अंग्रेजों के कारण हुए, उतने संभवत: किसी शासन में नहीं दिखाई देते। रुस्तम राय का मत है, 'भारतवर्ष में अंग्रेजों ने अंग्रेजी राज्य की स्थापना ईस्ट इंडिया कंपनी के बहाने की। उस नींव को एक मजबूत आधार उस समय मिला, जब 1757 के प्लासी युद्ध में अंग्रेजों ने सिराजुद्दौला को पराजित किया। 1757-1857 तक ईस्ट इंडिया कंपनी ने व्यापार के बहाने न केवल भारतीय उद्योग-धंधों, वाणिज्य-व्यापार, शिल्प कला और साहित्य एवं संस्कृति को नष्ट कर डाला, बल्कि भारतीय राजाओं को आपस में लड़ा-लड़ाकर उन्हें तबाह कर डाला।'[1]

भारतीय इतिहास में 1857 को एक महत्वपूर्ण वर्ष माना जाता है। 1857 को 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' शब्द से अभिहित किया जाता है। इस विषय में मौलाना अबुल कलाम आजाद का कथन है- 'भारत के लोग मुगलों को विदेशी शासक नहीं, बल्कि अपना राजा या बादशाह मानते थे।'[2] यह दु:खद है कि बहादुर शाह जफर मात्र नाम का बादशाह था, लेकिन भारतीय जनता तथा सेना उसे अपना बादशाह मानती थी। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि यह कोई सुनियोजित विद्रोह नहीं था। यह आम जनता का आक्रोश था। इस विषय में मौलाना अबुल कलाम आजाद का कथन है- 'उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर हम यह मानने के लिए विवश हैं कि 1857 किसी सचेत योजना के तहत किया गया विद्रोह नहीं था और न उसके पीछे कोई मास्टरमाइंड लोग थे। हुआ यह है कि एक शताब्दी लंबे शासन से भारतीयों का कंपनी राज से पूरी तरह मोहभंग हो गया। शुरू में तो कंपनी नवाबों और बादशाहों के नाम पर चलती रही सो भारतीय जनता लंबे समय तक यही नहीं समझ सकी कि वह विदेशियों की गुलाम है या अपने ही देश में वे दास बन चुके हैं, लेकिन जब वे यह समझे और यह समझ व्यापक हो गई तो विद्रोह की परिस्थितियाँ एकदम तैयार हो गईं। इसलिए जब विद्रोह हुआ तो वह कुछ व्यक्तियों या गुटों के षड्यंत्रों की वजह से नहीं बल्कि व्यापकजनों के असंतोष के परिणामस्वरूप हुआ।'[3]

इसमें कोई दो राय नहीं है कि 1857 के विद्रोह को दबाने के लिए अंग्रेजों द्वारा बड़े ही क्रूर तरीके अपनाए गए थे। पेड़ों पर, खंभों लट्ठों पर लाशें-ही-लाशें दिखती थीं। मौलाना आजाद का कथन है- 'इलाहाबाद और उसके आस-पास ऐसा कोई पेड़ नहीं बचा था, जिस पर किसी-न-किसी अभागे भारतीय की लाश न सूली हो।'[4] इतनी क्रूरता को देखकर कौन-सा ऐसा भारतीय होगा, जो द्रवित नहीं होगा। यही 1857 की क्रांति अंग्रेजों के लिए काल साबित हुई। उसका चौतरफा विरोध शुरू हुआ।

आजादी के संदर्भ में क्रांतिकारियों के महत्व को भी कम नहीं आँकना चाहिए। शहीद भगत सिंह, रामप्रसाद बिस्मिल तथा अशफाक उल्ला खाँ ने भी कुछ कविताएँ लिखी हैं, जो उनकी सच्ची देशभक्ति से अनुप्राणित हैं। राजाराम नागर ने शहीद भगत सिंह को स्मरण करते हुए लिखा है-

'बहुत नाम रोशन किया है जहां में।
कि चमका है बनकर सितारा भगत सिंह।'[5]
शहीद रामप्रसाद बिस्मिल ने कहा-
'भारत न रह सकेगा हरगिज गुलामखाना।
आजाद होगा, होगा आता है वह जमाना।।
खूं खौलने लगा है हिंदुस्तानियों का।
कर देंगे जालिमों का हम बन्द जुल्म ढाना।।'[6]
शहीद अशफाक उल्ला खाँ ने कहा-
'कस ली है कमर अब तो, कुछ करके दिखाएंगे,
आज़ाद ही हो लेंगे, या सर ही कटा देंगे।
हटने के नहीं पीछे, डर कभी जुल्मों से,
तुम हाथ उठाओगे, हम पैर बढ़ा देंगे।
बेशस्त्र नहीं हैं हम, बल है हमें चरखे का,
चरखे से जमीं को हम, ता चर्ख गुंजा देंगे।
परवा नहीं कुछ दम की, गम की नहीं, मातम की
है जान हथेली पर, एक दम में गंवा देंगे।
उफ़ तक भी जुबां से हम हरगिज़ न निकालेंगे
तलवार उठाओ तुम, हम सर को झुका देंगे।
सीखा है नया हमने लड़ने का यह तरीका,
चलवाओ गन मशीनें, हम सीना अड़ा देंगे।
दिलवाओ हमें फाँसी, ऐलान से कहते हैं,
खूं से ही हम शहीदों के, फौज बना देंगे।
मुसाफिर जो अंडमान के तूने बनाए ज़ालिम
आज़ाद ही होने पर, हम उनको बुला लेंगे।'[7]

जहाँ तक हिंदी साहित्य (कविता) का प्रश्न है तो 1857 हिंदी साहित्य के लिए भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। हिंदी में इसी काल को भारतेंदु युग कहा जाता है। इसी को जागरण काल आदि भी कहा जाता है। 1857 की स्थिति पर गौर करें तो भारत अंग्रेजों का गुलाम था। उस समय भारतीय जनता ने अपना आक्रोश प्रकट तो किया परंतु उसने सफलता नहीं पाई। भारतेंदु युग को सामान्यत: 1857-1900 तक स्वीकार किया जाता है। कुछ आलोचक 1843 से भी इसे स्वीकार करते हैं। भारतेंदु युग में भारतेंदु मंडल बनाया गया था। जो एक सामूहिक व समान विचारधारा का प्रतीक है। उस समय भारतेंदु के साथ राधाकृष्णदास, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' आदि मिलकर लेखन करते थे। तत्कालीन दु:खद परिस्थितियों में कवि लोग अपने पुरातन वैभव को याद कर ऊर्जावान हो रहे थे-

'कहाँ परीक्षित कहँ जनमेजम कहँ विक्रम कहँ भोज।
नन्दवंश कहँ चन्द्रगुप्त कहँ हाय कहाँ वह ओज।
राधाकृष्णदास (विजयिनी विजय विलाप)'[8]

अंग्रेजों के शासन में पूरा शासन भारत विरोधी था। लूट-खसोट मची हुई थी। जो दुर्भाग्यवश आज भी जारी है। बस पहले गोरे थे आज हमारे अपने लोग हैं, जो नागरिकता तो भारत की रखते हैं, परंतु उनका दिल विदेशों में बसता है। उस समय की दु:खद स्थिति पर भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'भारत-दुर्दशा' में कहा-

'अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।'[9]

- भारतेंदु हरिश्चन्द्र

भारतेंदु की विवशता तथा भारत की दु:खद स्थिति का पता इन पंक्तियों से चल जाता है। जब वे कहते हैं-

'रोअहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।।'[10]

तत्कालीन कविताओं में सामाजिक यथार्थ का चित्रण हुआ है। वही स्थिति आज भी है, परंतु आज चापलूसी बढ़ गई है। खुलकर लोग नहीं बोल रहे हैं। जहाँ तक चापलूसी का प्रश्न है तो यह आरोप भारतेंदुकाल के कवियों पर भी लगा था। 'उनकी दृढ़ मान्यता थी कि विक्टोरिया देश की मल्लिका हैं और उनके तथा उनके परिवार के प्रति (राजपरिवार के प्रति) वफादारी और निष्ठा का भाव रखना हर देशवासी का कर्तव्य है।' [11]

यह सत्य है कि जब भारत की साम्राज्ञी रानी विक्टोरिया बनीं तो स्थिति में कुछ सुधार हुआ, परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि दास तो दास होता है। वह कहलाएगा तो दास ही, वह दास ही रहेगा। यथार्थपरक चित्रण करने वाली कविताएँ वर्तमान में भी प्रासंगिक हैं। इस विषय में रुस्तम राय कहते हैं, 'सामाजिक यथार्थ का चित्रण करने वाली कविताएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं, जितनी पराधीन भारत में थीं। ये कविताएँ बिना किसी लाग-लपेट के भारतीय जनमानस की यथार्थपरक अभिव्यक्ति करती हैं तथा कहीं भी इनकी कलात्मकता पाठकीय संप्रेषणीयता के बीच में रोड़े नहीं अटकातीं।' [12]

हमारे देश की एक बहुत बड़ी समस्या 'हिंदुओं तथा मुसलमानों' को लेकर रही है। हिंदू, मुसलमानों को बाहरी समझता है। इधर मुसलमान अपने आपको बड़ा पाक-साफ रहने वाला तथा हिंदुओं को गंदा रहने वाला, पत्थर पूजने वाला समझता रहा है। हिंदुओं तथा मुसलमानों में एकता स्थापित करने का प्रयास सदैव से होता रहा है। इसमें सफलता भी मिली है, परंतु यह सफलता पूरी नहीं है। हिंदुओं तथा मुसलमानों के मध्य एक-दूसरे के प्रति अविश्वास बना हुआ है। इस अविश्वास को बढ़ाने में पंडितों, मुल्लाओं तथा राजनेताओं का बहुत बड़ा योगदान है। वे कृतियाँ, जिनमें हिंदू-मुस्लिम एकता की बात होती थी। सरकार उसे भी जब्त कर लेती थी, क्योंकि देश को स्वतंत्र कराने में हिंदू-मुस्लिम एकता आवश्यक थी। अंग्रेज लोग कभी नहीं चाहते थे कि ऐसा हो। उनकी नीति ही 'फूट डालो और राज करो' की थी। रुस्तम राय ने बिल्कुल सटीक टिप्पणी की है- 'जिन कविताओं में हिंदू-मुस्लिम एकता, किसानों की दयनीय दशा, मजदूरों के शोषण, स्त्रियों की दुर्दशा, बाल-विवाह, विधवा विवाह, ऊँच-नीच, छुआछूत एवं अस्पृश्यता, दहेज प्रथा, पुरोहितवाद जैसी सामाजिक कुरीतियों का चित्रण किया है, उन कविताओं को भी प्रतिबंधित कर लिया गया है। [13] ऐसा सिर्फ इसलिए होता था, ताकि सब एकत्रित होकर कहीं अंग्रेजों की चूलें न हिला दें।

हिंदू तथा मुसलमान के नाम पर लड़ने वालों को यह विचार करना चाहिए कि भारत में धर्मांतरण हुआ है। वर्तमान में जो लोग मुसलमान हैं, उनमें से अधिकांश के पूर्वज हिंदू ही थे। यही बात दलितों के संदर्भ में भी लागू होती है। वे पहले हिंदू थे। बाद में वे मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन बने। स्वराज्य के प्रति इतनी चाहत थी कि 'चकबस्त' बहिश्त .(स्वर्ग) लेने से भी इनकार करते हैं-

'सुनेंगे कल का न वादा, हम आज के बदले।
न लेंगे हरगिज बहिश्त भी, हम स्वराज्य के बदले।।'[14]

इतिहास गवाह है कि कुछ लोगों के लिए देश नहीं उनका अपना वजूद महत्व रखता है। अपने फायदे के लिए वे अंग्रेजों का पिट्ठू व पिछलग्गू बनने से भी गुरेज नहीं करते, लेकिन यह याद रहे मरने के बाद कोई साथ नहीं देता है।

बअद मुर्दन कौन आता है ख़बर को ऐ रसा।
ख़त्म बस कुंज-ए-लहद तक दोस्ताना हो गया।'[15]

भारतेंदु युग की कविताओं में देशभक्ति के साथ राजभक्ति के भी दर्शन होते हैं। हो सकता है राजभक्ति एक रणनीति के तहत की गई हो।

हिंदी साहित्य में 1900 से 1918 तक के काल को सामान्यत: 'द्विवेदी युग' के नाम से अभिहित किया जाता है। भारतेंदु मंडल की भाँति द्विवेदी युग में 'द्विवेदी मंडल' था, जो महावीर प्रसाद द्विवेदी के दिशा-निर्देशन में काम करता था। उनकी विचारधारा का समर्थन करता था। द्विवेदीयुगीन रचनाएँ सच्ची

देशभक्ति से परिपूर्ण दिखाई पड़ती हैं। भारतेंदु युग की भाँति वहाँ झोल नहीं है। कवि शंकर की 'बलिदान गान' शीर्षक कविता में बलिदान हेतु तैयार होने की प्रेरणा है–

'देशभक्त वीरों मरने से नेक नहीं डरना होगा।
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।।'[16]

हिंदी साहित्य में 'भारत–भारती' का विशिष्ट महत्व है। यह रचना मौलाना अल्ताफ हुसैन 'हाली' की रचना 'मुसद्दसे हाली' से प्रभावित होकर लिखी गई थी। इस संदर्भ में कृष्णदत्त पालीवाल का कथन है– 'भरत–भारती में भारतीय नवजागरण का काव्य–सूर्य उदित हो गया है।

ध्यान देने की बात यह भी है कि इस रचना के पीछे 'मुसद्दसे हाली' की प्रेरणा भी सक्रिय थी। कवि हाली के इस नवजागरण–काव्य ने युग को हिला दिया। इस प्रेरणा के साथ ही गुप्त जी ने कैफी के 'भारत दर्पण' से भी राष्ट्रीयता का नया विश्वास पाया। इन दोनों कौमी नज्मों ने गुप्त जी के देश–प्रेमी मन को नयी दृष्टि दी और वे 'भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती' का आह्वान करने लगे। 'भारत–भारती' इतनी प्रसिद्ध हुई कि इसे 'आधुनिक भारत की गीता' कहा जाता रहा है।'[17] 'भारत–भारती' राष्ट्रीयता से ओत–प्रोत तथा राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करने वाली रचना है। मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं–

'मानस भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती
भगवान्! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती
हो भद्रंभावोद्भाविनी वह भारती हे भगवते!
सीतापते! सीतापते!! गीतामते! गीतामते! ।।1।।'[18]

इसी प्रकार की राष्ट्रीयता की भावना अन्य कवियों ने भी अपनी कविताओं में की है।

सामान्यतः 1918–1936 तक का समय हिंदी साहित्य में 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया जाता है। छायावाद को लेकर आलोचकों का दृष्टिकोण बहुत अच्छा नहीं रहा है, परंतु यह भी सत्य है कि राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत रचनाएँ भी हैं। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा है – 'छायावाद शक्ति काव्य है।'[19] चतुर्वेदी जी ने सांस्कृतिक रूप से छायावाद को शक्ति काव्य है।

जयशंकर प्रसाद ने भारत देश की महानता का वर्णन विदेशी 'कार्नेलिया' से भी 'चंद्रगुप्त' नाटक में एक गीत के माध्यम से करवाया है–

'अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहां पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।'[20]

राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में प्रसाद का यह गीत बहुत ही सराहा जाता है, जो चंद्रगुप्त नाटक में है –

'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से,
प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयंप्रभा समुज्वला –
स्वतंत्रता पुकारती –
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पन्थ है– बढ़े चलो ! बढ़े चलो!
असंख्य कीर्ति–रश्मियां,
विकीर्ण दिव्य दाह–सी।
सपूत मातृभूति के,
रूको न शूर साहसी!
अराति–सैन्य–सिन्धु में सुवाड़वाग्नि–से जलो,
प्रवीर हो, जयी बनो–बढ़े चलो! बढ़े चलो!'[21]

इसी प्रकार निराला माँ वीणावादिनी से वरदान माँगते हुए दिखते हैं–

'वर दे, वीणावादिनी वर दे !
प्रिय स्वतंत्र रव अमृत मन्त्र नव,
भारत में भर दे ! वर दे .....
काट अन्ध उर के बंधन स्तर,
बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर
कलुष भेद तम हर, प्रकाश भर,
जगमग जग कर दे! वर दे .....
नव गति नव लय, ताल छंद नव,
मवल कण्ठ नव जलद मन्द्र रव।
नव नभ के नव विहग वृन्द को,
नव पर, नव स्वर दे, वर दे ....।'[22]

सुभद्राकुमारी चौहान की राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत कई कविताएँ हैं, जैसे – 'वीरों का कैसा हो वसंत', 'झांसी की रानी' आदि, परंतु उनकी 'झांसी की रानी'

शीर्षक कविता अत्यधिक प्रसिद्ध है –

'बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसी वाली रानी थी।' [23]

इसी प्रकार मनोरंजन एम.ए. की कविता वीर कुँवर सिंह की वीरता को प्रदर्शित करती है–

मस्ती की थी छिड़ी रागिनी, आज़ादी का गाना था,
सब कहते हैं कुंवर सिंह भी बड़ा वीर मर्दाना था।' [24]

छायावाद के अंतर्गत ही हालावाद (1930–1933) भी चला, जिसके प्रवर्तक डॉ. हरिवंशराय बच्चन थे। उन्होंने भी भारतीयों के मार्ग की कठिनाई का चित्रण अपनी कविताओं में किया है–

'अग्निपथ! अग्निपथ! अग्निपथ!
वृक्ष हों भले खड़े
हों घने हों बड़े
एक पत्र छांह भी
मांग मत! मांग मत! मांग मत!' [25]

इसी प्रकार विभिन्न साहित्यकार अपनी कविताओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने का कार्य कर रहे थे।

हिंदी साहित्य में 1936–1943 तक के समय को सामान्यत: 'प्रगतिवाद' के नाम से अभिहित किया जाता है। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ, भारत की स्थापना हो चुकी थी। इसने भी प्रगतिवादी विचारधारा को बढ़ाने में अपना योगदान दिया। इस काल के साहित्य में साम्यवाद पर बल दिया गया है तथा पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध किया गया है। सामंतवादी तथा पूंजीवादी व्यवस्था का समर्थक जमींदार वर्ग भी था। ये वर्ग शोषकों तथा शोषितों के माध्य कड़ी के रूप में कार्य करता था। अंग्रेजों द्वारा इसका शोषण होता था और ये अपने शोषण का बदला भारत की गरीब जनता, किसान, मजबूर से लेता था। जमींदार वर्ग की स्थिति बड़ी डाँवाडोल रहती थी। यह 'बेपेंदी के लोटे' की तरह होता है। यह सच है कि इसमें कुछ दयालु लोग भी होते थे, परंतु वे चाहकर भी अपनी दयालुता का प्रदर्शन नहीं कर पाते थे। इस जमींदार वर्ग को अंग्रेजों ने पैदा किया था तथा उसे प्रश्रय भी दिया था। इस संदर्भ में रुस्तम राय का कथन है, 'अंग्रेजों ने भारतीय अर्थव्यवस्था के साथ यहाँ की भूमि–व्यवस्था को भी बर्बाद कर सामंतवादी शक्तियों के गठजोड़ से एक नए जमींदार वर्ग को जन्म दिया।' [26] इन सब स्थितियों के बीच शिवमंगल सिंह 'सुमन' जनता का आह्वान करते हुए कहते हैं–

'आओ वीरोचित कर्म करो
मानव हो तो कुछ शर्म करो
यों कब तक सहते जाओगे,
इस परवशता के जीवन से विद्रोह करो, विद्रोह करो!' [27]

इसी प्रकार रांगेय राघव, नागार्जुन, दिनकर आदि ने भी वीर रस से युक्त राष्ट्रीय रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, जिससे राष्ट्रीय भावना का संचार होता है। दिनकर (विजय सन्देश 1928) के अंतर्गत दिनकर लिखते हैं –

'निहत्थे जनों का समर देख लेना।
निबल आह का भी असर देख लेना।।
न यों हम रहेंगे निरे भीत होकर
समय पर कसेंगे कमर देख लेना॥ निहत्थे॥
डटेंगे, कटेंगे–मरेंगे, बढ़ेंगे
हमें आफतों में बहर देख लेना॥ निहत्थे॥
जभी हिंद सारा बने बारदोली
तभी बैरियों पर सेहर देख लेना॥ निहत्थे।।' [28]

हमारा देश 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र तो हो गया, लेकिन जो दीवार खड़ी हुई, वह आज भी बनी हुई है। उस दीवार का नुकसान आज भी दोनों देश उठा रहे हैं। हिंदी साहित्य की दृष्टि से देखें 1947 का समय प्रयोगवाद (1943–1951) के अंतर्गत आता है। हिंदी साहित्य में नए–नए प्रयोग करने पर बल दिया जा रहा था। प्रयोगवादी कवियों में व्यक्तिगत हताशा के दर्शन होते हैं। संभवत: राष्ट्रीय चेतना से कट सा गया था। हाँ, यह सत्य है कि प्रयोगवादी कवि सामाजिक यथार्थवादी थे और उनका सामाजिक यथार्थवाद कहीं–न–कहीं मार्क्सवादी विचारधारा व उसके समाजवादी रूप से प्रेरित रहा है।

विभाजन की त्रासदी के साथ हमारा देश स्वतंत्र

हुआ। पापी नाथूराम गोंडसे ने महात्मा गाँधी की हत्या कर दी। देश शोक संतप्त हो गया। फिर इस तरह की पंक्तियाँ सामने आईं। नाथूराम को कोसा गया। उसे स्वार्थों का प्रहरी बताया गया।

किसी कवि ने कहा–
'जिस बर्बर ने कल तुम्हारा खून पिया
वह नहीं मराठा, हिंदू है,
वह प्रहरी है स्थिर स्वार्थों का,
वह मानवता का महाशत्रु हम समझ गए।' [29]

इसी प्रकार बापू पर कई सारी कविताएँ लिखी गई हैं। इसमें सुमित्रानंदन पंत की कविता 'बापू के प्रति' अत्यधिक प्रसिद्ध है।

वर्तमान में कविताएँ विविध विमर्शों के दृष्टिकोण से देखी जा रही हैं। वर्तमान में कविताओं को दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, मुस्लिम विमर्श, स्त्री विमर्श, कृषक विमर्श, बाल विमर्श, किन्नर विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि के अंतर्गत रखा जा रहा है। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए परिस्थितियाँ बदल गई हैं। लोग बदल गए हैं। समस्याएँ भी नई-नई हैं। कुछ समस्याएँ पुरानी हैं, परंतु उनका रूप नया है। पहले हम विदेशियों से आजाद होना चाह रहे थे। आज हम अपनों के शोषण से आजाद होना चाहते हैं। पहले गोरे हमारा शोषण कर रहे थे। आज काले हमारा शोषण कर रहे हैं। कविता समाज का दर्पण नहीं रही। वह अब चापलूसी में बदल गई है। हम आशावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए शोषण की कारा के दूर होने की उम्मीद कर सकते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि 1857-1947 तक का सफर बड़ा कठिन रहा है। इस सफर को तय करने में हमें कई बलिदान देने पड़े हैं। तत्कालीन कविताओं ने निश्चय ही लोगों को चेतना संपन्न बनाया। उन्हें क्रांति व आंदोलन के लिए प्रेरित किया। देश को स्वतंत्र कराने में इन कविताओं का महती योगदान है। इन कविताओं से तत्कालीन समाज तथा तत्कालीन शोषक व शोषितों का ज्ञान हो जाता है। उस समय अंग्रेज शोषक थे और पूरा भारत शोषित था। उन कवियों तथा कवयित्रियों ने अपने कर्तव्यों का निर्वहन बखूबी किया है। ❑

संदर्भ सूची :

1. कविता के सौ बरस, सं. लीलाधर मंडलोई, लेख - स्वाधीनता आंदोलन और प्रतिबंधित हिंदी कविताएँ - रुस्तम राय, पृ.सं. 268
2. हमारे इतिहास में 1857 - सं. प्रदीप सक्सेना - लेख - 1857 - एक नया मूल्यांकन - मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, पृ.सं. 173
3. वही, पृ.सं. 162
4. वही, पृ.सं. 169
5. कविता के सौ बरस, सं. लीलाधर मंडलोई, लेख - स्वाधीनता आंदोलन और प्रतिबंधित हिंदी कविताएं - रुस्तम राय, पृ.सं. 279
6. वही, पृ.सं. 280
7. भारत-दर्शन ऑनलाइन हिंदी साहित्यिक पत्रिका (2443-0758) की वेबसाइट से उद्धृत, दिनांक 12.08.2018, समय : 12-53 रात्रि
8. हिंदी साहित्य का इतिहास - सं. रामसजन पाण्डेय, पृ.सं. 282
9. भारतेंदु ग्रंथावली-1, सं. ओमप्रकाश सिंह, पृ.सं. 114
10. वही, पृ.सं. 113

11. भारतेंदु हरिश्चंद्र ग्रंथावली – 1 (नाटक, निबंध और मौलिक नाटक), संपादक ओमप्रकाश सिंह, पृ.सं. भूमिका
12. कविता के सौ बरस, सं. लीलाधर मंडलोई, लेख– स्वाधीनता आंदोलन और प्रतिबंधित हिंदी कविताएँ – रुस्तम राय, पृ.सं. 272
13. वही, पृ.सं. 273
14. वही, पृ.सं. 275
15. कविता कोश वेबसाइट (भारतेंदु हरिश्चंद्र – गज़ल) से उद्धृत, दिनांक 30.7.2022, समय 11.06 रात्रि
16. हिंदी साहित्य का इतिहास – सं. रामसजन पाण्डेय, पृ.सं. 288
17. मैथिलीशरण गुप्त ग्रंथावली (खण्ड 1), सं. डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, पृ.सं. 18
18. वही, पृ.सं. 321
19. प्रसाद, निराला, अज्ञेय – रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ.सं.
20. चुने हुए राष्ट्रीय गीत – मीना अग्रवाल, पृ.सं. 141
21. वही, पृ.सं. 196
22. वही, पृ.सं. 222
23. कविता के सौ बरस, सं. लीलाधर मंडलोई, लेख – स्वाधीनता आंदोलन और प्रतिबंधित हिंदी कविताएँ – रुस्तम राय, पृ.सं. 278
24. वही, पृ.सं. 278
25. चुने हुए राष्ट्रीय गीत – मीना अग्रवाल, पृ.सं. 14
26. कविता के सौ बरस, सं. लीलाधर मंडलोई, लेख – स्वाधीनता आंदोलन और प्रतिबंधित हिंदी कविताएँ – रुस्तम राय, पृ.सं. 268
27. चुने हुए राष्ट्रीय गीत – मीना अग्रवाल, पृ.सं. 174
28. दिनकर रचनावली–1, सं. नंदकिशोर नवल, तरूण कुमार, पृ.सं. 39
29. हिंदी साहित्य का इतिहास – रामसजन पाण्डेय, पृ.सं. 312

महात्मा गाँधी और हिंदी

डॉ. आकाश वर्मा

हिंदी विभाग
असम विश्वविद्यालय, सिलचर
असम- 788011
मो. 09435173672
ई-मेल : hindiakash@gmail.com

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में महात्मा गाँधी के कई स्वरूप सक्रिय रहे हैं। इसमें देशी भाषाबोध भी है। निश्चय ही महात्मा गाँधी अंग्रेजी के ज्ञाता थे, गुजराती उनकी मातृभाषा थी, किंतु देश के नवनिर्माण एवं उसकी स्वाधीनता प्राप्ति के लिए हिंदी की भूमिका उन्हें अधिक महसूस हुई। अत: उनका देशप्रेम हिंदी को राष्ट्रीय स्तर पर विस्तार देने को भी प्रेरित करता रहा। इसके लिए वे हर समय सक्रिय भी रहे और उनकी यह सक्रियता निरंतर रही। इसमें हिंदी के प्रचार-प्रसार से लेकर भारत वर्ष में सभी भारतीयों के लिए इसे एक दूसरे से संपर्क करने की भाषा के रूप में स्थापित करना भी रहा। हम अगर स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास पर गौर करें तो प्राय: यही दिखाई देता है कि बहुसंख्यक और बलशाली जनसमूह होने के बावजूद भारतीय जनता में एकसूत्रता और चेतना का अभाव था, जबकि बहुत कम संख्या वाले विदेशी शासक सदैव शक्तिशाली एवं प्रभावकारी बने रहे। इसी कारण, एकल अथवा क्षेत्रीय रूप में किए जा रहे संघर्ष प्रभावकारी नहीं सिद्ध हो रहे थे, क्योंकि उनका कोई आपसी सामंजस्य नहीं था। प्राय: अंग्रेजी सैनिक इस प्रकार के संघर्षों को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जाकर दमित करते रहते थे। अत: उस दौर में एक भाषा के माध्यम से भारतीयों को एकता के सूत्र में बाँधने तथा उनमें आपसी सामंजस्य के सहारे राष्ट्रीय चेतना को स्थापित करना, महात्मा गाँधी की एक महती योजना रही। निश्चित रूप से उस दौर में यह काम अंग्रेजी भाषा के द्वारा नहीं होना था और अगर हम भारतीय भाषाओं का विकासक्रम देखें तो देवनागरी में लिखी जा रही हिंदी का प्रसार, सामान्य रूप से अन्य भारतीय भाषाओं से कहीं अधिक विस्तार प्राप्त कर रहा था । इस लिहाज से हिंदी की आवश्यकता देश को थी। देश स्तर पर सक्रिय आंदोलनों को अन्य क्षेत्रों तक पहुँचाने एवं प्रभावकारी बनाने की तीव्रता निश्चित रूप से महात्मा गाँधी के भारत आगमन के पश्चात हुई और इसमें निश्चित रूप से हिंदी आगे आई। हम देखते हैं कि 1857 का प्रथम स्वाधीनता आंदोलन बहुत अधिक सफल नहीं हो पाता है, लेकिन एक प्रभाव अवश्य छोड़ जाता है कि किस प्रकार स्वाधीनता की लड़ाई तथा राष्ट्रीय बोध को एक-दूसरे से साझा करते हुए आगे बढ़ना है। हालाँकि बहुत बाद तक भाषिक एकता की ओर विशेष ध्यान नहीं

दिया गया, जिससे विदेशी शासन का वर्चस्व मजबूत होता चला गया।

भारत में प्रवेश से पूर्व ही महात्मा गाँधी को महसूस हो चुका था कि भाषा की एकसूत्रता बहुत आवश्यक है। लंदन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए मन में आने वाले विचारों को वे हिंद स्वराज में लिपिबद्ध करते हैं, जो वर्ष 1909 में गुजराती में प्रकाशित होता है। उस पुस्तक में वे संकेत कर देते हैं कि भारत की भाषा हिंदी ही होनी चाहिए। यह कहने के पीछे न तो हिंदी समझने वालों को बढ़ावा देना था और न ही किसी भी भाषा को राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलाना था। उनका मूल उद्देश्य मात्र इतना ही था कि हिंदी, जो पूर्व से बहुसंख्यक लोगों द्वारा बोली जा रही है और संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही है, उसी को अंग्रेजी भाषा के स्थान पर सीखना चाहिए। सीधा अर्थ निकाला जा सकता है कि 80 प्रतिशत तक अशिक्षित जनता को अंग्रेजी सीखने-समझने पर जोर दिया ही जा रहा था तो उसके स्थान पर हिंदी क्यों नहीं, जबकि अंग्रेजी की तुलना में हिंदी सरल और सहज भाषा है और सबसे महत्वपूर्ण की यह भारत देश की भाषा है। हालाँकि ऐसा नहीं हुआ। लोगों ने पराधीनता काल के दौर में किए जा रहे संघर्षों के बीच भी अनेक प्रकार से हिंदी का विरोध किया। आज उसी का परिणाम है कि प्राय: सभी अंग्रेजी इस्तेमाल करते हैं और अपनी-अपनी मातृभाषाओं को अपनी लिपि से अधिक रोमन लिपि में लिखते हैं। किसी भी राष्ट्र के लिए इससे अधिक विडंबना क्या हो सकती है? महात्मा गाँधी ने उन विरोधों के बावजूद हिंदी के प्रसार के लिए अनेक कार्य किए। इसे स्वीकार करने में कहीं कुछ भी गलत नहीं है कि हिंदी भाषा को राष्ट्रीय स्तर स्थापित करने का औचित्य देश की स्वाधीनता, एकता, अखंडता और स्वतंत्रता आंदोलन को मजबूत करना ही था। रामविलास शर्मा भी इस बात की ओर संकेत करते हैं कि गाँधी जी की नीतियों एवं आंदोलनों में भाषा का आंदोलन अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि भारतीय जनता के बीच स्थित यह भाषिक भेद एक बहुत गहरी समस्या है। वे कहते हैं कि महात्मा गाँधी ने अपने राजनीतिक जीवन के आरंभ से ही भाषा समस्या पर सोचना और लिखना प्रारंभ कर दिया था। उनकी नीतियों में सत्य, अहिंसा, स्वराज, सर्वोदय आंदोलन आदि विषयों का इतना उपादेय नहीं, जितना भाषा-समस्या पर। अंग्रेजी, भारतीय भाषाओं, राष्ट्रभाषा हिंदी और हिंदी-उर्दू की समस्या पर उन्होंने जितनी बातें कहीं हैं, वे बहुत ही मूल्यवान हैं। किसी भी राजनीतिक नेता ने इन समस्याओं पर इतनी गहराई से नहीं सोचा, किसी पार्टी और उसके नेताओं ने भाषा- समस्या के सैद्धांतिक समाधान को अपनी नित्यप्रति की कार्यवाही में इस तरह अमली जामा नहीं पहनाया, जैसे गाँधी जी ने किया । इन सभी तथ्यों की पुष्टि हम संपूर्ण गाँधी वांग्मय के अध्ययन से कर सकते हैं। महात्मा गाँधी हिंदी और हिंदुस्तानी की स्थापना के लिए साहित्य सम्मेलन, शिक्षण संस्थाओं, हिंदी प्रचारक सभाओं की अनेकानेक बैठकों तथा भाषणों में निरन्तर प्रयत्नशील रहे। हिंदी भाषा के लिए किए गए ये सभी प्रयत्न उतने ही आंदोलनधर्मी रहे, जितना की स्वतंत्रता-संघर्ष।

उनका यह प्रयास दक्षिण की ओर अधिक रहा, क्योंकि उधर हिंदी के प्रति उदासीनता अधिक रही। बंगाल में पूर्व से ही हिंदी के प्रति एक लगाव था, लेकिन वहाँ अंग्रेजी नीति के लागू होते ही राष्ट्रभाषा अथवा राष्ट्रीय चेतना के रूप में हिंदी को सहज स्वीकार्यता नहीं प्राप्त हुई। इसलिए अनेक बार वे बंगाल का दौरा करते हुए राष्ट्रभक्ति के लिए हिंदी को अपनाने की सहज सलाह देते हैं। इसे भारतीय जनमानस की सेवा मानते हैं। भारत आने के कुछ वर्ष बाद ही महात्मा गाँधी इस कार्य के लिए तत्पर हो उठे थे। 30 दिसंबर, 1917 को राष्ट्रीय भाषा सम्मेलन में अपने दिए भाषण में वे संकेत करते हैं कि लोकमान्य तिलक यदि हिंदी में बोलते तो बड़ा लाभ होता। लार्ड डफरिन तथा लेडी चेम्सफोर्ड की भाँति तिलक को भी हिंदी सीखने का प्रयास करना चाहिए। रानी विक्टोरिया ने भी हिंदी सीखने की कोशिश की थी। पंडित मालवीय जी से मेरी अर्जी है कि यदि वे कोशिश कर दें तो अगले वर्ष अन्य किसी भाषा में कांग्रेस के व्याख्यान न हों। उनका संकेत

है कि स्वाधीनता की लड़ाई लड़ने वाली कांग्रेस पार्टी के व्याख्यान अंग्रेजी में क्यों किए जाते हैं? यही नहीं, वे मानते हैं कि हिंदी की जगह अंग्रेजी को अपनाना एक प्रकार से राष्ट्र हत्या की तरह प्रतीत होता है। कलकत्ता विश्वविद्यालय में भी उसी वर्ष महात्मा गाँधी भाषण देते हुए भारतीयों के हिंदी ज्ञान की कमी पर चिंता प्रकट करते हुए कहते हैं- देश सेवा करने के लिए सब उत्सुक हैं, परंतु राष्ट्रसेवा तब तक संभव नहीं, जब तक कोई राष्ट्रभाषा न हो। यह बड़े दुख की बात है कि हमारे बंगाली भाई राष्ट्रभाषा का प्रयोग न कर राष्ट्रीय हत्या कर रहे हैं। इसके बिना देश की आम जनता तब नहीं पहुँचा जा सकता। सीधा संकेत है कि हिंदी के सहारे महात्मा गाँधी राष्ट्रीय सेवा को अधिक महत्व देने की बात कर रहे थे। अवसरवादी प्रवृत्ति के लोग नई भाषा सीखने के नाम पर अंग्रेजी भाषा तो सीख ही रहे थे, आम जनता भी उसी प्रवृत्ति का अनुसरण कर रही थी। महात्मा गाँधी को इससे समस्या थी, जब दूसरी कोई भाषा सीखनी ही है तो वह हिंदी क्यों न हो ताकि संपूर्ण भारतीय जनमानस एक-दूसरे से जुड़ सके।

उनके लिए यह बहुत ही विचित्र स्थिति थी कि एक भारतीय अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी में बोलकर अपने को श्रेष्ठ समझने का अभिनय कैसे कर सकता है? 3 जनवरी, वर्ष 1916 को एक भाषण में महात्मा गाँधी कहते हैं कि अंग्रेजी में बोलने वाले (छात्र या लोग अथवा कोई भी) यह भी नहीं सोचते कि वे जिन लोगों के सामने भाषण दे रहे हैं, वे अंग्रेजी समझ सकेंगे या नहीं? साथ ही जो अंग्रेजी समझते हैं, उनके सामने यह टूटी-फूटी अंग्रेजी सुनकर उन्हें अच्छा लगेगा अथवा बुरा। नवयुवक अपनी मातृभाषा से विमुख होकर विदेशी भाषा के अनुरागी हो जाएँ, यह सचमुच खेजदनक स्थिति है। देश में नवयुग का आरंभ विदेशियों के संसर्ग से हुआ है-ऐसा कहने वाले लोग अपने नए विचार अपने पास-पड़ोस के लोगों को समझाने की कितनी चिंता करते हैं? उन्हें यह अवश्य देखना चाहिए कि जिस भाषा को उनके माता-पिता नहीं जानते, जिस भाषा को उनके भाईबंद नहीं समझ सकते और जिस भाषा को उनके

नौकर- चाकर, स्त्री-पुरुष या सगे- संबंधी भी नहीं समझते, उस भाषा में बड़बड़ करने से नवयुग पास आएगा या दूर खिसकेगा? कुछ लोगों का ख्याल है कि अंग्रेजी हमारे देश की भाषा है और आगे-पीछे यही भाषा देश के सब लोगों की भाषा बन जाएगी, किंतु यह ख्याल मुझे सही नहीं जान पड़ता। मुट्ठी भर अंग्रेजी पढ़े लोगों को ही हम अपना देश मान लें तो कहना पड़ेगा कि हम देश शब्द का अर्थ नहीं समझते। वस्तुतः यह बहुत कम हुआ कि राष्ट्रीय बोध के अवयवों को उनके गहरे बोध के साथ स्वीकार किया जाए। देश का अर्थ उसके प्रति समपर्ण, चेतना और उनके प्रतीकों को प्रति लगाव की ओर संकेत करता है। गाँधी जी के देश शब्द की परिभाषा लोक से लेकर संस्कृति, पहचान, राष्ट्रभाषा तथा चेतना एवं उसके बोध तक बहुँचती है। आज हमें हर घर तिरंगा जैसे अभियान का आयोजन करना पड़ रहा है। इसका साफ मतलब है कि स्वार्थ और लालच में भारतीय जनता ने ठीक से राष्ट्रीय प्रतीकों एवं पहचानों को अपने बोध में शामिल नहीं किया। ऐसा नहीं है कि सभी लोग ऐसे हैं लेकिन महात्मा गाँधी की बातों से संकेत मिल जाता है कि पराधीनता के समय में भी ऐसे लोग थे जिनके राष्ट्रीय सरोकार न के बराबर रहे। उनकी बातों से स्पष्ट होता है कि जिस संपूर्ण जनता को राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय होना चाहिए था, बहुत अधिक लोग दूर थे। यह भी स्पष्ट था कि प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं की पहुँच जनता के लिए सीमित थी । इस लिहाज से तो सभी को कम से कम हिंदी में कार्य करना चाहिए था, ताकि जो जानते हैं, वे तो प्रेरित हों ही, जिनको

हिंदी नहीं समझ आती वे सीखें और कम से कम देश-प्रेम से प्रेरित हो सकें। अंग्रेजी प्रेम ने भी आम जन को राष्ट्रीय आंदोलनों से दूर रखा था, क्योंकि वह भारतीय जनता के लिए कठिन भाषा थी और आज भी है। स्पष्ट है कि महात्मा गाँधी भाषा को वे समाज सुधार से लेकर देश के विकास में सहयोगी विषय समझते रहे हैं। हम जानते हैं कि भारत की स्वाधीनता में लाखों लोगों के प्राणों की आहुति हुई, लेकिन यह विडंबना भी रही कि उतने अंग्रेज नहीं थे, जितने की लोगों की जान गई। इसके कारण क्या हो सकते हैं? इसका कारण राष्ट्रबोध और एकता की कमी। महात्मा गाँधी के समानांतर सुभाष चंद्र बोस में भी यह बोध था और ऐसे लोगों को एकत्रित करते हुए वे भारतीय स्वाधीनता सेना (आजाद हिन्द फौज) का निर्माण बाद में करते हैं। ये अलहदा बात है कि गाँधी और बोस दोनों के मार्ग अलग-अलग थे।

इतिहास पर एक बार और गौर करें तो महात्मा गाँधी के भारत आगमन (1915) से पूर्व राष्ट्रीय कांग्रेस के सारे क्रिया-कलाप और अधिवेशन अंग्रेजी में ही हुआ करते थे। कहने का तात्पर्य यह कि जिन अंग्रेजों से देश की मुक्ति का आंदोलन करने के लिए कांग्रेस पार्टी सक्रिय थी, वह उन्हीं अंग्रेजों की भाषा में अपना कार्य कर रही थी। महात्मा गाँधी के आगमन और मालवीय जी के प्रयास से हिंदी को भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में स्थान प्राप्त हुआ, साथ ही राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशनों में हिंदी को स्थान प्राप्त होना आरंभ हुआ। निश्चय ही इससे देश की अधिकांश जनता को बल मिला तथा भारतीय स्वाधीनता आंदोलनों की सक्रियता में जनबल की बढ़ोतरी होने लगी। महात्मा गाँधी के संवादों, विचारों की ही प्रेरणा से हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने 1918 में मद्रास में अपना कार्यालय खोला, जो बाद में वर्ष 1927 में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा मद्रास के रूप में स्थापित हो गया। इसी प्रकार वर्ष 1920 में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना हुई, जिसमें हिंदी माध्यम से शिक्षा दिए जाने की व्यवस्था हुई। इसके साथ ही बनारस में काशी विद्यापीठ की स्थापना 1921 में हिंदी माध्यम से शिक्षा देने के लिए की गई। इनकी ही प्रेरणा से राष्ट्रभाषा हिंदी तथा देवनागरी लिपि के प्रचार प्रसार के लिए 1935 में हैदराबाद में हिंदी प्रचार सभा की स्थापना होती है। महात्मा गाँधी के प्रयासों का ही परिणाम निकलता है कि वर्ष 1936 में हिंदी साहित्य सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन में भारत के पश्चिमी तथा पूर्वी भाग में हिंदी के प्रचार के लिए हिंदी प्रचार समिति वर्धा का निर्माण होता है, जिसे वर्ष 1938 से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के नाम से जाना गया। उन प्रयासों का नवीन परिणाम यह निकला कि लोग एक राष्ट्रीय भाषा की छत्रछाया में एकत्रित होने लगे। वर्ष 1936 से लेकर 1938 के बीच और उसके बाद भी पूरब से लेकर पश्चिम तक, बंगाल से कश्मीर और भारत के दक्षिण-मध्य तक इस प्रचार सनिति की अनेक शाखाएँ स्थापित हुईं, जिसमें प्रमुख इस प्रकार हैं-

1. पश्चिम बंग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कलकत्ता, वर्ष-1936, मंत्री-संचालक : रेवतीरंजन सिन्हा,
2. सिंध- राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जयपुर, वर्ष- 1936, मंत्री-संचालक : दौलतराम शर्मा,
3. गुजरात प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद, वर्ष-1937, मंत्री-संचालक : जेठालाल जोशी,
4. महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे, वर्ष- 1937, मंत्री-संचालक: प.मु. डाँगरे,
5. बम्बई प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बम्बई, वर्ष-1937, मंत्री-संचालक : कान्तिलाल जोशी,
6. उत्कल प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक, वर्ष-1937, मंत्री-संचालक : अनुसूया प्रसाद पाठक,
7. असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, शिलांग, वर्ष-1938, मंत्री-संचालक : जीतेन्द्र चन्द्र चौधुरी
8. विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर, वर्ष- 1938,

मंत्री-संचालक : हृषिकेश शर्मा,

9. मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इम्फाल, वर्ष-1940, मंत्री-संचालक : छत्रध्वज शर्मा ।

इनके अतिरिक्त अन्य कई स्थानों पर भी हिंदी राष्ट्रभाषा के प्रचार- प्रसार के लिए समितियाँ बनती हैं, जैसे- हुबली (1947), दिल्ली (1948), बेलगाँव (1951), भोपाल (1952), औरंगाबाद (1956), श्रीनगर (1956), अबोहर (1958) आदि, किंतु ये सभी बहुत बाद की हैं अथवा स्वाधीनता प्राप्ति के बाद निर्मित और सक्रिय होती हैं।

यह कहने में कोई संदेह नहीं कि महात्मा गाँधी के उद्योगों का परिणाम होता है। उनके इस एक सूत्र की संवादिक भाषा की पूर्ती के लिए राष्ट्रभाषा प्रचार की वर्धा समिति हिंदी के लिए अपनी सक्रिय भूमिका निभाती है और यह कार्य बड़ी तीव्रता से होने लगता है। अत: देश भर में सहयोग के लिए समिति को और अधिक प्रचारकों की आवश्यकता पड़ती है। इसकी पूर्ती के लिए और प्रचारकों के निर्माण के लिए वर्धा समिति वर्ष 1937 में राष्ट्रभाषा अध्ययन मंदिर की स्थापना करती है, जिसका उद्घाटन भी महात्मा गाँधी द्वारा 7 जुलाई, 1937 के किया जाता है। हालाँकि यह अध्ययन केंद्र वर्ष 1942 तक, पाँच वर्ष की अवधि के लिए चलता है, जिससे 49 हिंदी प्रचारक, हिंदी सेवा के लिए निष्णात होकर निकलते हैं और भारत भर में हिंदी के प्रसार में अपना योगदान देते हैं ।

इन सभी संयुक्त प्रयासों से देश की जनता निश्चित रूप से अपनी भावनाओं, संवेदनाओं, योजनाओं, चिन्ताओं आदि को एक दूसरे से साझा करने लगी थी, जिसका स्वाधीनता आंदोलन में एकसूत्रता के निर्माण में बड़ी भूमिका दिखाई पड़ती है। देश की सामान्य जनता तो लगभग एक दूसरे से कटी हुई थी उनके बीच धीरे-धीरे ही सही तादात्म्य स्थापित होने लगा। महात्मा गाँधी की हिंदी चेतना और उनके प्रतिनिधियों द्वारा किए गए प्रयास इस एकजुटता में महती भूमिका निभाते हैं। महात्मा गाँधी का हिंदी के माध्यम से मात्र यही उद्देश्य था, जिसका किसी मातृभाषा से कोई प्रतिरोध नहीं था, संघर्ष नहीं था और न ही उसे संकुचित अथवा सीमित करने का ही कोई उद्देश्य था। हिंदी महात्मा गाँधी के लिए एक राष्ट्रीय प्रतीक की तरह रही, जिसका प्रयोग उन्होंने भारत के लोक को देश के स्वाधीनता संग्राम में एकजुट बनाए रखने के लिए किया। ❑

सन्दर्भ सूची :

1. हिन्द स्वराज- महात्मा गाँधी, पृष्ठ- 116, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- वर्ष 2010
2. भारत की भाषा समस्या- रामविलास शर्मा, पृष्ठ- 93, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली- 02, तृतीय संस्करण- 2003
3. गाँधी वाङ्मय खण्ड- 14, पृष्ठ- 117, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, संस्करण- अगस्त 1965
4. तदेव, पृष्ठ- 119
5. गाँधी वाङ्मय खण्ड- 13, पृष्ठ- 193, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, संस्करण- मार्च 1965
6. तदेव, पृष्ठ- 194
7. हिंदी प्रचार का इतिहास- जयशंकर त्रिपाठी, पृष्ठ- 19, भारती परिषद, प्रयाग, प्रथम संस्करण- 1967

संभावनाओं व चुनौतियों के झंझावात और हिंदी

डॉ. निशा यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
कन्या गुरुकुल परिसर, देहरादून
गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय,
हरिद्वार, उत्तराखंड
मो. 9917750501

स्वतंत्रता से पूर्व ही राजभाषा या राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी भाषा में इसकी स्थिति व संभावनाओं की सुगबुगाहट शुरू हो गई थी। सामाजिक, साहित्यिक व राजनीतिक स्तर पर प्रयासों के साथ ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन व संस्थाओं की स्थापना की गई। अथक प्रयासों व बैठकों के दौर से गुजरते हुए 14 सितंबर 1949 को हिंदी को राजभाषा का दर्जा तो दिया गया, लेकिन सह-राजभाषा के रूप में अंग्रेजी को जो दर्जा मिला उसकी छाया में आज हिंदी की स्थिति ऐसी हो गयी है, जैसे विशाल वृक्ष के नीचे उपजा ऐसा पौधा जो अपने अस्तित्व की लड़ाई बिना हार स्वीकार किए लड़ रहा हो। संविधान में (अनुच्छेद 343-351 तक) जिस हिंदी का वर्णन मिलता है वो राजभाषा हिंदी है। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को अभी मान्यता नहीं मिल पाई है इसका कारण भारत की बहुभाषिकता है। इसी कारण जब भी यह मुद्दा उठता है दक्षिण में विरोध के स्वर तेज हो जाते हैं। अभी हाल ही में मई 2022 में एक हिंदी अभिनेता द्वारा हिंदी को राष्ट्रभाषा कहे जाने पर फिर एक बार इस विरोध के स्वर उठे थे। इन झंझावातों से गुजरते हुए आज के परिप्रेक्ष्य में हम समझेंगे कि एक भाषा के रूप में प्रयोग के आधार पर हिंदी के जो विभिन्न रूप विकसित हुए हैं, उससे हिंदी कितना समृद्ध हुई है क्या संभावनाएं हैं और क्या चुनौतियां अभी भी मुँह बाए खड़ी हैं!

भूमंडलीकरण, बाजारवाद व तकनीक ने जिस तरह मानव जीवन को प्रभावित किया है, ठीक उसी तरह भाषा को भी प्रभावित व परिवर्तित किया है क्योंकि परिवर्तशीलता तो भाषा का गुण है, स्वभाव है। इस भाषाई परिवर्तनशीलता व स्वभाविकता के परिप्रेक्ष्य में अगर हिंदी की दशा व दिशा का विवेचन व विश्लेषण करें तो आज हिंदी ने भौगोलिक दृष्टि से न केवल भारत बल्कि भारतेतर क्षेत्रों में भी अपनी बढ़त बनाई है। भूमंडलीकरण, बाजारवाद व तकनीक के इस युग में आज एक पक्ष हिंदी को राजभाषा व राष्ट्रभाषा से आगे जाकर विश्वभाषा के पद पर आसीन देख रहा है। विश्वभाषा को लेकर परिकल्पना की जाती है कि जो भाषा अधिक से अधिक देशों में बोली-समझी जाए, साहित्य सृजन, शिक्षा के क्षेत्र, जनसंचार आदि में वैश्विक स्तर पर जिसका प्रयोग होता हो या समकालीन विषयों की अभिव्यक्ति का

सामर्थ्य उसमें हो। 'विश्वभाषा पद की वास्तविक अधिकारिणी वे भाषाएं हैं, जो विश्व के अधिकतर देशों में पढ़ी, लिखी, बोली व समझी जाती हैं। वस्तुत: प्रत्येक विश्वभाषा के प्रमुख कार्य होते हैं बोलचाल एवं जनसंपर्क, साहित्य सृजन, शिक्षा व जनसंचार.....अत: हिंदी एक विश्वभाषा है, क्योंकि वो एक देश की राष्ट्रभाषा होने के साथ ही अन्य देशों में बोली, समझी व लिखी जाती है।'[1] जनसम्पर्क या सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी को देखें तो सिर्फभारत के हिंदी भाषी राज्यों में ही नहीं अहिंदी भाषी राज्यों में भी सामान्य जन द्वारा हिंदी का सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयोग किया जाता है। हाल ही में एक छात्रा (कर्नाटक) से हुई बात में इसकी पुष्टि हुई कि वहाँ ऑटो-रिक्षा वाले तक भी हिंदी का प्रयोग करते हैं। तमिलनाडु को लेकर भोलानाथ तिवारी का ये मत यहाँ विषेष उल्लेखनीय है कि 'बड़ी अजीब बात है कि राजनैतिक कारणों से वहाँ हिंदी का जबर्दस्त विरोध है, किन्तु वहाँ के लोग पैसे कमाने के लिए हिंदी की सहायता लेने में नहीं चूकते।'

'यह एक बड़ा विचित्र सत्य है कि राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी के विरोध का बोलबाला दक्षिण भारत में किया जाता रहा है, लेकिन सामान्य जनता सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करती रही है।'[2] वैश्विक स्तर पर देखें तो नेपाल, भूटान, मॉरीशस, सूरीनाम, त्रिनिदाद, फीजी, मलेशिया, हांगकांग, इग्लैंड, कनाडा व संयुक्त राज्य अमेरिका आदि में हिंदी बोलने वालो की संख्य बड़ी मात्रा में है। उपर्युक्त सभी देशों में हिंदी बोलने-समझने तक ही सीमित नहीं है बल्कि साहित्य लेखन भी प्रचुर मात्रा में हो रहा है, जिसे प्रवासी साहित्य नाम से अभिहित किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी को मजबूत व समृद्ध करने में प्रवासी साहित्य की महती भूमिका रही है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अगर हिंदी की बात करें तो हाल ही में गीतांजलि श्री के उपन्यास 'रेत-समाधि', का अनुवाद 'टॉम्ब ऑफ सैण्ड' को मिले अन्तरराष्ट्रीय बुकर सम्मान ने हिंदी भाषा और साहित्य दोनों को वैश्विक स्तर पर एक नई पहचान दी है- 'भारतीय साहित्य के बड़े दायरे में इस पुरस्कार का एक बड़ा प्रभाव तत्काल यह पड़ा है कि हिंदी भाषा और

साहित्य के प्रति लोगों की धारणा निश्चय ही बदली है। जैसे टैगोर के नोबेल के बाद बंगाली अन्य भारतीय भाषाओं से कहीं आगे बढ़ी हुई मान ली गयी थी उसी तरह का आदर-भाव अब हिंदी के प्रति भी जगा है।'[3]

डिजिटल युग की हमराह बनकर हिंदी ने इनफॉर्मेशन कम्यूनिकेशन एण्ड टेक्नोलॉजी के युग में न सिर्फ इस धारणा को काफी हद तक भ्रांत साबित किया है कि अब हिंदी अंग्रेजी के सामने टिक नहीं पाएगी बल्कि हिंदी ने अपनी जीवंतता को भी पुष्ट किया। आज हिंदी के अनेक टाइपिंग फॉन्ट ही नहीं बल्कि बोलकर टाइप करने वाले सॉफ्टवेयर भी उपलब्ध हैं, जिसके कारण टाइपिंग की कोई समस्या सामने नहीं रही। आज स्मार्ट फोन में भी वॉइस टाइपिंग की सुविधा है। 'राष्ट्रपति जॉर्ज बुश से पहले बिलगेट्स कह चुके थे कि कम्प्यूटर पर बोलकर लिखाने वाली भाषा देवनागरी लिपि में लिखी हिंदी है, क्योंकि इसमें जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा जाता है।'[4] हिंदी में शब्द-संसाधन, डाटा-संसाधन, वाचान्तर राजभाषा, लीला, माया जैसे एप्लिकेशन व सॉफ्टवेयर देकर सी-डैक पुणे ने कम्प्यूटर पर हिंदी की पहुँच एवं कार्यालयी कामकाज को सुगम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मास कम्यूनिकेशन में इंटरनेट या वेब पत्रकारिता, विज्ञापन व जनसम्पर्क, ब्लॉगिंग, सोशल मीडिया के साथ ही ओलम्पिक्स व कॉमनवेल्थ जैसे खेलों ने भी

हिंदी को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठापित किया है। हिंदी पत्रकारिता के प्रख्यात पत्रकार रवीश कुमार को मिले 'रेमन मैग्सेस पुरस्कार' ने भी एशिया जगत में हिंदी को विशिष्ट पहचान दिलाई। इंटरनेट या वेब पत्रकारिता ने वैश्विक स्तर पर हिंदी को मजबूती प्रदान की है। प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया दोनों ही आज डिजिटल में ज्यादा सक्रिय हो गए हैं। इंटरनेट पत्रकारिता में दर्शक को एक तो इंतजार नहीं करना पड़ता दूसरा उसे पाठ्य, दृश्य एवं श्रव्य सामग्री एक ही जगह मिल जाती है। सोशल मीडिया ने वैचारिक अभिव्यक्ति के साथ ही भाषाई स्वतंत्रता भी प्रदान की है। गूगल पर भाषाई विकल्पों में हिंदी ही नहीं दूसरी भारतीय भाषाओं की भी पहुँच है। हालांकि इसका आधार कुछ हद तक यह भी है कि बाजारवाद के इस दौर में विश्वव्यापी कंपनियों के लिए भारत एक बड़े उपभोक्ता के रूप में उभर रहा है या उभरेगा। जाहिर है इससे हिंदी भाषा में नए शब्दों का आगमन निश्चित है। हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि हिंदी भारत के एक बड़े भूभाग में बोली और समझी जाती है, इसी आधार पर अगर देखें तो पाते हैं कि व्यापक स्तर पर उपभोक्ता तक पहुँच बनाने के लिए बड़े पैमाने पर विज्ञापनों में हिंदी का प्रयोग किया जाता है। साथ ही ये भी ध्यातव्य रहे कि विज्ञापनीय भाषा का उद्देश्य सामान्य से सामान्य उपभोक्ता तक पहुँचना होता है, इसलिए विज्ञापनों में व्यावहारिक शब्दावली का ही प्रयोग किया जाता है। 'विज्ञापन की हिंदी यही जनभाषा हिंदी है।.....आज विज्ञापन की भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग बड़े पैमाने पर हो रहा है। विज्ञापनों के उद्देष्य को आकर्षक तथा प्रभावी रूप में जनमानस तक संप्रेषित करने का सफल प्रयास कर रही है।'[5] उपर्युक्त विवरणानुसार जिसमें वैश्विक स्तर के साथ ही भारत में विभिन्न क्षेत्रों में, विभिन्न प्रयोजनों हेतु जब हिंदी फल-फूल रही है, तब भी आज हिंदी, विद्यार्थियों एवं जन सामान्य के मध्य कठीन भाषा क्यों बन रही है? विद्यार्थियों (हिंदी क्षेत्र) का उल्लेख यहाँ इसलिए प्रासंगिक है कि उनका इस कठिन हिंदी से सामना होता है, सरकारी दफ्तर जैसे बैंक या डाकखाना और प्रतियोगी परीक्षा में आने वाली हिंदी के रूप में और यही वजह है कि ज्यादातर विद्यार्थी विषय के रूप में हिंदी को कठिन मान चुनने से कतराते हैं। हिंदी के प्राध्यापक गाहे-बगाहे हर साल ऐसी परिस्थिति से रूबरू होते हैं। सामान्य जन किसी सरकारी दफ्तर या अखबार में निकली प्रेस विज्ञप्ति में जो हिंदी पढ़ता है, यानी कि सरकारी कार्यालयों में प्रयुक्त हिंदी जिसे कार्यालयी हिंदी कहा जाता है, उसकी स्थिति 'सिर को धुने चले न जोर, जल जल करती वह भोर' वाली अमीर खुसरो की पहेली जैसी हो जाती है। प्रतिवेदक, अभ्यर्थक, पुरुष रक्षक, महिला रक्षक, सूचीकार, लेखाकार जैसी शब्दावली राज्य सरकार द्वारा निकाले गए पदों की विज्ञप्ति में प्रयोग में लाई जाती है, पर हैरान करने की बात यह है कि ये उम्मीदवारों की समझ से परे होती है।

जाहिर है कि इन षब्दों के अर्थ पारिभाषिक षब्द कोष की अपेक्षा रखते हैं, लेकिन प्रश्न ये उठता है कि क्या जिस सामान्य जन के लिए ये पद निकाले गए थे, उनको ध्यान में रखते हुए उन्हीं के अनुकूल भाषा का प्रयोग नहीं होना चाहिए? यहाँ पर लोहिया जी का एक कथन उद्धृत करना यथोचित है-'शासन करने वालों के लिए भाषा भी एक हथियार होती है। हिन्दुस्तान का नेतृत्व करने वाला वर्ग कभी नहीं चाहता कि जनता की भाषा में काम हो। वह शासन का रहस्य बनाए रखना चाहता है।.....सिर्फ बन्दूक के जरिए नहीं बल्कि ज्यादा तो गिटपिट भाषा के जरिए लोगों को दबाए रखा जाता है। लोकभाषा के बिना लोकराज्य असंभव है।'[6] हालांकि इस तरह की शब्दावली को समझना सिर्फ सामान्य जन के लिए ही नहीं बल्कि एक पढ़े-लिखे तबके के लिए भी चुनौती से कम नहीं है। हाल ही में संघ लोक सेवा आयोग के हिंदी प्रश्न-पत्र की भाषाई क्लिष्टता को सोशल मीडिया व अखबारों में काफी जोर-शोर से उठाया गया था। हालांकि ये अलग बात है कि आज के 6-7 वर्ष पूर्व भी ये मुद्दा काफी मीडिया में उठने के बावजूद किसी संतोषजनक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सका।

हिंदी माध्यम के विद्यार्थी जब कर्मचारी चयन आयोग, संघ लोक सेवा आयोग व अन्य प्रतियोगी परीक्षा में बैठते हैं तो वहाँ उनका सामना-

हिंदी	अंग्रेजी
दत्त	डेटा
सुघट्य	प्लास्टिक
विशाल गोलाश्म	बोल्डर्स
प्राप्तयंम ऊर्जा	फ्री एनर्जी
मरुभवन	डिजर्टिफिकेशन
पृथ्वीकाल	अर्थ आवर
दस अंश जलमार्ग	दस डिग्री चैनल
बरूथी	टर्माइट
दूध आसकंदन	सॉरिंग ऑफमिल्क
वर्धमानत: स्वीकृत	इन्क्रीजिंगली एक्सेप्टड [7]

जैसे शब्दों से होता है।

साल 2014 में संघ लोक सेवा आयोग के प्रश्न-पत्र में हिंदी का उपर्युक्त रूप देखा गया। समय-समय पर विद्यार्थियों ने इस मुद्दे को उठाया है, आंदोलन किया यहाँ तक कि संसद में भी ये मामला उठा। उस वक्त सरकार की तरफसे ये आश्वासन भी दिया गया कि अब परीक्षा में भाषा का स्तर ठीक किया जाएगा। हाल ही में हुई संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षा की शब्दावली तंत्रिका आवासी, आमापन, आविशालुता, जाहक, शेषमूलक, वज्रशल्क, प्रक्षादित, सूत्रकणिका को देखकर तो ऐसा ही लगता है कि स्थिति जस की तस ही बनी हुई है। प्रतिभागियों की तो छोड़िए इस हिंदी भाषा को देखकर व पढ़कर तो बड़े-बड़े हिंदी के धुरंधर भी सिर धुनने लगें। ऐसी हालत में विद्याार्थी यही सोचते होंगे कि ऐसी हिंदी से भली तो अंग्रेजी! अंग्रेजी का बढ़ता प्रभुत्व व हिंदी का यह रूप आज के युवाओं में यह धारणा बना चुका है कि हिंदी एक दुरुह और क्लिष्ट भाषा है। ऐसे हिंदी माध्यम में अगर कोई प्रतिभागी परीक्षा में सफल हो जाता है तो वास्तव में वो काबिले तारीफहै!

असल में हिंदी के ये जो रूप हैं, ये कार्यालयी हिंदी, पारिभाषिक शब्दावली व अनुवाद की देन है। सरकारी दफ्तरों में आमजन को विज्ञप्ति या विभिन्न फॉर्म्स के माध्यम से हिंदी का जो रूप देखने को मिलता है, वो आम बोलचाल की भाषा से अलग होता है। उसमें पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, जिससे सामान्य-जन अनभिज्ञ रहता है, नतीजतन ये होता है कि वो सामान्य जन की समझ से परे हो जाता है। बहुधा ये भी देखने को मिलता है कि इस हिंदी को समझने के लिए उसके समानान्तर लिखी अंग्रेजी सहायक सिद्ध होती है।

ऐसे में जब भाषा अपने ही क्षेत्रवासियों के लिए अनजान हो जाए तो उसके वैष्विक स्तर पर फलने-फूलने की बात थोड़ा बेमानी लगती है। दूसरी ओर हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों के अन्दर अनूदित हिंदी को देखकर एक हीन भावना और रोजगार को लेकर अपार आशंकाएं घर कर जाती हैं।

लोक व्यापार या संचालन के लिए आचार्य दण्डी ने भाषा को अतिआवष्यक वस्तु मानते हुए ही 'वाचामेव प्रसादेन लोकयात्रा प्रवर्तते' जैसे कथन का प्रयोग किया है, क्योंकि भाषा के अभाव में लोक व्यापार असंभव है। भाषा की ऐसी शब्दावली जो उस समाज के लोगों की समझ से परे हो मौखिक व लिखित दोनों ही तरह निरर्थक है। भाषा का विकास एवं संरक्षण एक तरह से लोक के मध्य ही होता है। ऐसे में अगर हिंदी भाषा हिंदी भाषी क्षेत्र में ही नासमझी का शिकार होने लगेगी तो उसके संरक्षण व विकास की जगह लोक के मध्य भी नहीं बचेगी। भाषाई सम्प्रेषण तभी संभव है, जब दोनों तरफ एक ही भाषा या ध्वनि प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। इसके अभाव में भाषा समाज के बीच सेतु न बनकर बाधक बन जाती है। डॉ. लोहिया ने भी भाषा, भूषा, भोजन और भवन को सामाजिक असमानता का कारण माना है। हिंदी को इस तरह की दुरुहता व जटिलता से बचाने के लिए प्रतियोगी परीक्षा में कम्प्यूटरीकृत अनुवाद की जगह व्यक्तिगत के साथ ही व्यावहारिक शब्दावली के प्रयोग का प्रयास करना चाहिए। 'भाषा और लिपि के सवाल पर गांधी जी कहते हैं- उच्च साहित्य और विज्ञान के लिए केवल संस्कृत से नाम नहीं लिये जाने चाहिए। एक छोटी सी कमेटी बनाई जाना चाहिए, जो ऐसे शब्दों का कोष बनाए। उसमें चालू शब्द इकट्ठे किए जाएं।......कुर्सी के लिए 'चतुष्पाद

पीठिका' शब्द लें या बेरोक-टोक कुर्सी?[8] हिंदी का विश्वभाषा की अधिकारिणी होना गर्व की बात है, लेकिन इस तरह के संस्कृतनिष्ठ व अनूदित रूप से एक कठिन व दुरूह भाषा ही मयस्सर होगी। अगर हम हिंदी की प्रकृति के प्रतिकूल अनुवाद उस पर थोपने का प्रयास करेंगे तो 'स्टील प्लांट' के स्थान पर 'इस्पात पौधा' जैसे शब्द हमें देखने को मिलेंगे।

आज जब सारा देश आजादी के 75 वर्ष पूरे होने पर अमृत महोत्सव मना रहा है तो प्रश्न उठना लाजिमी है कि क्या आजादी की सहचरी रही हिंदी अपना वो पद या रूप पा सकी, जिसकी वो अधिकारिणी थी और अगर नहीं तो आखिर क्यों? हाल ही में प्रकाशित पुस्तक 'हिंदी राष्ट्रवाद' में तत्संबंधी कारणों को बताने की कोशिश लेखक ने की है-'वह हिंदी जो अपनी अनेक बोलियों और उर्दू के साथ मिलकर इतनी रचनात्मक, सम्प्रेषणीय, गतिशील और जनप्रिय होती थी कैसे उच्चवर्ण हिन्दू समाज और सरकारी ठस्सपन के चलते इतनी औपचारिक और बनावटी हो गई कि तकरीबन स्पन्दनहीन दिखाई पड़ती है! विशाल हिंदीभाषी समुदाय की सृजनात्मक कल्पनाओं की वाहक बनने के बजाय वह संकीर्णताओं से क्यों घिर गई!....और स्वयं हिंदी वालों ने अपनी कूपमंडूकता से उसमें क्या सहयोग किया है!'[9] हर भाषा दूसरी भाषाओं से शब्द ग्रहण करती है, लेकिन अपनी प्रकृति के अनुसार जबर्दस्ती शब्दों का ठूंसना न केवल उसकी स्वभाविकता को खत्म कर देता है बल्कि भाषा के सहज व सरल प्रवाह में बाधक भी बनता है।'रोजमर्रा के प्रयोगों की जगह विज्ञान, सरकारी शब्दावली और साहित्य में जबर्दस्ती संस्कृत के अप्रचलित शब्दों से निर्मित भाषा ने हिंदी को कितना नुकसान पहुँचाया है, वह किसी से छिपा नहीं है।'[10]

अंग्रेजी व उर्दू के जो शब्द सामान्य जन में भी रच-बस चुके हैं, उनका प्रयोग ज्यों का त्यों करने में कोई बुराई नहीं है। हम दैनंदिनी में बहुत सारे ऐसे ही शब्दों का प्रयोग करते हैं। कारोना महामारी के दौरान भी ऐसे बहुत सारे षब्द हिंदी में आए हैं, जिन्हें हिंदी ने ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया और आज धड़ल्ले से उनका प्रयोग आम फहम शब्दों की तरह लोकमानस में किया जा रहा है। सैनीटाइजर, क्वारंटीन, आइसोलेशन, वैक्सीनेशन, डेल्टा या डेल्टा प्लस, ऑमीक्रोन, ऑनलाइन क्नासेस, गूगल क्लासरूम जैसे ढेरों शब्द इसका उदाहरण है, जो आज अनपढ़ से पढ़े लिखे लोगों तक की रोजमर्रा शब्दावली का हिस्सा बन चुके हैं। शैक्षिक, सामाजिक व चिकित्सा विभिन्न क्षेत्रों की शब्दावली में ये इजाफा देखा जा सकता है। कार्यालयी हिंदी में भी सामान्य जन के लिए जारी विज्ञप्ति आदि में व्यावहारिक शब्दावली का प्रयोग किया जाए तभी जन और तंत्र के मध्य सही अर्थों में संप्रेषण स्थापित हो पाएगा। साथ ही एक सफल और मजबूत लोकतंत्र की यह पहली जरुरत भी है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. राजभाषा भारती, अप्रैल-जून 2018, 91-92, विश्वभाषा की ओर हिंदी के बढ़ते कदम, राकेश शर्मा 'निशीथ'
2. प्रयोजनमूलक हिंदी, 200, माधव सोनटक्के
3. मधुमती, जून 2022, 30, रेत-समाधि: हंगामा है यूँ बरपा, हरीश त्रिवेदी
4. बाजारवाद में हिंदी, 1, प्रभाकर क्षोत्रिय
5. प्रयोजनमूलक हिंदी, 200, माधव सोनटक्के
6. आलोचना, जनवरी-मार्च 2014, 107, राममनोहर लोहिया का भाषा चिन्तन, चित्तरंजन कुमार
7. दैनिक भास्कर, राष्ट्रीय संस्करण नई दिल्ली, 25 अगस्त 2014
8. उसने गांधी को क्यों मारा, 243, अशोक कुमार पांडेय
9. हिंदी राष्ट्रवाद, आलोक राय, अन्तिम आवरण पृष्ठ (बैक कवर), पहला संस्करण: 2022
10. उसने गांधी को क्यों मारा, 244, अषोक कुमार पांडेय

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी का योगदान

डॉ. अमित कुमार शर्मा

हिंदी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल
केंद्रीय विश्वविद्यालय
श्रीनगर (उत्तराखंड) मो: 9653302787
ईमेल- amitsirmu@gmail.com

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी के योगदान पर विचार करते हुए यह आवश्यक है कि उसके उदय, विकास तथा उसकी भूमिका की ठोस स्थितियों पर ध्यान दिया जाए। किसी भी देश को एक सूत्र में बाँधने के लिए एक भाषा की आवश्यकता होती है। भारत एक विभिन्न भाषाओं वाला एक समृद्ध राष्ट्र है। यहाँ की विभिन्न भाषाएँ, अलग-अलग सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिताओं के प्रकटीकरण का माध्यम है। स्वतंत्रता आंदोलन में से ही भाषायी विविधता के बावजूद हिंदी का महत्वपूर्ण स्थान है।

यद्यपि भारत के स्वतंत्र होने के बाद हमारे संविधान निर्माताओं ने 14 सितंबर 1950 को हिंदी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किया, परंतु प्राचीन काल में सिद्ध, नाथ तथा जैनों के साहित्य में हिंदी का प्रारंभिक स्वरूप दिखाई पड़ता है, जहाँ शंकराचार्य से होते हुए मध्यकाल में रामानंद की परंपरा में विस्तार मिलता है। यह एक जागरण का काल था, जिसमें दक्षिण से उत्तर तक सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों का नेतृत्व करने में हिंदी जन सामान्य की भाषा बनती गई। इस संदर्भ में दीनदयाल गुप्ता का कथन है कि- 'तीर्थ यात्रियों द्वारा सदियों से भारत के प्रत्येक कोने में हिंदी का प्रयोग हिंदी भाषा-भाषियों द्वारा किया जाता था। दक्षिण के आचार्यों ने आदिकाल से ही अनुभव किया था कि इस भाषा के माध्यम से वे सारे देश के जन-जन तक अपना संदेश पहुँचा सकते हैं। वल्लभाचार्य, विट्ठलदास, रामानुज, रामानंद इसकी राष्ट्रीय महत्ता को समझ कर इसे अपने व्यवहार में लाते रहे।'

एक व्यापारी बनकर आए अंग्रेज यहाँ की राजनीतिक उठापटक एवं अव्यवस्था का लाभ उठाकर शासन की गद्दी पर बैठ गए। इन्होंने न सिर्फ भारत की औद्योगिक विकास एवं व्यापार को रोका, बल्कि शिक्षा की चली आ रही भारतीय परंपरा को भी अपनी रणनीति का हिस्सा बनाकर उसमें अंग्रेजी व्यवस्था लागू कर दी। ईस्ट इंडिया कंपनी की भारत में स्थापना के बाद धीरे-धीरे अंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षा एवं शासन कार्य किया जाने लगा। इस कारण देश के सामने एक भाषा यानी राष्ट्रभाषा का प्रश्न खड़ा

होता गया। इस प्रकार शासन व्यवस्था में जागरण की चेतना फैलाने में शिक्षा के क्षेत्र में हिंदी की भूमिका सबसे बुनियादी थी। इस युग में ब्रह्म समाज, आर्य समाज की भूमिका महत्वपूर्ण रही। आर्य समाज ने स्कूल कॉलेजों में संस्कृत के अलावा हिंदी साहित्य के अध्ययन को महत्व दिया।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी का दूरगामी प्रभाव पड़ा। प्रथम स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी ने देश को जोड़ने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। यही कारण है कि हिंदी क्रांतिकारियों और राष्ट्रभक्तों के हृदय की उद्‌गार भाषा बन गई। आजादी की लड़ाई में किसान, मजदूर के साथ-साथ साहित्यकारों ने भी मोर्चा संभाल लिया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जिस आधुनिक युग का आरंभ किया था, उसका सीधा संबंध स्वाधीनता आंदोलन से ही था। भारतेंदु और भारतेंदु मंडल के साहित्यकारों ने अपनी पत्रकारिता, गद्य एवं पद्य के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति की। साथ ही उन्होंने हिंदी के माध्यम से स्वतंत्रता सेनानियों की प्रशंसा के साथ स्वर्णिम अतीत के माध्यम से वर्तमान में सोए हुए भारतीयों की आस्था को जगाने का प्रयास किया। भारतेंदु जो कि पहले ब्रज भाषा में कविता लिखते थे, हिंदी की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए हिंदी में काव्य रचना करने लगे और अंग्रेजों के शोषण नीति के बारे में लिखते हुए कहते हैं कि -

'भीतर-भीतर सब रस चूसै, हंसी-हंसी के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातिन में अति तेज, क्यों सखि साजन नहीं सखि अंग्रेज।।'

स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी की महत्वपूर्ण भूमिका थी। संघर्ष और रचनात्मकता का ऐसा दौर पहले कभी नहीं आया। सन 1850 से 1947 के मध्य हिंदी तीन मोर्चों पर असहयोग आंदोलन में अपनी भूमिका निभा रही थी। पहला स्वाधीनता आंदोलन, दूसरा सामाजिक-धार्मिक सुधार और तीसरा साहित्य का परिष्कार। 8 अप्रैल, 1857 को मंगल पांडे को फाँसी दी गई, जिसकी तीव्र प्रतिक्रिया पूरे देश में दिखाई पड़ती है। लगभग एक दशक बाद भारतेंदु हिंदी में कवि वचन सुधा के माध्यम से **'सत्य निज भार गहे'** की उद्‌घोषणा करते हैं।

स्वाधीनता आंदोलन की बढ़ती हुई ज्वाला में राष्ट्रभाषा की पुकार भी उठी। अंग्रेजी शासन व्यवस्था के विरोध के साथ-साथ अंग्रेजी भाषा का भी विरोध बढ़ता गया। हिंदी विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच संपर्क सूत्र बन गई। हिंदी राष्ट्रभाषा सम्मेलन का आयोजन होने लगा। हिंदी के माध्यम से ही पूरे देश में स्वाधीनता की आकांक्षा फैलने लगी। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में 'हिंदी' साहित्य के केंद्र में आ गई। महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, श्रीधर पाठक, माखनलाल चतुर्वेदी आदि साहित्यकारों ने हिंदी के माध्यम से स्वाधीनता संग्राम में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन कवियों ने भारतीय जनमानस में राष्ट्रप्रेम की भावना जगाने तथा उन्हें स्वाधीनता आंदोलन का हिस्सा बनाने के लिए प्रेरित किया।

'भारत-भारती' तथा 'पुष्प की अभिलाषा' कविता ने जनमानस में स्वतंत्रता सेनानियों के प्रति सम्मान और त्याग का भाव जगा दिया। सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'झांसी की रानी' कविता के माध्यम से स्वाधीनता आंदोलन को धार दी। मैथिलीशरण गुप्त भारतवासियों को स्वर्णिम अतीत के माध्यम से वर्तमान को सुदृढ़ करने की बात करते हुए कहते हैं-

'हम कौन थे, क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी,
आओ, विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी।।'

इसी तरह सुभद्रा कुमारी चौहान 'झांसी की रानी' कविता के माध्यम से अंग्रेजों को ललकारते हुए कहती हैं-

'बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।।'

19वीं सदी में हिंदी का विशेष उपयोग होने लगा था। फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ-साथ नागरी प्रचारिणी सभा (काशी), हिंदी साहित्य सम्मेलन (प्रयाग), दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा (मद्रास),

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति (वर्धा), गुजरात विद्यापीठ (अहमदाबाद), हिंदुस्तानी प्रचार सभा (वर्धा), हिंदी विद्यापीठ (मुंबई), महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा (पुणे), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद (पटना), मैसूर हिंदी प्रचार परिषद (बैंगलोर), आदि संस्थाओं का संबंध विशेष उल्लेखनीय है। सन 1900 में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ हिंदी का परिष्कार प्रारंभ हो गया। हिंदी के संबंध में महात्मा गाँधी का विचार स्पष्ट था कि हिंदी को ही राष्ट्रभाषा बनने का गौरव मिलना चाहिए। सन 1918 में गाँधी जी ने इंदौर में आठवीं हिंदी सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने पर बल दिया था । उनका कहना था कि–**'अगर हिंदुस्तान को हमें सचमुच एक राष्ट्र बनाना है तो चाहे कोई माने या न माने, रष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिंदी को प्राप्त है, वह किसी दूसरी भाषा को कभी नहीं मिल सकता।'**

भारतवर्ष के स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। बाल गंगाधर तिलक मराठी, गाँधी जी गुजराती, सी. राजगोपालाचारी मद्रासी, भगत सिंह पंजाबी, राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद विद्या सागर व देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय, केशवचंद्र सेन बंगाली थे। ऐसे ही देश के अलग–अलग प्रांतों के क्रांतिकारियों ने स्वतंत्रता आंदोलन में खुद को खपा दिया । सभी क्रांतिकारियों ने स्वाधीनता आंदोलन का संदेश देश भर में जन–जन तक पहुँचाने के लिए हिंदी को चुना। राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्र के प्रति सम्मान का भाव निर्माण करने की दिशा में हिंदी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रीय आंदोलन में हमारे राजनेताओं की भूमिका हमेशा से महत्वपूर्ण रही। यह देखकर सुखद आश्चर्य होता है कि हिंदी के विकास के लिए उस समय के मनीषियों, नेताओं, बुद्धिजीवियों ने बहुत ही महत्वपूर्ण काम किया। इनमें से अधिकतर हिंदीतर भाषी प्रदेश के थे।

गाँधी जी के भारत आगमन से पूर्व राष्ट्रीय आंदोलन में बाल गंगाधर तिलक का विशेष योगदान था। उन्होंने 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, जिसे मैं प्राप्त करके रहूँगा' का नारा दिया था। बाल गंगाधर तिलक का मानना था कि स्वाधीनता संग्राम में भाषा का विशेष महत्व है और हिंदी ही एकमात्र भाषा है, जो राष्ट्रभाषा हो सकती है। हिंदी का समर्थन करते हुए नागरी प्रचारिणी पत्रिका में उन्होंने लिखा था कि **'आंदोलन उत्तर भारत में केवल एक सर्वमान्य लिपि के प्रचार के लिए नहीं है, यह तो उस आंदोलन का एक अंग है, जिसे मैं राष्ट्रीय आंदोलन कहूँगा और जिसका उद्देश्य समस्त भारतवर्ष के लिए एक राष्ट्रीय भाषा की स्थापना करना है, क्योंकि सबके लिए समान भाषा राष्ट्रीयता का महत्वपूर्ण अंग है। यदि आप किसी राष्ट्र के लोगों को एक दूसरे के निकट लाना चाहते हैं तो सबके लिए समान भाषा से बढ़कर सशक्त अन्य कोई बल नहीं है।'**

सन 1915 में गाँधी के भारत आगमन के उपरांत राष्ट्रीय आंदोलन की गति तेज होने लगी। अब गाँधी युग का सूत्रपात हुआ तो धीरे–धीरे हिंदी का प्रचार प्रसार बढ़ने लगा। गाँधीजी अधिकतर अपनी सभाओं में प्रवचन हिंदी में ही दिया करते थे। वे हिंदी के महत्व के बारे में कहते हैं – मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों ना हों, मैं उससे उसी तरह चिपटा रहूँगा जिस तरह अपनी माँ की छाती से। वही मुझे जीवनदायी दूध दे सकती है। मैं अंग्रेजी को भी उसकी जगह प्यार करता हूँ, लेकिन अगर अंग्रेजी उस जगह को हड़पना चाहती है, जिसकी वह हकदार नहीं है तो मैं उससे सख्त नफरत करूँगा। यह बात मानी हुई है कि अंग्रेजी आज सारी दुनिया की भाषा बन गई है। इसलिए मैं उसे दूसरी जबान के तौर पर जगह दूँगा, लेकिन विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में, स्कूल में नहीं। वह कुछ लोगों के सीखने की चीज हो सकती है, लाखों–करोड़ों की नहीं। आज अब हमारे पास प्राइमरी शिक्षा को भी मुल्क में लाजिमी बनाने के जरिए नहीं हैं तो हम अंग्रेजी सिखाने के जरिए कहाँ से जुटा सकते हैं? रूस ने बिना अंग्रेजी के विज्ञान में इतनी उन्नत की है। आज अपनी मानसिक गुलामी की वजह से ही हम यह मानने लगे हैं कि अंग्रेजी के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। मैं इस चीज को नहीं मानता।'

गाँधीजी के सामने राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के महत्वपूर्ण प्रश्नों में भाषा एक महत्वपूर्ण प्रश्न था। आरंभ

से ही हिंदी को स्वतंत्रता संग्राम की भाषा बनाने के लिए उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक यात्राएँ कीं। उनका अनुभव था कि–**'पराधीनता चाहे राजनीतिक क्षेत्र की हो अथवा भाषाई क्षेत्र की- दोनों ही एक-दूसरे की पूरक और पीढ़ी-दर-पीढ़ी सदा परमुखापेक्षी बनाए रखने वाली है।'**

गाँधी जी के प्रयासों से विभिन्न राज्यों में हिंदी प्रचार-प्रसार करने के लिए नेताओं को प्रेरित किया गया। साथ ही हिंदीतर राज्यों में लोगों की अलग-अलग टोली बनाकर भेजा गया। खुद गाँधी जी अपने बेटे श्री देवदास गाँधी को हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए दक्षिण भारत में भेजा था। यही कारण है कि विभिन्न राज्यों में हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए गए लोगों ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। इस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेते हुए राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित हुए। गाँधी जी के प्रयास से ही तमिलनाडु में हिंदी के प्रति लोगों का जबर्दस्त उत्साह प्रवाहित हुआ। इसी तरह पंजाब में लाला लाजपत राय ने भी 'पंजाब केसरी' पत्रिका के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार किया और उनके ही प्रयास से पंजाब के शिक्षण संस्थानों में हिंदी को स्थान मिला।

सन 1917 का गाँधी जी के प्रथम चंपारण आंदोलन से लेकर 1919 में जलियाँवाला बाग तथा 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन तक की अवधि में देश का मध्यवर्ग राजनीतिक रूप से अधिक जागृत हो चुका था। यद्यपि उसकी चेतना में गुलामी की हीन भावना भी दिखाई पड़ रही थी। मध्यवर्ग की इसी गुलामी की हीन भावना को दूर करने में सबसे बड़ा माध्यम हिंदी बनकर उभरी। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, रामधारी सिंह दिनकर, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि ने अपनी कविताओं के माध्यम से स्वाधीनता आंदोलन के प्रति गौरव का भाव जगाया। भारत के वीर सैनिकों के अंदर आजादी का भाव जगाने व जोश भरने वाली हिंदी की अनूठी कृति 'झांसी की रानी' की कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं-

'सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में फिर से आई, नई जवानी थी
गुमी हुई आजादी की, कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।'

स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में हिंदी के प्रचार-प्रसार करने वालों में पंडित मदन मोहन मालवीय का भी बड़ा योगदान है। पंडित मदन मोहन मालवीय ना सिर्फ हिंदी के प्रचार-प्रसार में अग्रणी रहे, बल्कि हिंदी के स्वरूप निर्धारण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

एक तरफ जहाँ हमारे राजनेता राष्ट्रीय आंदोलन में हिंदी के महत्व को लेकर उसके प्रचार-प्रसार एवं उसकी व्यापकता को सुदृढ़ बना रहे थे तो वही हिंदी साहित्य के क्षेत्र में साहित्यकारों ने भी हिंदी के माध्यम से स्वाधीनता संग्राम में अपनी लेखनी द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1920 से 1936 के बीच राष्ट्रीय आंदोलन का महत्वपूर्ण समय है। इसी बीच हिंदी साहित्य में प्रसाद, निराला, प्रेमचंद, महादेवी वर्मा के साथ-साथ दिनकर, नवीन जैसे साहित्यकारों ने राष्ट्रीयता एवं देश प्रेम की ऐसी गंगा बहाई, जिसके तीव्र वेग में अंग्रेजी हुकूमत हिलने लगी। उनके गीतों और कविताओं ने नौजवानों के अंतर्मन को अपनी मातृभूमि के प्रति प्यार को और गहरा कर दिया। पुरुषों के साथ साथ स्त्रियां भी आजादी के आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने लगी। जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखित नाटक 'चंद्रगुप्त' की स्त्री पात्र 'अलका' समवेत स्वर में गाती है-

हिमाद्री तुंग शृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा सम उज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है- बढ़े चलो बढ़े चलो।।'

राष्ट्रीय आंदोलन से निराला का प्रत्यक्ष संबंध रहा है। हिंदी साहित्य इतिहास में तुलसीदास के बाद आधुनिक काल में महाकवि निराला ही एक ऐसे कवि के रूप में हमारे सामने दिखाई पड़ते हैं, जिन्होंने भारतीय मनीषा

को ठीक-ठीक समझ कर अपनी कविता को राष्ट्रीय आंदोलन के अनुरूप ढाला। निराला ने अपनी कविता के माध्यम से राष्ट्रीय आंदोलन में अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ जोरदार हमला बोला। जागरण गीत गाते हुए 'जागो फिर एक बार' कविता के माध्यम से निराला सोए हुए भारतीयों को झकझोरते हैं। वे कहते हैं-

'सवा-सवा लाख पर, एक को चढ़ाऊंगा,
गोविंद सिंह निज, नाम जब कहाऊंगा।
किसने सुनाया यह, वीर-जन मोहन अति,
दुर्जय संग्राम-राग, फाग का खेला राण,
बारहों महीनों में, शेरों की मांद में,
आया है आज स्यार-
जागो फिर एक बार!'

महाकवि निराला का समय भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का समय है। एक तरफ गाँधी, पटेल, सुभाष बाबू, आजाद, भगत सिंह जैसे क्रांतिकारी देश को आजाद कराने के लिए संघर्ष कर रहे थे, ठीक उसी तरह साहित्य और भाषा के स्तर पर निराला संघर्ष की लड़ाई लड़ रहे थे।

कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद की पहली रचना 'सोजे वतन' 1903 में प्रकाशित हुई थी, जिसे अंग्रेजों ने जब्त कर लिया था। राष्ट्रीय आंदोलन में अपनी भागीदारी निभाने एवं सोते हुए भारतीय जनमानस में ऊर्जा भरने के लिए उन्होंने अपनी रचनाओं में अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ आंदोलन खड़ा किया। प्रेमचंद का समय राष्ट्रीय आंदोलन का समय है। इसकी झलक 1932 में प्रकाशित उपन्यास 'कर्मभूमि' में भारतीय स्वाधीनता संग्राम की अभिव्यक्ति के रूप में दिखाई पड़ती है। कर्मभूमि का एक पात्र प्रोफेसर शांतिकुमार कहता है 'दया और धर्म की बहुत दिनों परीक्षा हुई और यह दोनों हल्के पड़े, अब तो न्याय परीक्षा का युग है।'

इस प्रकार देखा जाए तो राष्ट्रीय आंदोलन में हिंदी राष्ट्रीय एकता की महत्वपूर्ण कड़ी है, जिसने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सांस्कृतिक-सामाजिक जीवन मूल्यों को संगठित किया। यही कारण है कि स्वतंत्रता के बाद हिंदी को राजभाषा के रूप में दर्जा दिया गया। ❑

संदर्भ :

1. भारतेंदु समग्र-संपादक हेमंत शर्मा ,हिंदी प्रचारक पब्लिकेशन प्राइवेट लिमिटेड, वाराणसी, संस्करण 2009, पृष्ठ 459.
2. भारत-भारती-मैथिलीशरण गुप्त, लोक भारती प्रकाशन, संस्करण 2021, पृष्ठ.14.
3. काव्य कुंज-संपादन हिंदी अध्ययन मंडल, मुंबई विश्वविद्यालय, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2017, पृष्ठ. 50.
4. काव्य कुंज-संपादन हिंदी अध्ययन मंडल, मुंबई विश्वविद्यालय, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2017, पृष्ठ. 50.
5. चंद्रगुप्त-जयशंकर प्रसाद, लोक भारती प्रकाशन, संस्करण 2016, पृष्ठ 137.
6. अपरा-सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2006, पृष्ठ 16.
7. प्रेमचंद रचनावली, जनवाणी प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, भाग 5, पृष्ठ 277.

सहायक ग्रंथ :

1. गौतम मीणा - सं.- स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी,राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली 2007, पृष्ठ 11.
2. वीर भारत तलवार - रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, संस्करण 2006, पृष्ठ 23.
3. मेरे सपनों का भारत - गांधीजी, नवजीवन ट्रस्ट, संस्करण 1960, पृष्ठ संख्या 221.
4. नागरिक प्रचारिणी पत्रिका, काशी
5. मेरे सपनों का भारत - गांधीजी, नवजीवन ट्रस्ट, संस्करण 1960, पृष्ठ. 221)
6. मेरे सपनों का भारत - गांधीजी, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद, संस्करण 1960, पृष्ठ. 223.

समाचार पत्रों एवं अन्य संचार माध्यमों में हिंदी की स्थिति

डॉ. कोंखाम फूल्लोना देवी

एसिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
डी.एम. कॉलेज ऑफ आर्स्ट, इंफाल
डी.एम.यू. इंफाल, मणिपुर
आवास
कोंगपाल खाईदेम लेकाई
पोरोमपाट डी.सी. रोड
इंफाल ईस्ट - 795005
ई-मेल : kphullona123@gmail.com

हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है। संवैधानिक तौर पर इसे भारत की प्रथम राजभाषा के रूप में स्वीकार किया गया है। हिंदी पूरे भारत में सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है।

हिंदी भाषा को देश की राष्ट्रभाषा या राजभाषा बनाने की माँग सबसे पहले अहिंदीभाषी नेताओं द्वारा की गई थी। उन नेताओं में बंगाल के केशवचंद्र सेन, गुजरात के स्वामी दयानंद सरस्वती, महात्मा गाँधी आदि प्रमुख हैं। महात्मा गाँधी ने राष्ट्रवाद की चेतना को जागृत करने का प्रयास किया। उन्होंने अनुभव किया कि संपूर्ण भारत में हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो अपने विशाल हिंदी क्षेत्र के बाहर भी पर्याप्त मात्रा में बोली और समझी जाती है। इस विचार का समर्थन मराठी भाषी विनोबा भावे और काका कालेलकर जैसे विद्वानों ने भी किया।

इन नेताओं के प्रयास के फलस्वरूप ही हिंदी भारत की राजभाषा के दर्जा तक पहुँच पाई है। भारत के अतिरिक्त अन्य देशों जैसे फिजी, मॉरीशस, बांग्लादेश तथा नेपाल में भी हिंदी बोलते हैं। साथ ही उन देशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार भी हुआ है।

हिंदी का प्रचार-प्रसार तथा हिंदी भाषा को आगे बढ़ाने में समाचार पत्र एवं अन्य संचार माध्यमों का बड़ा योगदान दिया है। जैसे - रेडियो, टेलीविजन, इंटरनेट, हिंदी फिल्म, साइबर मीडिया, मोबाइल आदि ने हिंदी भाषा को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

आज के युग में हिंदी के इन संचार माध्यमों द्वारा ज्ञानार्जन करने की अनेक सुविधाएँ प्राप्त कर सकते हैं । हिंदी से संबद्ध इन संचार माध्यमों से ज्ञान की वृद्धि होने का अवसर प्रदान किया जाता है। आधुनिक युग की शुरुआत से हिंदी समाचार पत्र या पत्र-पत्रिका के माध्यम से भारत के सांस्कृतिक, सामाजिक, एवं राजनीतिक चेतना का विकास करने में बड़ा योगदान रहा है।

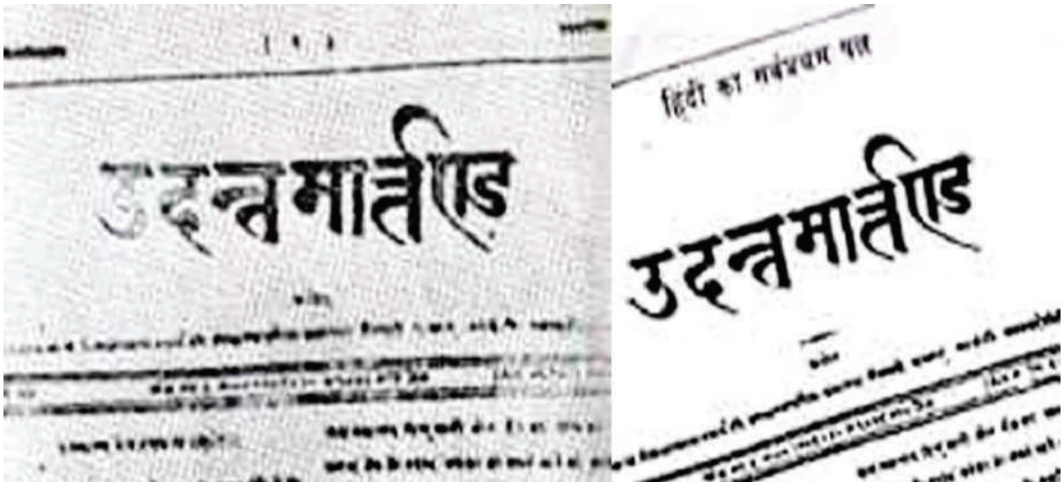

हिंदी के अधिकांश समाचार पत्रों का उदय सर्वप्रथम बंगाल से ही हुआ था । हिंदी का पहला समाचार पत्र 'उदंत मार्तण्ड' भी मई, 1826 को बंगाल से निकला। इस पत्रिका के संपादक पंडित जुगल किशोर थे। यह एक साप्तहिक पत्र के रूप में निकला था। इस पत्र की भाषा पछांही हिंदी थी, जिसे तत्कालीन संपादकों ने मध्यदेशीय हिंदी भाषा कहा है। यह समाचार पत्र 1827 में बंद हो गया था। उन दिनों सरकार की सहायता के बिना किसी भी पत्र का चलन नहीं हो सकता था। इसके अतिरिक्त कलकत्ता में प्रकाशित होने वाले प्रमुख साप्तहिक पत्र-पत्रिकाओं में बंगदूत 1829, प्रजामित्र 1824, मार्तण्ड 1846 उल्लेखनीय हैं। हिंदी के अन्य समाचार पत्रों में बनारस अखबार 1845, मालवा अखबार 1849, सुधाकर 1850 आदि भी बहुत चर्चित हैं। इस प्रकार तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य भारतीय आम जनता में राष्ट्रवादी चेतना जागृत करना था।

हिंदी साहित्य का इतिहास अध्ययन करने से हमें यह ज्ञात होता है कि आधुनिक युग के प्रथम चरण में भारतेंदु ने हिंदी पत्र-पत्रिका के माध्यम से हिंदी भाषा विकास के लिए बड़ा योगदान दिया ।

उन्होंने 'कवि वचन सुधा' 1867, हरिचन्द मैगजीन, आगे 'हरिचन्द चन्द्रिका' के नाम से प्रसिद्ध है, निकाले। इन पत्रिकाओं का संपादन करके हिंदी साहित्य एवं भाषा की सेवा की। उन्होंने 'बालाबोधिनी' नामक पत्रिका का संपादन कर नारी शिक्षा का अधिकार दिलवाने का प्रयास किया। भारतेंदु युग की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में हिंदी प्रदीप 1877 भी एक है, जिसका संपादन बाल कृष्ण भट्ट ने किया। इस पत्रिका के माध्यम से हिंदी भाषा और लिपि को विकास करने का प्रयास किया गया। तत्कालीन बहुत चर्चित पत्रिकाओं में 'भारत मित्र' 1878 भी एक है। बालमुकुंद गुप्त के संपादन भारतीय सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई। सन 1879 में प्रकाशित 'सारसुधानिधि' ने भी स्वतंत्रता आंदोलन के लिए आम भारतीय जनता को प्रेरित किया। साथ ही अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ विद्रोह भावना जागृत की। इस पत्रिका के माध्यम से जनता को राजनीतिक विषयों पर अधिक जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिला। भारतेंदुयुगीन अंतिम चरण की मुख्य पत्रिकाओं में 'ब्राह्मण' 1886, 'आर्यावर्त' 1887, 'हिंदी बंगवासी' 1890, 'नागरी नीरद' 1891, 'सरस्वती' 1900 आदि चर्चित हैं ।

इन पत्र-पत्रिकाओं में तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया। साथ ही अंग्रेजी सत्ता

की क्रूर नीतियों को उजागर किया गया, जिसने आम जनता में राष्ट्रवादी चेतना जागृत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन पत्रिकाओं के माध्यम से तत्कालीन लेखकों ने खड़ी बोली हिंदी को साहित्यिक भाषा बनाने की कोशिश की।

जब महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका का संपादन किया तो उन्होंने खड़ी बोली हिंदी को व्याकरणिक ढंग से सुधार कर परिमार्जित किया। इस युग में भी अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। जैसे - हितवाणी 1904, अभ्युदय 1907, मर्यादा 1909 आदि राजनीतिक विषय से संबंधी पत्रिकाएँ हैं। साहित्यिक पत्रिकाओं में सरस्वती, 1900, सुदर्शन 1904, इन्दु, 1909 आदि ले सकते हैं ।

पत्र-पत्रिका के इतिहास में भारतेंदु युग को विवेच्य युग कहा जाता है। द्विवेदी युग को आलोच्य युग और छायावाद को समीक्ष्य युग। समीक्ष्य युग में भी विविध प्रकार की प्रत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। उनमें मर्यादा, चांद, माधुरी, सुधा, विशाल भारत, हंस आदि प्रमुख हैं। तत्कालीन साहित्यकारों और लेखकों ने भी हिंदी की सेवा करते हुए हिंदी भाषा को अनेक क्षेत्रों में विस्तार करने का प्रयास किया था।

हिंदी समाचार पत्रों एवं उनकी पाठकों की संख्या देश के अन्य भाषा-भाषी समाचार पत्रों से सर्वाधिक है। आज के चर्चित समाचार पत्रों में - हिंदुस्तान, मिशन जयहिंद, चौथी दुनिया, नवभारत टाइम्स, आज प्रभात खबर, अमर उजाला, प्रयुक्ति, जलते दीप, दैनिक जागरण आदि प्रमुख हैं।

हिंदी के उन समाचार पत्रों द्वारा हमें देश-विदेश में हो रही हर तरह की घटनाओं का नवीन ज्ञान मिलता है। नए अनुसंधान, नई खबरों की जानकारी हमें हिंदी समाचार पत्रों से ही मिलती हैं। सरकारी सूचनाओं, विज्ञापनों तथा अन्य महत्वपूर्ण जानकारी मिल जाती है। हिंदी समाचार पत्र सामाजिक समस्या, सांस्कृतिक स्थिति, परंपरा आदि विषयों की जानकारी देते हैं। वे राजनीति, उद्योग व्यापार, खेल आदि सभी विषयों के बारे में भी सूचित करता है।

हिंदी का विकास करने में समाचार पत्र के साथ अन्य संचार माध्यमों का भी बड़ा योगदान है।

हिंदी को आगे बढ़ाने में हिंदी रेडियो का भी महत्वपूर्ण दायित्व है। आज आकाशवाणी समाचार, शिक्षा, विचार, विज्ञान, सामाजिक स्थिति, संगीत, मनोरंजन, नाटक आदि सभी विषयों पर प्रसारण करके हिंदी को देश के कोने-कोने तक पहुँचाने में महात्वपूर्ण योगदान दे रहा है। हिंदी रेडियो के माध्यम से हिंदी फिल्मी गीतों को भारत के अतिरिक्त, नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश जैसे अन्य देशों में भी लोग बहुत प्रेम से सुनते हैं।

हिंदी प्रचार और प्रसार में हिंदी फिल्म ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह एक महत्वपूर्ण संचार माध्यम बन गया है, क्योंकि भारत के हर राज्य में हिंदी फिल्म का बहुत प्रचलन हुआ है। उन फिल्मों को देखकर अहिंदी भाषी हिंदी भाषा सीख लेते हैं। इन फिल्मों के माध्यम से हमें पारिवारिक समस्या, सामाजिक समस्या, स्वतंत्रता संग्राम, देश भक्ति आदि विषयों की जानकारी प्राप्त होती है।

हिंदी टेलीविजन ने राष्ट्रीय कार्यक्रम और समाचारों के प्रसारण के जरिए हिंदी को जनप्रीय बनाने में काफी योगदान दिया । हिंदी रेडियो की तरह हिंदी टेलीविजन ने भी मनोरंजन कार्यक्रमों में फिल्मों का भरपूर उपयोग किया। इस तरह हिंदी भाषा को देश के कोने-कोने तक प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। टोलिवीजन पर प्रसारित हिंदी धारावाहिकों ने दर्शाकों में अपना विशेष स्थान बना लिया है। साथ ही सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, पारिवारिक तथा धार्मिक विषयों को लेकर बनाए गए हिंदी धारावाहिक घर-घर में बड़े चाव से देखे जाते हैं। रामायण, महाभारत आदि धारावाहिकों ने हिंदी प्रसार के साथ राष्ट्रीय एकता का सूत्र भी बाँधा है। पूरे देश में हिंदी टेलीविजन के कार्यक्रमों के कारण देश के अहिंदी भाषी भी हिंदी समझ और बोल सकते हैं।

भारत में इंटरनेट सेवा 15 अगस्त, 1995 के विदेश संचार निगम लिमिटेड द्वारा शुरू की गई थी। सन 1998 में सरकार ने निजी कंपनियों को इंटरनेट सेवा क्षेत्र में आने की अनुमति दे दी। इससे देश भर में इंटरनेट की पहुँच बढ़ने लगी। हिंदी में इंटरनेट के आगमन से आम जनता को बड़ी सहजता हुई, क्योंकि इसके द्वारा हम घर के बाहर निकले बिना अपना बिल चुका सकते हैं, फिल्म देख सकते हैं, व्यापारिक लेन-देन कर सकते हैं। अब ये हमारे जीवन का एक अनिवार्य तत्व बन गया हैं। हिंदी इंटरनेट के द्वारा हम कोई भी काम आसानी से कर सकते हैं। स्कूल कॉलेज, बैंक, प्रशिक्षण केंद्र, दुकान, रेलवे स्टेशन, एयरपोर्ट आदि क्षेत्र में इंटरनेट एक आवश्यक तत्व बन गया है।

हिंदी साइबर मीडिया ने भी हिंदी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हिंदी साइबर मीडिया के माध्यम से सार्वजनिक अभिव्यक्ति को एक बड़े समुदाय तक बिना रुकावट के अपनी बात, अपना विचार, अपनी सोच आदि को करोड़ों लोगों तक पहुँचया जा सकता है।

निष्कर्ष :

हिंदी समाचार पत्र एवं अन्य संचार माध्यम भारतीय संस्कृति में व्याप्त धर्म, आध्यात्मवाद, ललित कला, ज्ञान, विज्ञान, नीति, विधि-विधान, जीवन प्रणालियाँ और समस्त क्रियाएँ आदि का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक जीवन को भी दर्शा रहे हैं।

इसलिए हिंदी के विकास में इन संचार माध्यमों द्वारा लोगों की कोशिश अनिवार्य है।

अंत में दुर्भाग्य की बात यह है कि हिंदी के विकास में इतना प्रयास करने पर भी लोग यह महसूस करते हैं कि अंग्रेजी भाषा ही सब कुछ है। इसके बिना हर भाषा अधूरी है।

साथ ही हमारे आज के नवयुवक अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शैली से अधिक प्रभावित हैं। इसलिए हमें हिंदी की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए और अधिक प्रयास करना चाहिए। हिंदी की सेवा करनी चाहिए। जितना हो सके हिंदी का प्रचार-प्रसार करना जरूरी है। तब हिंदी आगे बढ़ेगी। ❑

संदर्भ सूची :

1. डॉ. नगेन्द्र : हिंदी साहित्य का इतिहास 1994
2. डॉ. सुशीला जोशी : हिंदी पत्रकारिता विकास और विविध आयाम 2000
3. शिव कुमार दुबे : हिंदी पत्रकारिता इतिहास एवं स्वरूप 1992
4. बंशीधर लाल : भारतेंदु युगीन हिंदी पत्रकारिता 1986
5. डॉ. अर्जुन तिवारी : स्वतंत्रता आंदोलन और पत्रकारिता 1982

स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी की भूमिका

(राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के विशेष संदर्भ में)

डॉ. चंदना शर्मा

सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग
प्रागज्योतिष महाविद्यालय
गुवाहाटी-781009, असम
फोन : 7002544837
ई-मेल : pragjyotishcollege.ac.in

शोध सारांश :

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्यों में राष्ट्रीय भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को अपने आँखों से देखने वाले, उसे भोगने वालों में गुप्तजी भी प्रमुख हैं। उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति का गौरवोज्ज्वल इतिहास छलकता है। उनकी रचनाओ में विभिन्न तरह से राष्ट्रीय भावना प्रतिफलित होती है। परंतु सभी पर विचार करना हमारे इस छोटे से आलेख में संभव नहीं है। यहाँ पर 'राष्ट्रवाणी' में संग्रहित कुछ कविताओं पर ही विचार किया गया है।

कुंजी शब्द :

स्वतंत्रता संग्राम, राष्ट्रकवि, राष्ट्रप्रेम, स्वाधीनता, मातृभूमि, राष्ट्रीयता, भारतवासी, भारत-भारती, राष्ट्रीय भावना।

भूमिका :

एक भाषा की सबसे बड़ी शक्ति उसका साहित्य होता है। हिंदी भाषा को समृद्ध करने में हिंदी साहित्य का भी हाथ है। स्वाधीनता संग्राम में हिंदी साहित्यकारों ने प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सक्रिय सहभागिता की है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पढ़े-लिखे भारतीय धीरे-धीरे प्रजातंत्र की धारणा समझने लगे। धीरे-धीरे हिंदी काव्यों में, नाटकों में, उपन्यासों में और अन्य रचनाओं में भारतवर्ष की पराधीनता और उसका शोषण प्रकट होने लगा। इसमें लेखकों की हृदय की व्यथा बड़ी व्याकुलता के साथ प्रकट हुई। भारतेंदु युग में अंकुरित होने वाली राष्ट्रीयता की भावना द्विवेदी युग में पुष्पित-पल्लवित हुई। द्विवेदी युगीन हिंदी कविता में राष्ट्रीयता की भाव-धारा पूरे वेग के साथ प्रवाहित हुई। द्विवेदी युगीन कवि देशवासियों को एकता के सूत्र में लाने का प्रयत्न करते और उन्हें देश की स्वतंत्रता के लिए मर मिटने की प्रेरणा प्रदान करने लगे। इस युग के कवियों की राष्ट्रीय भावना कहीं भारत के अतीत वैभव एवं गौरव के चित्र में और कहीं मातृभूमि के प्राकृतिक सौंदर्य के उद्घाटन में अच्छी तरह व्यक्त हुई। द्विवेदी युग की राष्ट्रीय कविता अतीत से

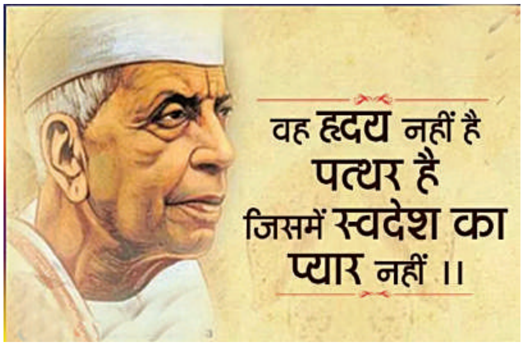

वर्तमान, कल्पना से यथार्थ, निराशा से आशा, अविश्वास से विश्वास, उपदेश से कर्म और आत्महीनता से आत्म-गौरव की ओर अग्रसर दिखाई देती है। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि इस युग के प्राय: सभी कवियों ने मातृभूमि के प्रति अपने हृदय का सच्चा स्नेह व्यक्त किया। देश की वर्तमान दुर्दशा और अतीत के सुनहरे सपनों को देखते हुए भी इस काल के कवियों का देश की भावी उन्नति पर दृढ़ विश्वास दिखाई देता है। इन कवियों में एक और विशेष बात दिखाई पड़ती है कि इनमें से अधिकांश स्वतंत्रता-संग्राम के वीर सेनानी रहे। इनमें मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामनरेश त्रिपाठी आदि का नाम लिया जा सकता है ।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त – मैथिलीशरण गुप्त का जन्म सन 1886 में उत्तर प्रदेश के चिरगांव, जिला झाँसी में हुआ था। इनके पिता सेठ राम चरण जी कविता के बड़े प्रेमी थे और 'कनकलता' नाम से छंद रचना करते थे। इनके पाँच पुत्र हुए और उनमें मैथिलीशरण और सियारामशरण को काव्य के क्षेत्र में प्रसिद्धि मिली। पहले मैथिलीशरण जी ब्रज भाषा में काव्य रचना करते थे, परंतु आचार्य द्विवेदी जी की प्रेरणा से खड़ी बोली की ओर उन्मुख हुए। उनकी कविताएँ बराबर सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित होती रहीं। जन्म-कुंडली में गुप्त जी का नाम था 'कनकेन मिथिलाधिय नंदिनी शरण' । घर में उन्हें 'मिथिलाशरण' के नाम से बुलाया जाता था और अंतत: मैथिलीशरण के नाम से विख्यात हुए। प्रारंभिक शिक्षा चिरगांव में पूरी होने के बाद गुप्त जी झाँसी के मेकडानल स्कूल में पढ़ने गए। पढ़ाई अधूरी रही। उन्होंने घर पर ही बंगला, मराठी और अंग्रेजी का अभ्यास किया। उन्होंने स्वाध्याय से प्राचीन एवं मध्य युगीन काव्य इतिहास- पुराण आदि का अध्ययन किया। उन्हें जीवन में बहुत यश और सम्मान मिला। लोग उन्हें प्यार से 'दद्दा' कहते थे । सन 1936 में साकेत महाकाव्य के लिए उन्हें 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' प्राप्त हुआ। उन्हें पद्मभूषण उपाधि से भी विभूषित किया गया। आप भारतीय संसद के भी सदस्य रहे। सन 1965 में मैथिलीशरण गुप्त का निधन हो गया ।

मैथिलीशरण गुप्त की कविताओ में प्रतिफलित राष्ट्रीय भावना : मैथिलीशरण गुप्त संपूर्ण भारत वर्ष में 'राष्ट्रकवि' के नाम से विख्यात हैं। हमारा देश अखंड है और उस अखंडता की भावना मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में प्रतिफलित होता है। उन्होंने एक राष्ट्र की भावना अपनी रचनाओं के द्वारा हमें दी है और इसी से भारतवर्ष में वे राष्ट्रकवि के नाम से विख्यात हुए। भारतीय संस्कृति के प्रति अविचल निष्ठा उनकी कविता की प्रमुख विशेषताएँ हैं। राष्ट्रीयता से उनकी समस्त रचनाएँ ओत-प्रोत होने के कारण सन 1936 में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने गुप्त जी को राष्ट्रकवि की उपाधि से विभूषित किया था । काशी में आयोजित एक भव्य समारोह में उपाधि प्रदान करते हुए महात्मा गाँधी ने कहा था कि - वह राष्ट्रकवि हैं, उसी प्रकार जिस प्रकार राष्ट्र के बनाने से मैं महात्मा गाँधी बन गया हूँ ।

राष्ट्रीयता की भावना की सफल अभिव्यक्ति देखने को प्राप्त होती है मैथिलीशरण गुप्त के 'भारत-भारती' में । प्रकाशन के समय यह रचना अत्यंत लोकप्रिय हुई। इसके पीछे का कारण था-उसमें व्याप्त राष्ट्रीय भावना। गुप्त जी की प्रथम राष्ट्रीय रचना 'भारत-भारती' सन 1912 में प्रकाशित हुई। उसके द्वारा गुप्त जी ने देशवासियों का ध्यान भारत के गौरव एवं वर्तमान की दुर्दशा की ओर आकृष्ट किया तथा पराधीनता की बेड़ियो से मुक्त होने की प्रेरणा प्रदान की और उन्हें प्रगति की ओर उन्मुख किया ।

15 अगस्त, 1947 को जब देश स्वाधीन हुआ तो राष्ट्रीय पताका की वंदना करते हुए गुप्तजी ने 'भारत का झंडा' लिखा था–

''यह पुण्य पताका फहरे । मुक्त वायु-मंडल में, अपनी मानस लहरी लहरें। (गुप्त, मैथिलीशरण; राष्ट्रवाणी; पृष्ठ -4)

सन 1921 से सन 1947 तक महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जिस मार्ग से स्वतंत्रता संग्राम गई, उन समस्त आंदोलनों की ध्वनि गुप्त जी के काव्यों में पाई जाती है। राष्ट्रीयता की इस भावधारा की गूँज मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' में मिली है। गुप्त जी ने वर्तमान की पतित अवस्था की समस्याओं पर विचार करने के लिए देशवासियों को आमंत्रित किया था–

''हम कौन थे ,क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी ?
आओ विचारे बैठ कर के ये समस्याएँ सभी।''

(गुप्त, मैथिलीशरण; भारत-भारती; राष्ट्रवाणी; पृष्ठ -3)

'भारत-भारती' में गुप्तजी ने अपने ढंग से इन समस्याओं को प्रस्तुत किया है और उनका समाधान भी दिया है। उन्होंने भारत के अतीत गौरव का गान भी अति ललक के साथ किया है। 'मातृभूमि' कविता में मातृभूमि की वंदना करते हुए कवि ने उसकी दिव्य झाँकी प्रस्तुत की है–

'नीलांबर परिधान हरित तट पर सुंदर है,
सूर्य चंद्र युग मुकुट मेखेला रत्नाकर है,
नदियाँ प्रेम प्रवाह , फूल तारे मंडन है,
बंदीजन खग-वृंद ,शेषफन सिंहासन है,
करते अभिषेक पयोदहैं , बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।

(गुप्त,मैथिलीशरण; राष्ट्रवाणी; पृष्ठ -20)

गुप्तजी ने अपनी 'भारत भारती' के माध्यम से भारत वासियों का ध्यान भारत के स्वर्णिम अतीत, वर्तमान दुर्दशा तथा उज्ज्वल भविष्य की ओर आकृष्ट किया है –

'यह पुण्यभूमि प्रसिद्ध है इसके निवासी 'आर्य' है,
विद्या कला-कौशल सबके जो प्रथम आचार्य है।
संतान उनकी आज यद्यपि हम अधोगति में पड़े,
पर चिन्ह उनकी उच्चता के आज भी कुछ है खड़े।'

(गुप्त, मैथिलीशरण ; भारत की श्रेष्ठता; राष्ट्रवाणी; पृष्ठ -2)

'भारत-भारती' में प्राचीन भारत के उज्ज्वल पक्ष का वर्णन है। वर्तमान आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का उल्लेख है और भविष्य के लिए आशा का संचार भी। मैथिलीशरण गुप्त ने अंग्रेजी राज में अकाल ने कैसी विभीषिका उत्पन्न की थी, उसका वर्णन भी किया है। अकाल पीड़ितों का वर्णन पढ़कर किसी की भी आँखें नम हो सकती हैं। 'उद्बोधन' कविता के माध्यम से सोए हुए देशवासियों को जगाने का प्रयास करते हुए कवि लिखते हैं –

'हे भाइयो! सोये बहुत, अब तो उठो, जागो अहो !
देखो जरा अपनी दशा, आलस्य को त्यागो अहो !'

(गुप्त, मैथिलीशरण; राष्ट्रवाणी; पृष्ठ -12)

आलस्य संस्कृति को त्याग कर धीरतापूर्वक वीरता से युक्त होकर देश मातृ की सेवा में अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं। देशवासियों को एक होकर एक-दूसरे के प्रति सहृदय होकर प्रेम पूर्ण भाव से रहने का आह्वान करते हैं। सभी भेदभाव को भुलाकर अंग्रेजों की तोड़ो और शासन करो की बात को समझते हुए देशवासियों को एक होने की प्रेरणा देते हैं। राष्ट्रप्रेम केवल भूमि के प्रति ही नहीं, देशवासियों के प्रति भी प्रेम को दर्शाते हैं। गुप्तजी ने लिखा है–

'समझो ना भारत भक्ति केवल भूमि के ही प्रेम को ,
चाहो सदा निज देशवासी बन्धुओं के क्षेम को।'

(गुप्त,मैथिलीशरण; उद्बोधन; राष्ट्रवाणी; पृष्ठ -14)

सन 1909 में ब्रिटिश सरकार ने हिंदू-मुसलमान का भेद कराकर पृथक निर्वाचन की व्यवस्था की थी। उसके खिलाफ गुप्ता जी ने प्रस्तुत पंक्तियों को लिखा था। उनके अनुसार विविधता में एकता ही हमारी शक्ति है । सभी धर्म के प्रति सम्मान प्रदर्शन करते हुए एकता का संदेश देते हुए वो लिखते हैं –

'भारत माता का मंदिर यह, समता का संवाद जहाँ,
राम रहीम बुद्ध ईशा का, सुलभ एक सा ध्यान यहाँ ,
भिन्न-भिन्न भव-संस्कृतियो के गुण गौरव का गान
यहाँ।' (गुप्त, मैथिलीशरण; मातृ मंदिर; राष्ट्रवाणी; पृष्ठ -99)

गुप्त जी का राष्ट्रीयता विषयक दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक

एवं उदार था। वे भारत की स्वतंत्रता के लिए हिंदू-मुस्लिम एकता को अनिवार्य मानते थे, इसीलिए उन्होंने 'कावा और कर्बला' की रचना की। विभिन्न जातियों एवं संप्रदाय के प्रति उनकी दृष्टि पर्याप्त उदार रही।

जब महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन छेड़ा तो गुप्त जी भी अपने लेखन से उन्हें पूर्ण सहयोग देने लगे । उस समय उन्होंने जो राष्ट्रीय कविताएँ लिखीं- वे 'प्रताप' तथा अन्य विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहीं। इनमें से अनेक कविताएँ कांग्रेस के स्वयंसेवकों को प्रेरणा देती थीं। उस समय सत्याग्रहियों की जो प्रभात-फेरी निकलती थी, उसमें इन कविताओं को गीत रूप में गाया जाता था -

'अस्थिर किया टोप वालों को, गांधी टोपी वालों ने
शस्त्र बिना संग्राम किया है, इन माई के लालो ने।'

(गुप्त, मैथिलीशरण; विचित्र संग्राम; राष्ट्रवाणी; पृष्ठ -71)

गुप्त जी को ब्रिटिश सरकार का कोप भाजन भी होना पड़ा था। वे सन 1941 के अप्रैल महीने में गिरफ्तार हुए। अप्रैल से नवंबर के बीच झाँसी तथा आगरा की जेलों में रहे। उस समय उन्होंने पच्चीसों छोटी-मोटी कविताएँ लिखीं, जिन्हें 'जेल में लिखी गईं कविताएँ' के शीर्षक से 'राष्ट्रवाणी' में संग्रहीत किया गया है। बच्चन सिंह के अनुसार, ''कवि पूर्वजों की दिव्य झाँकी प्रस्तुत करते हुए उनसे शिक्षा ग्रहण करने का संदेश देता है और हमें भूत, वर्तमान और भविष्य के संदर्भ में विचार करने के लिए प्रेरित करता है ।'' (सिंह, बच्चन; हिंदी साहित्य का इतिहास; पृष्ठ- 109)

अपने ही देश में हमने अनेक युवकों एवं महापुरुषों को राष्ट्रीयता की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व समर्पित करते देखा है। स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने वाले व्यक्तियों का अपने दांपत्य एवं पारिवारिक जीवन को ठुकराकर राष्ट्रीयता की आग में कूद पड़ना, यही सिद्ध करता है कि राष्ट्रीयता की भावना सभी प्रमुख भावों से ऊपर उठ जाने की क्षमता से युक्त है। राष्ट्रीयता के मूल में आत्म गौरव एवं जाति की रक्षा के उत्साह का भाव रहता है । उत्साह का सबसे प्रबल विस्फोट पराधीनता और दमन के विरुद्ध संघर्ष में मिलता है। भारत हमारा देश है, वह हमारी जन्मभूमि है, उस पर हमारा स्वत्व है। हमारी जन्मभूमि पर विदेशी आकर शासन करें, अपने घर में ही हम बंदी रहें, यह घोर लज्जा की बात है । इस श्रृंखला को तोड़ने के लिए द्विवेदी युगीन कवियों ने भरपूर प्रयास किया। राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण साहित्य का सृजन किसी देश की जागृति के लिए अत्यंत आवश्यक है । आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे कवि इस प्रकार के काव्य की रचना कर देश की जनता को नव निर्माण के लिए प्रेरणा दें। अब जबकि हमारा राष्ट्र स्वतंत्र हो गया है तो राष्ट्रीयता की भावना का मंद पड़ जाना स्वाभाविक है। यह हमारे कवियों का कर्तव्य है कि जनमानस में राष्ट्रीय भावों का स्फूरण करके उन्हें नव निर्माण की ओर अग्रसर करें। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) गुप्त, मैथिलीशरण; संपादक- चतुर्वेदी, जगदीश प्रसाद; राष्ट्रवाणी; प्रथम संस्करण; साकेत प्रकाशन, चिरगांव, झाँसी
2) सिंह, बच्चन; हिंदी साहित्य का इतिहास; प्रथम संस्करण; लोकभारती प्रकाशन; इलाहाबाद -1
3) 'मानव', विश्वम्भर; शर्मा, डॉ. रामकिशोर; आधुनिक कवि; लोकभारती प्रकाशन; इलाहाबाद -1

स्वतंत्रता संग्राम और प्रेमचंद का साहित्य

डॉ. नंदिता दत्त

सहायक प्राध्यापिका
हिंदी विभाग
नॉर्थ लखीमपुर कॉलेज
खेलमाटी-787031, लखीमपुर, असम
मो. : 8253819725
ई-मेल : nanditadutta56@rediffmail.com

सार-संक्षेप :

प्रेमचंद हिंदी साहित्य के उन साहित्यकारों में से एक हैं, जिन्होंने अपने साहित्य के विविध पक्षों के माध्यम से देश के स्वतंत्रता संग्राम को उभारा है। आपके उपन्यास एवं निबंधों में बखूबी राष्ट्रीय चेतना का चित्रण परिलक्षित होता है । आपके पात्र स्वतंत्रता संग्राम के सक्रिय हिस्सेदार होने के साथ-साथ देश के लिए कुर्बान हो जाते हैं। पुरुष हो या नारी; प्रत्येक पात्र को प्रेमचंद ने समान रूप से स्वतंत्रता संग्राम में शामिल करवाया था। नारी को भोग-विलास की दृष्टि से ऊपर उठाकर त्याग और बलिदान की मूर्ति के रूप में आपने चित्रित किया है। अपने निबंधों के माध्यम से भी आपने भारतीय जनता में एकता और राष्ट्रीय भावना का संचार किया है। बहरहाल, यह कहना अत्युक्ति न होगी कि भारत के स्वतंत्रता-संग्राम में आपने कलम से लड़ाई लड़ी थी और सफल सिद्ध हुए थे ।

बीज शब्द : स्वतंत्रता, संग्राम, प्रेमचंद, साहित्य ।

प्रस्तावना :

प्रेमचंद उन उपन्यासकारों में से हैं, जिनके साहित्य में तत्कालीन सामाजिक स्थिति के साथ-साथ स्वतंत्रता आंदोलन का भी बखूबी चित्रण हुआ है। आपका नायक किसी न किसी रूप में तत्कालीन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा बनता हुआ नजर आता है। सबसे पहले अगर उपन्यासों की तरफ देखें तो पाएँगे कि कर्मभूमि, गोदान, सेवासदन इन तीनों उपन्यासों में मूल रूप से तत्कालीन स्वतंत्रता आंदोलन का प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों प्रभाव स्पष्ट है। यहाँ कर्मभूमि उपन्यास को ही केंद्र में रखा जाएगा। उपन्यासकार प्रेमचंद ने जिस तरह पाठकों के दिल पर राज किया था, उसी तरह निबंधकार प्रेमचंद ने भी लोगों का दिल जीता था। अपने निबंधों के माध्यम से आपने सामाजिक चेतना व देशप्रेम को पाठकों के मन में जगाने का प्रयास किया था। आपसी एकता, भाषिक एकता तथा राष्ट्रीय चेतना आदि आपके निबंधों का मूल विषय रहे हैं ।

अध्ययन का उद्देश्य :

प्रस्तुत शोधालेख का प्रमुख उद्देश्य कुछ इस प्रकार हैं :-

क) भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में प्रेमचंद के साहित्यिक योगदान पर प्रकाश डालना ।

ख) प्रेमचंद के साहित्य में निहित राष्ट्रीय भावना व देशप्रेम पर प्रकाश डालना ।

अध्ययन की सीमा :

प्रस्तुत शोधालेख की सीमा प्रेमचंद द्वारा लिखित उपन्यास 'कर्मभूमि' और उनके चुनिंदा निबंध-संग्रह 'साहित्य का उद्देश्य' तक ही सीमित है ।

अध्ययन की पद्धति :

प्रस्तुत शोधालेख संपूर्ण रूप से तथ्यात्मक है। इसे संपूर्ण करने हेतु मूलतः निम्नलिखित पद्धतियों का सहारा लिया गया है :-

क) विश्लेषणात्मक

ख) आलोचनात्मक

मूल विषय :

प्रेमचंद सृष्ट कर्मभूमि (1932) में गाँधी जी के आदर्श व विचारधाराओं का प्रभाव परिलक्षित होता है। ''इसमें जो स्वाधीनता-संघर्ष, आंदोलन, हड़ताल, विजय और समझौता है, वे गाँधी के स्वाधीनता आंदोलन की ही प्रतिच्छाया है।''[1] कर्मभूमि एक चर्चित राजनैतिक उपन्यास है; जहाँ भिन्न पात्रों के माध्यम से तत्कालीन भारत की स्थिति के साथ-साथ स्वतंत्रता के आंदोलन को भी बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचंद के सभी पात्र महात्मा गाँधी के आदर्श से प्रभावित हैं। आपके साहित्य में अहिंसा का संदेश स्पष्ट है; यथा -''कई आदमी उत्तेजित होकर मोटर की ओर बढ़े; पर अमरकांत की डाँट सुनकर ठिठक गए-क्या करते हो ! पीछे हट जाओ। अगर मेरे इतने दिनों की सेवा और शिक्षा का यही फल है तो मैं कहूँगा कि मेरा सारा परिश्रम धूल में मिल गया। यह हमारा धर्म-युद्ध है और हमारी जीत हमारे त्याग, हमारे बलिदान, हमारे सत्य पर है।''[2]

गाँधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्री-पुरुष दोनों को शामिल होने के लिए प्रोत्साहित किया था, जिसका प्रभाव कर्मभूमि उपन्यास में स्पष्ट है। ''कर्मभूमि में वे नागरिक और ग्रामीण दोनों जीवन धाराओं में राजनैतिक चेतना फूँकना चाहते हैं। शहर की क्रांति का नेतृत्व डॉ. शांतिकुमार तथा सुखदा ने किया है। गाँवों का आंदोलन अमरकांत और आत्मानंद के द्वारा संचालित किया गया है।''[3] नैना, सुखदा, सकीना और मुन्नी का स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान नायक अमरकांत से किसी भी दृष्टि से कम न था। उन स्त्री पात्रों द्वारा किए गए त्याग और बलिदान में तत्कालीन स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्री की महत्वपूर्ण भूमिका का प्रतिफलन होता है । आगे चलकर वे मिसाल बनती हैं और दूसरों के लिए प्रेरणा का स्रोत भी... । प्रेमचंद ने स्त्री की जिस भावमूर्ति को कर्मभूमि उपन्यास में प्रस्तुत किया है; उसने स्त्री को एक नई पहचान और पंख दिए हैं। प्रेमचंद की स्त्री महज माँ, पत्नी, बहन, बेटी, बहू नहीं है, बल्कि वह एक सशक्त नारी है, जो समाज के लिए दायबद्ध हैं और हर मोड़ पर अपना कर्तव्य निभाती नजर आती है। वे केवल घर ही नहीं संभालती, पुरुषों की पुरुषत्व को जगाने की क्षमता रखती है; सकीना और मुन्नी का अमरकांत के जीवन पर जो प्रभाव रहा, उसे पाठकों ने सराहा है। प्रेमचंद की नारी देश के स्वतंत्रता आंदोलन में पुरुषों के समान हिस्सा लेती है, देश के लिए शहादत दे सकती है, यथा-''आप लोग इस मैदान में भी हमसे बाजी ले गई। आप लोगों ने जिस काम का बीड़ा उठाया, उसे पूरा कर दिखाया हम तो अभी जहाँ खड़े थे, वही खड़े हैं। सफलता के दर्शन होंगे भी या नहीं, कौन जाने-जो थोड़ा-बहुत आंदोलन यहाँ हुआ है, उसका गौरव भी मुन्नी बहन और सकीना बहन को है। इन दोनों बहनों के हृदय में देश के लिए जो अनुराग और कर्तव्य के लिए जो उत्सर्ग है, उसने हमारा मस्तक ऊँचा कर दिया।''[4] स्वतंत्रता आंदोलनकालीन भारत की पृष्ठभूमि में त्याग और बलिदान की चरमसीमा पर स्त्री की प्रस्तुति निःसंदेह एक साहसिक और मौलिक प्रयास रहा है। प्रेमचंद अपने साहित्य से पाठकों के मन में न केवल देशप्रेम जगाते थे, बल्कि उनके स्त्री पात्रों ने तत्कालीन स्त्री-समाज को स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए

प्रेरित भी किया था। जिस समय देश की बड़े घर की महिलाओं को भोग-विलास और आभूषण प्रेमी के रूप में दिखाया जा रहा था, उस समय सुखदा द्वारा सारे ऐशो-आराम का त्यागकर गाँधी के आदर्शों का पालन करवाना और अत्यंत साधारण जीवन यापन करवाना; इसे प्रेमचंद की सफलता ही मान सकते हैं। देश की तत्कालीन परिस्थितियों का चित्रण करते हुए आपने मंदिर में अछूतों का प्रवेश-निषेध, महंतों का आडंबर, जनता का अंधविश्वास आदि के प्रभाव को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से दिखाया है। कर्मभूमि का विश्लेषण करते हुए डॉ. तिवारी कहते हैं, ''उपन्यास के अंत में प्रेमचंद ने पाँच आदमियों की ऐसी कमिटी बनायी है, जिसके सुझाव सरकार को मान्य होंगे। इस आधार पर वे समस्याओं को सुलझाना चाहते हैं। संभवत: इस कमिटी संबंधी धारणा के मूल में सन 1931 ई. के गाँधी-इरविन समझौता कार्य कर रहा है।''[5]

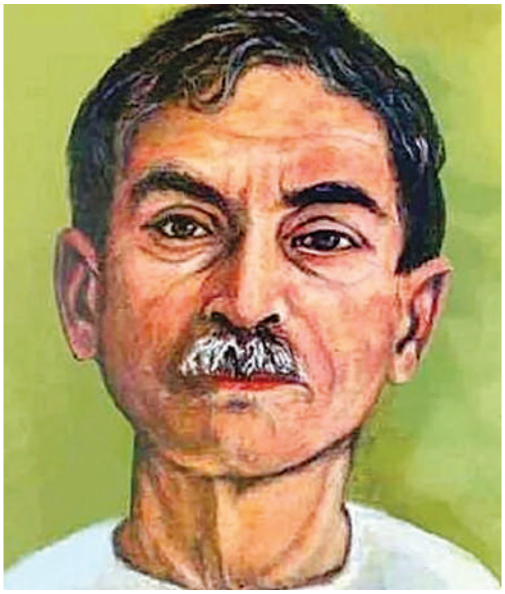

दूसरी तरफ प्रेमचंद ने अपने निबंधों के माध्यम से भी स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, इस योगदान को उनके निबंधों में दो तरीके देखा जा सकता है :-

1. स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी को मुख्य भाषा के रूप में प्रयोग में लाना ताकि हिंदी की मजबूत स्थिति के साथ ही ही साथ आजाादी के बाद देश की अपनी एक भाषा हो ।

2. लोगों के मन में सामाजिक चेतना को जगाना ।

प्रेमचंद ने हिंदी को भारत को जोड़ने का माध्यम बनाना चाहा था, वे भाषाई एकता पर बल देते थे और यह मानते थे कि स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी को मुख्य भाषा के रूप में प्रयोग में लाना आवश्यक है, क्योंकि तभी हिंदी की स्थिति मजबूत बनेगी और आजादी के बाद देश की अपनी एक भाषा होगी। हालाँकि इस संदर्भ में अनेक विवाद भी थे, हैं और शायद रहेंगे भी...खैर; अँग्रेजी शासन पर विचार करते हुए आप कहते हैं कि वे बुद्धिमान हैं, हमारी दुर्बलताओं को खूब जानते हैं और हर दम मौके का फायदा उठाते हैं। उन्हें हमारी आपसी भाषायी रंजिसों का इल्म है, वे होशियार हैं। ''जिस देश का दिमाग विदेशी भाषा में सोचे और लिखे, उस देश को अगर संसार राष्ट्र नहीं समझता है तो क्या वह अन्याय करता है? जब तक आपके पास राष्ट्रभाषा नहीं, आपका कोई राष्ट्र भी नहीं। दोनों में कारण और कार्य का संबंध है। राजनीति के माहिर अँग्रेज शासकों को आप राष्ट्र की हाँक लगाकर धोखा नहीं दे सकते। वे आपकी पोल जानते हैं और आप के साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं।''[6] अगर देश की साधारण जनता के साथ प्रभावशाली और प्रतिभाशाली व्यक्ति इस कड़ी से जुड़ जाए तो राष्ट्र के लिए यह अत्यंत हितकर होगा; ऐसा प्रेमचंद मानते थे । यथा- ''जिन दिमागों ने अँग्रेजी राज्य की जड़ जमाई, जिन्होंने अँग्रेजी भाषा का सिक्का जमाया , जो अँग्रेजी आचार-विचार में भारत में अग्रगण्य थे और हैं, वे लोग राष्ट्र भाषा के उत्थान पर कमर बाँध लें, तो क्या कुछ नहीं कर सकते?''[7]

प्रेमचंद ने उस साहित्य को ऊँचा और सफल माना है, जिससे समाज और मानवता का भला हो। ''साहित्य में हमारी आत्माओं को जगाने की, हमारी मानवता को सचेत करने की, हमारी रसिकता को तृप्त करने की शक्ति होनी चाहिए। ऐसी रचनाओं से कौमें बनती हैं।''[8] सामाजिक चेतना के जागरण हेतु प्रेमचंद ने भारतीय नागरिकों से यह आग्रह किया था कि वे छोटी-छोटी बातों की वजह से आपस में उलझना बंद करें और

आपसी एकता को बढ़ाने का प्रयास करें, क्योंकि आपसी उलझन देश की एकता के लिए बाधक है। इससे बाहरी शक्ति को सुविधा मिलती है, जिससे देश की क्षति होती होती है। अत: देश के लोगों के बीच एकता का होना देश के लिए अत्यंत सकारात्मक प्रभाव सिद्ध होता है। प्रेमचंद जी का मानना यह रहा कि एक साहित्यकार का देश के प्रति अपरिसीम दायित्व रहता है, ''...ऐसा महान दायित्व जिस वस्तु पर है, उसके निर्माताओं का पद कुछ कम जिम्मेदारी का नहीं है। कलम हाथ में लेते ही हमारे सिर बड़ी भारी जिम्मेदारी आ जाती है।''[9] आगे वे कहते हैं कि ''साहित्य का उत्थान राष्ट्र का उत्थान है और हमारी ईश्वर से यही याचना है कि हममें सच्चे साहित्य सेवी उत्पन्न हों, सच्चे तपस्वी निकलें, सच्चे आत्मज्ञानी हों।''[10]

उपलब्धियाँ :

प्रस्तुत चर्चा से निम्नलिखित उपलब्धियाँ सामने आती हैं:-

(क) प्रेमचंद के साहित्य में राष्ट्रीय भावना और चेतना का स्वर मुखर हो उठा है; उनके उपन्यास व निबंधों में राष्ट्रप्रेम की भावना के साथ स्वतंत्रता आंदोलन का स्वर स्पष्ट है ।

(ख) आपने स्वतंत्रता संग्राम में कलम से हिस्सा लिया था, अपने पात्रों के माध्यम से परोक्ष रूप से आजादी की लड़ाई लड़ी थी ।

(ग) भारत के स्वतंत्रता संग्राम में प्रेमचंद के साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है ।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद कलम के सिपाही थे। जब-जब आपने कलम चलाई, उसमें समाज व राष्ट्र का हित जुड़ा रहा। आपका समूचा साहित्य तत्कालीन भारत की स्थिति को उजागर करता है; स्वतंत्रतायुगीन देश की परिस्थिति को प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से बेहतरीन ढंग से प्रतिफलित किया है। उन्होंने अपनी कलम से देशवासियों को जगाने का और उनमें उत्साह व स्फूर्ति जगाने का कार्य बड़े ही सफलता से कर दिखाया। स्वतंत्रता संग्राम के वीर सेनानियों की भाँति वे रणभूमि पर भले ही न उतरे हों, पर प्रेमचंद ने अपनी कलम से एक सच्चे देशभक्त होने का कर्तव्य भली-भाँति निभाया है । ❑

संदर्भ सूची :

1. गोयनका, कमल किशोर, भारतीय साहित्य के निर्माता प्रेमचंद, साहित्य अकादेमी, पुन:मुद्रण-2015, पृ सं.-15
2. प्रेमचंद, कर्मभूमि, राजा पॉकेट बुक्स, दिल्ली, नवीन संस्करण, 2012, पृष्ट सं.-191
3. तिवारी, डॉ. रामचन्द्र, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, षष्ठम संस्करण, 2000, पृ. सं. 547
4. प्रेमचंद, कर्मभूमि, राजा पॉकेट बुक्स, दिल्ली, नवीन संस्करण, 2012, पृष्ट सं.-272
5. तिवारी, डॉ. रामचन्द्र, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, षष्ठम संस्करण, 2000, पृ. सं.-547
6. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, साहित्य सरोवर प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ सं.-78
7. वही, पृ. सं.- 71
8. वही, पृ. सं. 53
9. वही, पृ. सं.- 62
10. वही, पृ. सं.- 62

भारत में राष्ट्रवाद का उदय : एक ऐतिहासिक वर्णन

अर्चना

शोध छात्रा (इतिहास विभाग)
एमएम (पीजी) कॉलेज, मोदीनगर
गाजियाबाद (उ.प्र.)
मो. 7906720981

डॉ. आशा यादव

एसो. प्रो., विभागाध्यक्ष
इतिहास विभाग
एमएम (पीजी) कॉलेज, मोदीनगर
गाजियाबाद (उ.प्र.)
मो. 9897331182

शोध सारांश :

अपने देश के प्रति लगाव एवं समर्पण की भावना राष्ट्रवाद कहलाती है। राष्ट्र ही तो है, जो किसी भी देश के सभी नागरिकों को परंपरा, भाषा, जातीयता एवं संस्कृति की विभिन्नताओं के बावजूद उन्हें एक सूत्र में बाँधकर रखता है। हमारे देश में ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व में राष्ट्र की तुलना माँ से की जाती रही है।

राष्ट्र की परिभाषा एक ऐसे जन समूह के रूप में की जा सकती है, जो कि एक भौगोलिक सीमा में, एक निश्चित देश में रहता हो, समान परंपरा, समान हितों तथा समान भावनाओं से बँधा हो और जिसमें एकता के सूत्र में बाँधने की उत्सुकता तथा समान राजनैतिक महत्वाकांक्षा पाई जाती हो।

वस्तुतः भारत की राष्ट्रीय चेतना वैदिक काल से अस्तित्व मान है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में धरती माता का परोगान किया गया है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः (भूमि माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ)। विष्णुपुराण में तो राष्ट्र के प्रति श्रद्धाभाव अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई देता है। इसमें भारत का यशोगान 'पृथ्वी पर स्वर्ग' के रूप में किया गया है।

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महागने।
यतोहि कर्म भूरेषा ह्यतोनया भोग भूमयः।।
गायंति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापस्वर्गास्पदमार्गे भूते भवंति भूपः पुरुषाः सुरत्वात।।

इस शोध पत्र में भारत में राष्ट्रवाद का उदय कैसे हुआ, भारत में राष्ट्रवाद के उदय के लिए तत्कालीन परिस्थितियाँ क्या थीं तथा भारत में राष्ट्रवाद के उदय के लिए क्या-क्या कारण थे आदि का वर्णन किया गया है।

कुंजी शब्द : राष्ट्र, स्वदेशी, समाचार पत्र, विचारधारा।

प्रस्तावना :

इस संसार में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जिसे सामाजिक कहा जाता है। सामाजिक उसी व्यक्ति को कहा जाता है, जिसमें मानवता, भाईचारा, प्रेम इत्यादि तत्व विद्यमान होते हैं। मनुष्य का विकास एक राष्ट्र में रहकर ही संभव

होता है। हर व्यक्ति अपने राष्ट्र से अपनी माँ की तरह प्रेम करता है और राष्ट्र भी एक माँ की तरह मानव के हितों की रक्षा करता है। राष्ट्रवाद के निर्णायक तत्वों से राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र के सदस्यों में पाई जाने वाली सामूहिक भावना है, जो उनका संगठन सुदृढ़ करती है।

राष्ट्रवाद कोई अचानक उत्पन्न होने वाली विचारधारा नहीं है, बल्कि यह एक दीर्घकालीन विकासशील प्रक्रिया है। राष्ट्र के लिए एक ऐसी भावना का होना आवश्यक है, जो व्यक्तियों के समूह को आत्मिक रूप से जोड़ती है और जब राष्ट्र व्यक्ति की पहचान बन जाता है, तो राष्ट्रीयता जन्म लेती है और जब राष्ट्रीयता एक विचारधारा का रूप ले लेती है, तब राष्ट्रवाद का उदय होता है। यही विचारधारा राष्ट्रीय आंदोलन या स्वतंत्रता आंदोलन की उत्पत्ति का महत्वपूर्ण कारक बनती है।

भारत में राष्ट्रवाद के उदय के लिए तत्कालीन परिस्थितियाँ :

कुछ इतिहासकार भारत में राष्ट्रवाद की उत्पत्ति को प्रेरणा- अनुक्रियावाद से स्पष्ट करते हैं। जिसका आशय है- ब्रिटिश सरकार ने अपने हितों के लिए भारत में जो व्यवस्थाएँ लागू कीं, भारतीयों ने उसी पर अनुक्रिया कर राष्ट्रवादी भावना को विकसित किया। भारत में जैसे-जैसे औपनिवेशिक शासन विभिन्न अवस्थाओं से गुजरा, वैसे-वैसे भारतीय राष्ट्रवाद भी विकसित होता गया। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीय राजनीतिक चेतना बहुत तेजी से विकसित हुई और भारत में एक संगठित राष्ट्रीय आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इसी समय दिसंबर 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई, जिसके नेतृत्व में एक लंबा और साहसपूर्ण संघर्ष चला और अंततः 15 अगस्त, 1947 को देश को ब्रिटिश दासता से मुक्ति मिली।

मैकडॉनल्ड के अनुसार -

भारतीय राष्ट्रवाद राजनीतिक मंडलों का आंदोलन ही नहीं, अपितु इससे अधिक बहुत कुछ रहा है। यह एक ऐतिहासिक परंपरा का पुनर्जीवन है, यह राष्ट्र की आत्मा की मुक्ति है।

16वीं सदी में भारत अपनी समृद्धि और गौरव के चरमोत्कर्ष पर था और भारत की इस समृद्धि से प्रभावित होकर यूरोप के विभिन्न देश भारत के साथ व्यापार करने के लिए लालायित थे। ''लंदन के कुछ व्यापारियों ने भारत तथा पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना की और 31 दिसंबर, 1600 को ब्रिटिश साम्राज्ञी एलिजाबेथ ने अँग्रेज व्यापारियों की इस कंपनी को भारत के साथ व्यापार करने का एकाधिकार प्रदान किया। ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा बहुत तेजी के साथ प्रगति की गई और व्यापारिक प्रतियोगिता में अँग्रेजों ने पुर्तगाली, डच तथा फ्रेंच व्यापारिक कंपनियों को पराजित कर भारत के व्यापार पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।''[1]

व्यापारिक कंपनी के रूप में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर लेने के बाद 1750 से कंपनी ने भारत में 'शक्ति राजनीति का खेल' प्रारंभ किया। भारत की विशेष परिस्थितियों के कारण कंपनी को अपने इस कार्य में भी सफलता मिली और 1850 तक भारत के बहुत बड़े भाग पर कंपनी का शासन स्थापित हो गया।

भारत में राष्ट्रवाद का उदय और विकास उन परिस्थितियों में हुआ, जो राष्ट्रवाद के मार्ग में सहायता प्रदान करने के स्थान पर बाधाएँ पैदा करती हैं। वास्तविकता यह है कि भारतीय समाज की विभिन्नताओं में मौलिक एकता सदैव विद्यमान रही है और समय-समय पर राजनीतिक एकता की भावना भी उदय होती रही है। वी.ए. स्मिथ के शब्दों में- ''वास्तव में भारतवर्ष की एकता उसकी विभिन्नताओं में ही निहित है।'' ब्रिटिश शासन की स्थापना से भारतीय समाज में नए विचारों तथा नई व्यवस्थाओं को जन्म मिला है। इन विचारों तथा व्यवस्थाओं के बीच हुई क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रीय विचारों का जन्म हुआ।

भारत में राष्ट्रवाद के उदय के कारण :

भारत में राष्ट्रवादी विचारधारा का अंकुर 17वीं शताब्दी के मध्य से पनपने लगा था, किंतु यह धीरे-धीरे

विकसित होता रहा। अंत में 1857 में पूर्ण हो गया। डॉ. जकारिया का मत है कि ''भारत का पुनर्जागरण मुख्यत: अध्यात्मिक था। इसने राष्ट्र के राजनीतिक उद्धार के आंदोलन का रूप धारण करने से बहुत पहले अनेक धार्मिक और सामाजिक सुधारों का सूत्रपात किया।''

भारत में राष्ट्रवादी विचारों के उदय और विनाश के लिए निम्नलिखित कारण माने जाते हैं-

1. सामाजिक तथा धार्मिक आंदोलन-

भारत में राष्ट्र भावना पैदा करने में 19वीं शताब्दी में हुए सामाजिक तथा धार्मिक आंदोलनों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। देश की सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही थीं और धर्म के नाम पर समाज में अंधविश्वास और कुप्रथा पैदा हो गई थी। इन आंदोलनों ने एक ओर धर्म तथा समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया, तो दूसरी ओर भारत में राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार के आंदोलनों में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन एवं थियोसॉफिकल सोसायटी आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, जिसके प्रवर्तक क्रमश:- राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद एवं श्रीमती एनी बेसेंट आदि थे। इन सुधारकों ने भारतीयों में आत्मविश्वास जागृत किया तथा उन्हें भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा का ज्ञान कराया। स्वामी दयानंद सरस्वती जी ने अपने ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में निर्भीकतापूर्वक लिखा है-''विदेशी राज्य चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों ना हो, स्वदेशी राज्य की तुलना में कभी भी अच्छा नहीं हो सकता। स्वामी दयानंद सरस्वती पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने सबसे पहले यह नारा लगाया था कि भारत भारतीयों के लिए है।''[2]

2. ऐतिहासिक अनुसंधान :

ऐतिहासिक अनुसंधानों ने भी भारत में राष्ट्रीयता के उद्भव को गति प्रदान की। साहित्य, धर्म और संस्कृति के प्रसिद्ध विद्वान सर विलियम जोन्स, मैक्समूलर, डॉ. भंडारकर और हर प्रसाद शास्त्री आदि ने भारत के सम्मुख भारतीय राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास का एक ऐसा विवरण प्रस्तुत किया, जो किसी भी रूप में समकालीन यूरोपियन संप्रदायों से होना नहीं था।

ऐतिहासिक अनुसंधानों ने स्वभाविक रूप से भारतीयों में अपनी पुरातन सभ्यता और संस्कृति के प्रति गौरव की भावना उत्पन्न की।

इन अनुसंधानों ने उनके मस्तिष्क में आत्मविश्वास की भावना और उज्ज्वल भविष्य का चित्र भी प्रस्तुत किया। श्री मजूमदार जी के अनुसार-''यह खोज भारतीयों के हृदय में चेतना उत्पन्न करने में असफल नहीं हो सकती थी, जिसके परिणामस्वरूप उनके हृदय राष्ट्रीयता की भावना व देशभक्ति से भर गए।''

3. पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव :

भारतीय राष्ट्रीय धारा में पश्चिमी शिक्षा ने सराहनीय

अँग्रेजी शिक्षा के कारण वकील, अध्यापक तथा नौकरी करने वालों का एक वर्ग उत्पन्न हुआ। 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार का भारतीयों पर से विश्वास समाप्त हो गया था। अत: वह पढ़े-लिखे भारतीयों को सरकारी नौकरी नहीं देना चाहती थी। भारतीयों को उच्च पदों विशेषत: भारतीय नागरिक सेवा (आईसीएस) से अलग रखने के लिए विधिवत प्रयास किए गए। इस सेवा में प्रवेश की आयु 21 वर्ष थी। इसकी परीक्षा इंग्लैंड में अँग्रेजी भाषा में होती थी। किसी भी भारतीय द्वारा ऐसी परीक्षा को पास करना अत्यंत कठिन था। इसके बावजूद अगर कोई भारतीय सफल हो जाता था, तो उसे किसी ने किसी बहाने से नौकरी में नहीं लिया जाता था। उदाहरणस्वरूप श्री सुरेंद्र नाथ बनर्जी ने आईसएस की परीक्षा पास कर ली, परंतु ब्रिटिश सरकार ने सेवा में प्रवेश करने के बाद भी मामूली-सी गलती पर उन्हें नौकरी से हटा दिया था। इसी प्रकार श्री अरविंद घोष जी ने इस परीक्षा को पास कर लिया। परंतु उनकी नियुक्ति नहीं की गई, क्योंकि वह घोड़े की सवारी में प्रवीण नहीं थे।

योगदान दिया। 1825 में लॉर्ड मैकाले के सुझाव पर भारत में शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी भाषा को निश्चित किया। इनका मुख्य उद्देश्य भारत की राष्ट्रीय चेतना को जड़ से नष्ट करना था। रजनी पामदत्त ने सही लिखा है– ''भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा पाश्चात्य शिक्षा प्रारंभ किए जाने का उद्देश्य यह था कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति का पूर्ण रूप से लोप हो जाए और एक ऐसे वर्ग का निर्माण हो, जो रक्त और वर्ण से तो भारतीय हो, किंतु रुचि, विचार, शब्द और बुद्धि से अँग्रेज हो जाए।'' इस उद्देश्य में अँग्रेजों को काफी सीमा तक सफलता भी प्राप्त हुई, क्योंकि शिक्षित भारतीय लोग अपनी संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य संस्कृति का गुणगान करने लगे। परंतु पाश्चात्य शिक्षा से भारत को हानि की अपेक्षा लाभ अधिक हुआ। इससे भारत में राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई। अत: इस दृष्टि से पाश्चात्य शिक्षा भारत के लिए एक वरदान सिद्ध हुई। क्योंकि जब भारतीयों को बर्क, हरबर्ट स्पेंसर, जॉन स्टूअर्ट मिल आदि विचारकों की कृतियों का ज्ञान हुआ, तो उनमें अपने देश के प्रति प्रेम व स्वतंत्रता की भावना जागृत हुई।[3]

4. भारतीय समाचार पत्र तथा साहित्य :

मुनरो ने लिखा है कि एक स्वतंत्र प्रेस और विदेशी राज एक-दूसरे के विरुद्ध हैं और यह दोनों एक साथ नहीं चल सकते। समाचार पत्रों पर यह बात खरी उतरती है। राष्ट्रीय आंदोलन की प्रगति तथा विकास में भारतीय साहित्य तथा समाचार पत्रों का भी काफी योगदान था। इनके माध्यम से राष्ट्रवादी तत्वों को प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता रहा। उन दिनों भारत में विभिन्न भाषाओं में समाचार पत्र प्रकाशित होते थे, जिनमें राजनीतिक अधिकारों की मांग की जाती थी। इसके अतिरिक्त उनमें ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीति की भी कड़ी आलोचना की जाती थी। उस समय के प्रसिद्ध समाचार पत्रों में संवाद कौमुदी (1821), मुंबई समाचार (1822), बंगदूत (1831), रास्त गुफ्तार (1815), अमृत बाजार पत्रिका (1806), ट्रिब्यून (1877) के नाम प्रमुख रूप से लिए जा सकते हैं।

इन समाचार पत्रों में ब्रिटिश सरकार की अन्यायपूर्ण नीति की कड़ी आलोचना की जाती थी ताकि जनसाधारण में ब्रिटिश शासन के प्रति घृणा एवं असंतोष की भावना उत्पन्न हो। इन पत्रों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1878 में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पास किया, जिसके द्वारा भारतीय समाचार पत्रों को बिल्कुल नष्ट कर दिया गया। इस एक्ट ने भी राष्ट्रीय आंदोलन की लहर को तेज कर दिया।

भारतीय साहित्यकारों ने भी देश की भावना को जागृत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। श्री बंकिम चंद्र चटर्जी ने 'वंदेमातरम्' के रूप में देशवासियों को राष्ट्रीय गान दिया। इससे भारतीयों में देश प्रेम की भावना जागृत हुई। इसी प्रकार केशव चंद्र सेन, रविंद्र नाथ टैगोर, आर सी दत्त, रानाडे, दादा भाई नौरोजी आदि ने अपने विद्वतापूर्ण साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय भावना को जागृत किया। इन साहित्यिक कृतियों ने भारतवासियों के हृदय में सुधार एवं जागृति की अपूर्ण उमंग उत्पन्न कर दी।[4]

5. आर्थिक असंतोष :

मि. गेरट का यह विचार कि ''राष्ट्रीयता में शिक्षित वर्ग का अनुराग हमेशा ही कुछ सीमा तक आर्थिक और कुछ सीमा तक धार्मिक कारणों से हुआ है।'' भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना का उद्देश्य भारत के साथ व्यापार करते हुए इस देश का आर्थिक शोषण करना था। ईस्ट इंडिया कंपनी और बाद में ब्रिटिश शासन द्वारा किए गए इस आर्थिक शोषण का ही यह परिणाम था, कि जिस भारत को 17वीं सदी तक 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था उसी भारत के संबंध में 1900 में सर विलियम विलियम डिग्बी ने लिखा, ''करीब 10 करोड़ मनुष्य ब्रिटिश भारत में ऐसे हैं, जिन्हें किसी समय भी भरपेट अन्न नहीं मिलता। इस अध: पतन की दूसरी मिसाल इस समय सभ्य और उन्नतिशील देश में कहीं पर भी दिखाई नहीं दे सकती। इस आर्थिक शोषण के राजनीतिक परिणाम उत्पन्न होने स्वभाविक थे।''[5]

6. भारतीयों को उच्च पदों से अलग रखने की नीति :

1833 के अधिनियम में कहा गया था कि सरकारी नौकरियों में प्रवेश योग्यता के आधार पर ही दिया जाएगा और किसी भी भारतीय को जन्म-स्थान, वंश और वर्ण के कारण कोई पद प्रदान करने में बाधा नहीं

उपस्थित की जाएगी। इस प्रकार की नीति को 1858 की साम्राज्ञी की घोषणा में भी दोहराया गया था, लेकिन व्यवहार में इस नीति का पालन करने के स्थान पर इसे भंग ही किया गया।

अँग्रेजी शिक्षा के कारण वकील, अध्यापक तथा नौकरी करने वालों का एक वर्ग उत्पन्न हुआ। 1857 के विद्रोह के बाद ब्रिटिश सरकार का भारतीयों पर से विश्वास समाप्त हो गया था। अत: वह पढ़े-लिखे भारतीयों को सरकारी नौकरी नहीं देना चाहती थी। भारतीयों को उच्च पदों विशेषत: भारतीय नागरिक सेवा (आईसीएस) से अलग रखने के लिए विधिवत प्रयास किए गए। इस सेवा में प्रवेश की आयु 21 वर्ष थी। इसकी परीक्षा इंग्लैंड में अँग्रेजी भाषा में होती थी। किसी भी भारतीय द्वारा ऐसी परीक्षा को पास करना अत्यंत कठिन था। इसके बावजूद अगर कोई भारतीय सफल हो जाता था, तो उसे किसी ने किसी बहाने से नौकरी में नहीं लिया जाता था। उदाहरणस्वरूप श्री सुरेंद्र नाथ बनर्जी ने आईसएस की परीक्षा पास कर ली, परंतु ब्रिटिश सरकार ने सेवा में प्रवेश करने के बाद भी मामूली-सी गलती पर उन्हें नौकरी से हटा दिया था। इसी प्रकार श्री अरविंद घोष जी ने इस परीक्षा को पास कर लिया। परंतु उनकी नियुक्ति नहीं की गई, क्योंकि वह घोड़े की सवारी में प्रवीण नहीं थे।

7. जाति विभेद नीति :

1857 के विद्रोह के पूर्व भारत स्थित अँग्रेजों और भारतीयों के संबंध पर्याप्त अच्छे थे, किंतु विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासन ने जाति विभेद की जो नीति अपनाई, उसके परिणामस्वरूप इस मधुरता का स्थान पारस्परिक घृणा ने ले लिया। मि. गेरट के अनुसार-उन्होंने अपने लिए एक विचित्र व्यवहार नीति अपनाई, जिसके तीन महत्वपूर्ण सिद्धांत थे।

प्रथम यह कि एक यूरोपियन का जीवन अनेक भारतीयों के जीवन के बराबर है। द्वितीय प्राच्य देशवासियों पर केवल भय के आधार पर ही शासन किया जा सकता है। तृतीय वे यहाँ लोकहित के लिए नहीं, वरन अपने निजी लाभ और ऐश्वर्य के लिए आए हैं।

अँग्रेजों की इस जाति भेदभाव की नीति का भारतीयों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। अब उनके हृदय में ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। इस तथ्य से राष्ट्रीयता की भावना का तीव्र गति से संचार हुआ। गेरट ने सही लिखा है, ''भारतीय राष्ट्रीयता की बढ़ोतरी में उपरोक्त कटुता की भावना एक बहुत बड़ा कारण थी।''[7]

8. यातायात तथा संचार के साधनों का विकास :

1860-79 के वर्षों में सड़कों, रेल, डाक और तार यातायात तथा संचार के द्रुत साधनों के विकास से भी राष्ट्रीय भावना की वृद्धि में सहायता मिली। इन साधनों के कारण भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले देश के शुभचिंतक आपस में बार-बार मिलकर देश हित में कार्य करने की योजना बना सकते थे और जनता से व्यक्तिगत तथा सीधा संपर्क स्थापित कर सकते थे। श्री गुरुमुख निहालसिंह के शब्दों में, ''संचार के इन साधनों ने सारे देश को गूँथकर एक कर दिया और भौगोलिक एकता को एक मूर्त वास्तविकता बना दिया।''[8]

9. विदेशी आंदोलनों का स्वरूप प्रभात :

इटली, जर्मनी, रूमानिया और सर्बिया में राजनीतिक आंदोलन, फ्रांस में तृतीय गणतंत्र की स्थापना और इंग्लैंड में सुधार कानूनों का पारित होना आदि घटनाओं ने भारतीयों के मस्तिष्क पर प्रभाव डाला। इन आंदोलनों ने भारतीयों को दृढ़ता प्रदान की और उन्हें अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता हेतु संघर्ष के लिए प्रेरित किया।[9]

10.लॉर्ड लिटन की अन्यायपूर्ण नीति :

लॉर्ड लिटन की प्रतिक्रियावादी नीति के कारण राष्ट्रीय असंतोष आरंभ हुआ। परिणामस्वरूप भारत में राष्ट्रीयता की भावना का जन्म हुआ। इस तथ्य की पुष्टि सुरेंद्रनाथ बनर्जी के इस कथन से होती है, ''कभी-कभी बुरे शासक की राजनीति, प्रगति के विकास में सहायक सिद्ध होती हैं। लॉर्ड लिटन ने शिक्षित समुदाय में उस सीमा तक नए जीवन की लहर फूँक दी, जो कि कई वर्षों के आंदोलन ने संभव नहीं की।

लॉर्ड लिटन ने भारत में निम्न अत्याचार किए-

(क) भारतीय लोक सेवा की आयु में कमी-

1876 में ब्रिटिश सरकार ने इंडियन सिविल सर्विस

में सम्मिलित होने की आयु 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष कर दी ताकि भारतीय इस परीक्षा में सम्मिलित नहीं हो सकें। इसके विरुद्ध भारतीयों में तीव्र गति से असंतोष फैला। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने इंडियन एसोसिएशन की स्थापना की, जिसने उसके विरुद्ध जोरदार आंदोलन चलाया। अंततः सरकार को मजबूर होकर आयु सीमा पूर्ववत करनी पड़ी।[10]

(ख) दक्षिण में अकाल और शाही दरबार- लॉर्ड लिटन ने जिस समय दिल्ली में एक विशाल दरबार का आयोजन किया, दक्षिण भारत में इस समय भयानक अकाल पड़ जाने से हजारों मनुष्य मौत के मुँह में जा रहे थे, किंतु लिटन ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इसके विपरीत उसने महारानी विक्टोरिया के भारत साम्राज्ञी की उपाधि धारण करने के उपलक्ष्य में दिल्ली में एक शानदार दरबार का आयोजन किया। इस शान-शौकत पर पानी की तरह पैसा बहाया गया। इस आयोजन ने भारतीयों के असंतोष के आग में घी का काम किया।

भारत के समाचार पत्र में इसकी कटु आलोचना की गई। कलकत्ता के एक समाचार पत्र ने इस समारोह की आलोचना करते हुए यहाँ तक लिख दिया, ''जब रोम जल रहा था, तब नीरो बाँसुरी बजा रहा था। यह दरबार एक रूप में भारतीय राष्ट्रीयता के लिए वरदान सिद्ध हुआ।''[11]

(ग) अफगानिस्तान पर आक्रमण - लॉर्ड लिटन ने साम्राज्यवादी नीति पर चलते हुए अफगानिस्तान पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में ब्रिटिश साम्राज्य को कोई फायदा नहीं हुआ। इस युद्ध में दो करोड़ स्टर्लिंग व्यय हुआ, जो भारत की निर्धन जनता से वसूला गया था। भारतीयों में लिटन की इस नीति के विरुद्ध काफी असंतोष फैला।

(घ) शस्त्र अधिनियम (1878)-लॉर्ड लिटन ने 1878 में एक शस्त्र अधिनियम पारित किया, जिसके अनुसार भारतीयों को हथियार रखने के लिए लाइसेंस रखना पड़ता था, परंतु अँग्रेजों के लिए कोई प्रतिबंध नहीं था। इस अधिनियम ने भारतीयों को अधिक उत्तेजित कर दिया।[12]

(ङ) वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट (1878)- लॉर्ड लिटन की अन्यायपूर्ण नीति का समाचार पत्रों ने कड़ा विरोध किया। इससे परेशान होकर उसने 1878 में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पारित कर दिया, जिससे भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों पर कठोर नियंत्रण स्थापित हो गया। दूसरे शब्दों में इस अधिनियम ने समाचार पत्रों की स्वाधीनता को नष्ट कर दिया गया। अब किसी भी समाचार को प्रकाशित करने से पूर्व ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। इस अधिनियम की इंग्लैंड की संसद में भारी आलोचना हुई और भारत में भी सर्वत्र आलोचना हुई। बढ़ते हुए आंदोलन से बाध्य होकर इसका कानून को रद्द करना पड़ा।[13]

(च) इल्बर्ट बिल विवाद-1880 में उदारवादी लॉर्ड रिपन भारत के गवर्नर जनरल बनकर आए। प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक सुधार कार्य करने के बाद रिपन ने न्याय व्यवस्था में भी सुधार करना चाहा। इस समय तक न्यायिक क्षेत्र में भी जाति-विभेद विद्यमान था और भारतीय न्यायाधीशों को यूरोपियन अपराधियों के मुकदमे सुनने का अधिकार नहीं था। सन 1883 में लॉर्ड रिपन की परिषद के विधि सदस्य मि. पी.सी. इल्बर्ट ने परिषद में एक विधेयक प्रस्तुत किया, जिसका उद्देश्य भारतीय न्यायाधीशों को यूरोपियन अपराधियों के मुकदमे सुनने का अधिकार देना था, लेकिन यह विधेयक एक भीषण विवाद का कारण बन गया।

इस आंदोलन से बाध्य होकर विधेयक को मूल रूप में समाप्त कर देना पड़ा और अब यह निश्चित किया गया कि भारतीय जिलाधीशों और सेशन जजों को यूरोपियन अपराधियों के फैसले का अधिकार होगा, किंतु यूरोपियन अपराधी अपने मुकदमे में जूरी बैठाने की माँग कर सकेंगे, जिसके कम-से-कम आधे सदस्य यूरोपियन होंगे। इल्बर्ट विधेयक ने भारतीयों की आँखें खोल दी।[14] आर.सी. मजूमदार लिखते हैं कि ''इस आंदोलन ने भारतीयों को यह

अनुभव करा दिया कि राजनीतिक प्रगति वांछनीय है, जो केवल एक राष्ट्रीय सभा द्वारा ही संभव है। इस सभा का संबंध विभिन्न प्रांतों की स्वतंत्र राजनीति से न होकर देश की एक व्यापक राजनीति से ही होना चाहिए।

निष्कर्ष :

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ब्रिटिश शासन के विकासशील स्वरूप ने यदि राष्ट्रवाद के जन्म के लिए अप्रत्यक्ष रूप से योगदान किया तो उसके प्रतिक्रियावादी स्वरूप ने इस प्रक्रिया को तेज किया। ब्रिटिश शासन द्वारा भारत का आर्थिक शोषण भारतीयों के साथ भेद-भाव, उन्हें नौकरियों में स्थान न मिलना, प्रेस का गला घोंटना, हथियार रखने या लेकर चलने पर रोक लगाना, साम्राज्यवाद के विस्तार के लिए युद्ध लड़ना जैसे कामों ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश शासन भारत के हित में नहीं है। अधिकांश राष्ट्रीय नेताओं का मत था कि भारत की आर्थिक दुर्दशा का मूल कारण भारत में अँग्रेजी शासन है। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. एल. पी. शर्मा : आधुनिक भारत, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, पृष्ठ संख्या-86
2. राजीव अहीर : आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या- 237
3. राजीव बंसल : भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारत का संविधान, एसबीपीडी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-13
4. राजीव अहीर : आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-236
5. एल. पी. शर्मा आधुनिक भारत, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, पृष्ठ संख्या-419
6. राजीव अहीर : आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या-238
7. जयदेव सिंह पाल : भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या - 8
8. डॉ. एस. के. मल्होत्रा : आधुनिक भारत का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास, बीएफसी पब्लिकेशंस, लखनऊ, पृष्ठ संख्या-217
9. राजीव अहीर : आधुनिक भारत का इतिहास, स्पेक्ट्रम बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या-234
10. राजीव बंसल : भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारत का संविधान, एसबीपीडी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - 11
11. राजेंद्र नाथ मित्रा : भारत का संवैधानिक विकास तथा राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - 40
12. डॉ. ईशा इला नागौरी : भारत का मुक्ति संग्राम, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, पृष्ठ संख्या - 29
13. डॉ. एस. के. मल्होत्रा, आधुनिक भारत का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक इतिहास, बीएफसी पब्लिकेशंस, लखनऊ, पृष्ठ संख्या - 217
14. राजीव बंसल : भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन एवं भारत का संविधान, एसबीपीडी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या - 20

हिंदी के विकास में महात्मा गाँधी का योगदान : एक अवलोकन

सूर्य प्रकाश

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
मिहिर भोज पी.जी. कॉलेज, दादरी
ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर,
उत्तर प्रदेश-201306
मो. : 8171853145
ईमेल : surya9587@gmail.com

शोध सार : महात्मा गाँधी ने 1915 में अपने भारत आगमन के अगले वर्ष ही हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए व्याख्यान लेख इत्यादि के माध्यम से उत्तर भारत के साथ-साथ दक्षिण भारत और पूर्वोत्तर भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं उसे राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने के लिए उल्लेखनीय प्रयास किए। उसके बाद उन्होंने हिंदी भाषा में विभिन्न भाषाओं, अरबी-फारसी के शब्दों को भी प्रयुक्त कर हिंदुस्तानी भाषा की अवधारणा दी। यद्यपि विशुद्ध हिंदी के समर्थकों द्वारा इसका विरोध किया गया, लेकिन महात्मा गाँधी हिंदुस्तानी भाषा को संपूर्ण भारत का समन्वित प्रतिनिधि मानते हुए अपने निर्णय पर अटल रहे और इसे राष्ट्रभाषा बनाने हेतु अथक प्रयास किए, जिस कारण भारतीय संविधान में इसके परिवर्तित स्वरूप को हिंदी के रूप में संवैधानिक दर्जा दिया गया।

बीज शब्द : हिंदी, राष्ट्रभाषा, हिंदुस्तानी, स्वराज्य, प्रचार, सम्मेलन, दक्षिण भारत, आंदोलन।

मूल अंश : हिंदी के साथ महात्मा गाँधी का नाम उसी अमिट अमरता के साथ जुड़ा हुआ है, जिस प्रकार देश की आजादी के साथ। दक्षिण अफ्रीका में अपने सत्याग्रह के सफल परीक्षणों के बाद स्वदेश लौटते ही एक ओर उन्होंने देश की स्वाधीनता के कार्यक्रम का शंखनाद किया तो दूसरी ओर लोकमानस और उसकी स्वतंत्रता पर भी बल दिया, क्योंकि उनका अनुभव था कि पराधीनता चाहे वह राजनीतिक क्षेत्र की हो अथवा भाषायी क्षेत्र की, दोनों ही एक-दूसरे की पूरक और पीढ़ी-दर-पीढ़ी सदा परामुखापेक्षी बनाए रखने वाली है।[1] जब फरवरी, 1916 में मदन मोहन मालवीय के निमंत्रण पर महात्मा गाँधी बनारस में आए, तब उनका एक व्याख्यान नागरी प्रचारिणी सभा में और दूसरा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में हुआ। इन दोनों व्याख्यानों में उन्होंने हिंदी के प्रचलन और प्रयोग पर जोर दिया। नागरी प्रचारिणी सभा में उन्होंने कहा कि आप शायद नहीं जानते कि मेरे साथ 10-15 स्त्री पुरुष हैं। उन सबकी प्रतिज्ञा है कि वे बराबर हिंदी का अभ्यास करेंगे। इस सभा के जो अधिकारी वकील हैं, मैं उनसे पूछता हूँ कि आप अदालत में अपना काम अंग्रेजी में चलाते हैं तो मैं कहूँगा कि हिंदी में चलाएँ। जो युवक पढ़ते हैं, उनसे

भी मैं कहूँगा कि वह इतनी प्रतिज्ञा करें कि हम आपस का पत्र व्यवहार हिंदी में करेंगे।[2] फरवरी, 1916 को बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में बोलते हुए उन्होंने कहा कि अंग्रेजी भाषा हमारे राष्ट्र के पाँव में बेड़ी बनकर पड़ी हुई है। जरा सोच कर देखिए कि अंग्रेजी भाषा में अंग्रेज बच्चों के साथ होड़ कराने से हम पर कितना वजन पड़ता है। पूना के कुछ प्रोफेसरों से मेरी बात हुई। उन्होंने बताया कि हर भारतीय विद्यार्थी को अंग्रेजी की मार्फत ज्ञान संपादन करना पड़ता है, इसलिए उसे अपने बेशकीमती वर्षों में से कम-से-कम छह वर्ष अधिक बर्बाद करने पड़ते हैं। हमारे स्कूलों और कॉलेजों से निकलने वाले विद्यार्थियों की संख्या में इन छह का गुणा कर दीजिए और फिर देखिए कि राष्ट्र के कितने हजार वर्ष बर्बाद हो चुके हैं।[3]

मई, 1917 को लिखे एक लेख में उन्होंने कहा कि हिंदी ही हिंदुस्तान के शिक्षक समुदाय की सामान्य भाषा हो सकती है, यह बात निर्विवाद सिद्ध है। यह कैसे हो, केवल यही विचार करना है। इस स्थान को अंग्रेजी भाषा आजकल लेने का प्रयत्न कर रही है और जिसे लेना उसके लिए असंभव है। वही स्थान हिंदी को मिलना चाहिए, क्योंकि हिंदी का उस पर पूर्ण अधिकार है।[4] महात्मा गाँधी स्वभाषा को स्वदेशाभिमान का आधारभूत तत्व मानते थे। उनके अनुसार स्वदेशाभिमान को स्थिर रखने के लिए हमें हिंदी सीखना आवश्यक है।[5] उन्होंने गुजराती होते हुए भी हिंदी सीखी। कांग्रेस की परिषदों, सार्वजनिक सभाओं आदि में जब भी उन्हें अवसर मिलता, वह हिंदी की महत्ता को प्रदर्शित अवश्य करते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि विदेशी भाषा की गुलामी से मुक्त हुए बिना सच्ची आजादी की लड़ाई ना तो लड़ी जा सकती है और ना उसे हासिल की ही किया जा सकता है।

1917 में गुजरात शिक्षा परिषद के भरूच अधिवेशन में सभापति के रूप में महात्मा गाँधी ने अंग्रेजी के समक्ष हिंदी की महत्ता प्रदर्शित की। उन्होंने किसी भाषा के राष्ट्रभाषा बनने के निम्नलिखित लक्षण बताए -

1. अमलदारों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।
2. यह जरूरी है कि भारतवर्ष के बहुत से लोग भाषा को बोलते हों।
3. उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार संभव होना चाहिए।
4. राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए।
5. इस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्प स्थायी स्थिति पर जोर नहीं देना चाहिए।

अंग्रेजी भाषा में इनमें से एक भी लक्षण नहीं है।[6] यह समस्त लक्षण हिंदी भाषा में मिलते हैं। यहाँ पर उनके उद्बोधन से हिंदी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा जैसी संस्थाएँ उनके हिंदी प्रेम को समझ सके। यही कारण है कि 1918 में इंदौर में होने वाले हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन में महात्मा गाँधी को सभापति चुना गया। यहाँ पर उन्होंने कहा कि हिंदी के बिना हमारा स्वराज्य निरर्थक है। उन्होंने हिंदी के प्रति देशवासियों के कर्तव्य को बताते हुए कहा कि आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिंदी सब समझते हैं, इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। आज भी हिंदी से स्पर्द्धा करने वाली कोई दूसरी भाषा नहीं है।[7] इस अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने अहिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए व्यापक योजना बनाई। इस समय दक्षिण के राज्य एक ही मद्रास प्रांत के अंग थे और महात्मा गाँधी राष्ट्रभाषा की दृष्टि से मद्रास की कठिनाई को सबसे ऊपर मानते थे। दक्षिण के राज्यों में हिंदी के प्रचार के लिए इस सम्मेलन में 6 सदस्यों की एक समिति बनाई, इसमें महात्मा गाँधी और पुरुषोत्तम दास टंडन भी शामिल थे। इस सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार महात्मा गाँधी की प्रेरणा से उत्तर भारत से दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए पंडित अवध नंदन, पंडित रामानंद शर्मा, पंडित ऋषिकेश शर्मा, पंडित रघुवर दयाल शर्मा, पंडित देवदत्त विद्यार्थी व पंडित रामगोपाल शर्मा आदि गए तथा दक्षिण के छह युवकों को हिंदी सीखने के लिए दक्षिण से प्रयाग जाना था, इनमें पंडित हरिहर शर्मा, श्री वंदे मातरम सुब्रमण्यम, श्री हरिप्रसाद द्विवेदी (वियोगी हरि) आदि प्रमुख थे। इसी

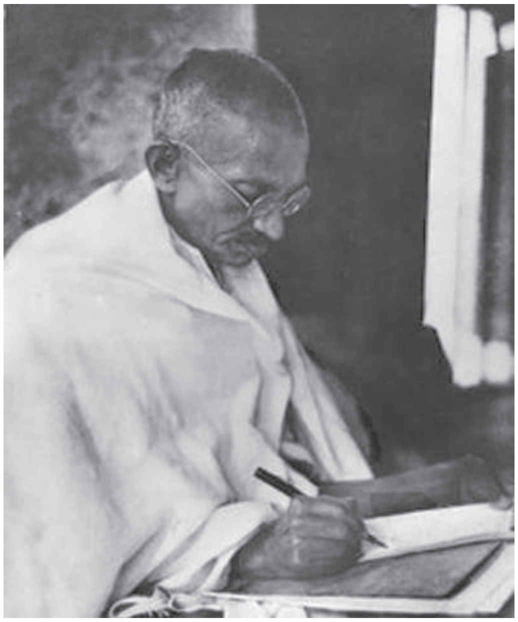

सम्मेलन में दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार के लिए महाराज होलकर तथा सेठ सर हुकुम चंद ने दस-दस हजार की राशि दान में दी।[8]

सन 1918 से 1927 तक दक्षिण में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार हिंदी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से महात्मा गाँधी के संरक्षण में होता रहा। उनके सुझाव पर ही 1927 में दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार सभा की स्थापना हुई।[9] फिर इसे ही दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार की जिम्मेदारी दी गई।[10] इसने कन्नड़, तेलुगू, तमिल, मलयालम भाषी प्रदेशों में सफलतापूर्वक अपने उद्देश्यों को पूरा किया। महात्मा गाँधी के विचारों से आकर्षित होकर दक्षिण भारत के कुछ हिंदी प्रेमी युवकों ने हिंदी पढ़ने की इच्छा प्रकट करते हुए उनसे प्रार्थना की कि हिंदी पढ़ाने के लिए सुयोग्य अध्यापक को दक्षिण में भेजा जाए। महात्मा गाँधी ने अपने सबसे छोटे एवं मेधावी पुत्र देवदास गाँधी को मद्रास भेजा। हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए मद्रास में जो कार्य शुरू हुआ, श्रीमती एनी बेसेंट ने अपनी पत्रिका न्यू इंडिया में उसका समर्थन किया। इसके अतिरिक्त मद्रास के सुप्रसिद्ध दैनिक समाचार पत्र हिंदू और तमिल के विख्यात दैनिक समाचार पत्र आनंद विकटन ने भी हिंदी का समर्थन किया और इस तरह से महात्मा गाँधी द्वारा निर्मित संस्थाओं एवं भेजे गए भाषा दूतों के माध्यम से दक्षिण भारत में हिंदी का प्रचार-प्रसार होता रहा। हालाँकि बाद में गाँधी इसकी प्रगति से पूर्णतया संतुष्ट न थे। महात्मा गाँधी ने दक्षिण भारत के हिंदी प्रेमियों के लिए एक लेख में कहा था कि दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार का जो कार्य हो रहा है, उसका विवरण सुनकर साधारणतया संतोष ही होना चाहिए, लेकिन तब तक मुझे पूरा संतोष नहीं होगा, जब तक हिंदी न जानने वाला एक भी दक्षिण भारतीय न रहे। वह इसकी गति को तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतम बनाना चाहते थे। उनका मानना था कि जब तक तमिल प्रदेश के प्रतिनिधि सचमुच में हिंदी के बारे में सख्त नहीं बनेंगे, तब तक महासभा में अंग्रेजी का बहिष्कार नहीं होगा। मैं देखता हूँ कि हिंदी के बारे में करीब-करीब खादी के जैसा हो रहा है। वहाँ जितना भी संभव हो, आंदोलन किया करो।[11]

1915 में हिंदी के प्रचार-प्रसार के निरीक्षण एवं आवश्यक सुधार के लिए उन्होंने काका कालेलकर को दक्षिण भारत भेजा, जिसके फलस्वरूप 1916 में डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद की अध्यक्षता वाले हिंदी साहित्य सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन में हिंदी प्रचार समिति नामक दूसरी संस्था की स्थापना हुई और बाद में इसी संस्था का नाम 1917 में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति पड़ा। तब से यह समिति निरंतर कार्यरत है। इसका मुख्यालय वर्धा में है। महात्मा गाँधी द्वारा दक्षिण भारत में किए गए हिंदी प्रचार का मूल्यांकन रामविलास शर्मा ने करते हुए लिखा है कि दक्षिण भारत में गाँधीजी और उनके सहयोगियों व अनुयायियों ने जितना हिंदी प्रचार किया उतना और किसी नेता, राजनीतिक पार्टी या सांस्कृतिक संस्था ने नहीं किया। इसलिए आज के विभिन्न नेताओं के अंग्रेजी प्रेम को देखकर कहना पड़ता है कि इन सब की तुलना में गाँधी जी देश की जनता के बहुत नजदीक थे।[12]

महात्मा गाँधी के प्रयासों से पूर्वोत्तर में भी हिंदी के प्रचार-प्रसार को बल मिला। सन 1914 में प्रसिद्ध जन नेता एवं समाजसेवक बाबा राघवदास ने उनकी प्रेरणा से असम में हिंदी प्रचार प्रारंभ किया। असम के स्वतंत्रता सेनानी गोपीनाथ बरदलै के आग्रह पर 1 नवंबर, 1918 को 'असम हिंदी प्रचार समिति' नामक एक संस्था

स्थापित की गई। बाद में इसका नाम 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' पड़ा।

सन 1935 में हिंदी साहित्य सम्मेलन का 24वाँ सत्र इंदौर में आयोजित हुआ। महात्मा गाँधी को दूसरी बार हिंदी साहित्य सम्मेलन का सभापति चुना गया। यहाँ उन्होंने राष्ट्रीय और व्यावहारिक दोनों दृष्टिकोण से हिंदी के महत्व की विवेचना की। उन्होंने हिंदी के प्रचार-प्रसार और उसके अध्ययन-अध्यापन की समुचित व्यवस्था को कांग्रेस के रचनात्मक कार्य का अभिन्न अंग बताते हुए कहा कि मैं हमेशा से मानता रहा हूँ कि हम किसी भी हालत में प्रांतीय भाषाओं को मिटाना नहीं चाहते। हमारा मतलब तो सिर्फ यह है कि विभिन्न प्रांतों के पारस्परिक संबंध के लिए हम हिंदी भाषा सीखें। ऐसा कहने में हिंदी के प्रति हमारा कोई पक्षपात प्रकट नहीं होता। हिंदी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं। वह राष्ट्रीय होने लायक है। वह भाषा राष्ट्रीय बन सकती है, जिसे अधिसंख्यक लोग जानते हों, बोलते हों और जो सीखने में सुगम हो। ऐसी भाषा हिंदी ही है, यह बात यह सम्मेलन सन 1910 से बता रहा है और इस पर कोई वजन देने लायक विरोध आज तक सुनने में नहीं आया है। अन्य प्रांतों ने इस बात को स्वीकार कर ही लिया है। उन्होंने कहा कि अगर हिंदुस्तान को सचमुच एक राष्ट्र बनना है तो चाहे कोई माने या ना माने, राष्ट्रभाषा तो हिंदी ही बन सकती है, क्योंकि जो स्थान हिंदी को प्राप्त है, वह दूसरी किसी भाषा को नहीं मिल सकता।[14]

इसी इंदौर अधिवेशन में महात्मा गाँधी ने हिंदी के साथ-साथ हिंदुस्तानी भाषा को भी महत्व देने का प्रयास किया। उन्होंने कहा कि हिंदुस्तानी और उर्दू में कोई फर्क नहीं है। देवनागरी लिपि में लिखी जाने पर वह हिंदी और अरबी में लिखी जाने पर वह उर्दू कही जाती है।

इसी अधिवेशन में हिंदी-हिंदुस्तानी को लेकर महात्मा गाँधी का विशुद्ध रूप वाली हिंदी के अनन्य समर्थक पुरुषोत्तम दास टंडन से मतभेद हो गए। यद्यपि महात्मा गाँधी की प्रेरणा से हिंदुस्तानी भाषा 1927 में अखिल भारतीय कांग्रेस की दफ्तरी भाषा मान ली गई, लेकिन 1918 में कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने इसी हिंदुस्तानी के प्रयोग में दुबारा आस्था प्रकट की। उधर हिंदी साहित्य सम्मेलन ने राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के रूप में हिंदी एवं देवनागरी को ही अपनाने का निर्णय कर लिया। हिंदी साहित्य सम्मेलन ने 1941 में अपने अबोहर (पंजाब) अधिवेशन में हिंदुस्तानी भाषा को अपनाने से साफ मना कर दिया। यह मतभेद 1942 से 1945 के मध्य अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया और फलस्वरूप पंडित जवाहरलाल नेहरू, डॉ. राजेंद्र प्रसाद, मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि नेताओं के साथ महात्मा गाँधी को इस सम्मेलन से नाता तोड़ना पड़ा।

इस संदर्भ में पुरुषोत्तम दास टंडन का कहना था कि यदि आप मेरे दृष्टिकोण से सहमत नहीं हैं और आपकी आत्मा कहती है कि मैं सम्मेलन से अलग हो जाऊँ तो आपके अलग होने की बात पर बहुत खेद होते हुए भी मैं नतमस्तक होकर आपके निर्णय को स्वीकार कर लूँगा।[15] इसके बाद महात्मा गाँधी को हिंदुस्तानी प्रचार सभा, वर्धा नामक एक नई संस्था का गठन करना पड़ा।

मतभेद के बारे में रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि मानसिक ऊहापोह के क्रम में महात्मा गाँधी का तर्क यह रहा होगा कि यदि संस्कृतनिष्ठ हिंदी राष्ट्रभाषा हुई तो मुसलमान, ईसाई, सिख व पारसी उस भाषा को हिंदुत्व की भाषा समझ कर उससे घबराएँगे, इसी तरह यदि अरबी-फारसी से भरी हुई भाषा राष्ट्रभाषा बनाई गई तो उसे हिंदू स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि हिंदू केवल हिंदी भाषी प्रांतों में ही नहीं बसते वह अहिंदी भाषी प्रांतों में भी बसते हैं। अतएव वे इस निष्कर्ष पर आ गए कि जैसे भारत विविध संस्कृतियों का देश है, उसी प्रकार उसकी राष्ट्रभाषा भी हिंदी और उर्दू का मिश्रित रूप होगी।[16] अर्थात यह भाषा हिंदुस्तानी नाम से जानी जाएगी।

महात्मा गाँधी ने हिंदुस्तानी भाषा के संबंध में कहा था कि हिंदुस्तानी का मतलब उर्दू नहीं, बल्कि हिंदी और उर्दू की वह खूबसूरत मिलावट है, जिसे उत्तरी हिंदुस्तान के लोग समझ सकें और जो नागरी या उर्दू लिपि में लिखी जाती हो। यह पूरी राष्ट्रभाषा हो। बाकी अधूरी, पूरी

राष्ट्रभाषा सीखने वालों को आज तो दोनों लिपियाँ सीखनी चाहिए और दोनों रूप जानने चाहिए।[17] हिंदी जानने वालों को उर्दू सीखनी चाहिए और उर्दू जानने वालों को हिंदी तभी हम सच्ची राष्ट्रभाषा पैदा कर सकेंगे।[18]

उपसंहार : उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि महात्मा गाँधी प्रारंभ में विशुद्ध हिंदी भाषा के प्रचारक थे एवं उसे राष्ट्रभाषा बनाने के लिए उन्होंने उल्लेखनीय प्रयास किए, लेकिन भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में विभिन्न धर्म-संस्कृतियों के लोगों के योगदान को दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने उनकी भाषाओं के शब्दों को भी हिंदी में प्रयुक्त किए जाने की वकालत की और ऐसी समन्वित भाषा को उन्होंने हिंदुस्तानी नाम देकर संपूर्ण भारत की राष्ट्रभाषा भाषा के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। यद्यपि भारतीय संविधान में हिंदुस्तानी भाषा को कोई प्रत्यक्ष महत्व तो नहीं मिला, लेकिन इसकी बहुआयामी प्रकृति को दृष्टिगत रखते हुए इसके कुछ लक्षणों को हिंदी में समाहित कर उसे भारतीय संविधान का अंग बनाया गया। ❑

संदर्भ :

1. गोविंद दास, गाँधी हिंदी दर्शन, पृष्ठ संख्या 106
2. संपूर्ण गाँधी वांग्मय, खंड 16, पृष्ठ संख्या 211-212
×. संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 11, पृष्ठ संख्या 211
4. वही, पृष्ठ संख्या 424
5. राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी, पृष्ठ संख्या 46
6. संपूर्ण गांधी वांग्मय, खंड 14, पृष्ठ संख्या 28-29
7. वही, पृष्ठ संख्या 279-80
8. मलिक मोहम्मद, राजभाषा हिंदी, विकास के विभिन्न आयाम, प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली 1986, पृष्ठ संख्या 112
9. उदय नारायण दुबे, राजभाषा के संदर्भ में हिंदी-आंदोलन का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, दिल्ली, 1979, पृष्ठ संख्या 157
10. पी.के. केशवन नायर, दक्षिण भारत के हिंदी प्रचार आंदोलन का समीक्षात्मक इतिहास, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1961, पृष्ठ संख्या 61
11. हिंदी प्रचारक, फरवरी 1929, पृष्ठ संख्या 15
12. रामविलास शर्मा, भाषा और समाज, पृष्ठ संख्या 414
13. राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी, पृष्ठ संख्या 44 45
14. राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी, पृष्ठ संख्या 49
15. राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी,पृष्ठ संख्या 171 175
16. रामधारी सिंह दिनकर, राष्ट्रभाषा आंदोलन और गाँधीजी, पृष्ठ संख्या 102
17. राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी पुस्तक की भूमिका, महाबलेश्वर, 9 मई 1945
18. महात्मा गाँधी, हिंदी दर्शन, पृष्ठ संख्या 170

रानी लक्ष्मीबाई : स्वतंत्रता संग्राम की वीरांगना

सविता

शोध छात्रा, इतिहास विभाग
एमएम (पीजी) कॉलेज
मोदीनगर-201204
गाजियाबाद (उ.प्र.)
मो. 8077347847

डॉ. आशा यादव

एसो. प्रो., विभागाध्यक्ष,
इतिहास विभाग
एम.एम. (पी.जी) कॉलेज,
मोदीनगर-201204
गाजियाबाद (उ.प्र.)
मो. 9897331182

शोध सारांश :

भारत वीर सपूतों की भूमि है और यहाँ आजादी की लड़ाई में वीरों के साथ-साथ वीरांगनाओं ने भी अपना बलिदान दिया था। भारत की मिट्टी से होनहार, बहादुर सुत और सुता पैदा हुए हैं। भारत लगभग दो सदी तक अँग्रेजों का गुलाम रहा। गुलामी की बेड़ियों को काटने के लिए हिंदुस्तान की वीरांगनाओं ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी। इन वीरांगनाओं का त्याग और बलिदान इतिहास के सुनहरे अक्षरों में दर्ज है। किसी ने फाँसी के फंदे को मुस्कुराकर गले से लगाया, किसी वीरांगना ने गोली खाकर तो किसी ने जहर खाकर ब्रिटिश हुकूमत के हाथ न लगने का अपना वादा निभाया और कइयों ने तो सारी जिंदगी जेल में रहकर अपना समर्थन दिया। ऐसी ही एक वीरांगना, जिसके विषय में देश का बच्चा-बच्चा जानता है, के बारे में हम बात करने जा रहे हैं। वह है झांसी की रानी लक्ष्मी बाई, जिन्हें एक औरत द्वारा प्रदर्शित ताकत एवं साहस का प्रतीक माना जाता है। सन 1857 में झांसी की रानी ने वक्त आने पर युद्ध के मैदान में उतरकर ब्रिटिश सेना का न केवल बहादुरी से सामना किया, बल्कि मराठा साम्राज्य सहित देश को भी सम्मान दिलाया।

कुंजी शब्द :

सशक्तिकरण, स्वतंत्रता, विद्रोह, उत्तराधिकारी, अस्त्र शस्त्र, ब्रिटिश, उल्लंघन।

भूमिका :

भारतीय वसुंधरा को गौरवान्वित करने वाली झांसी की रानी वीरांगना लक्ष्मीबाई वास्तविक अर्थ में एक आदर्श वीरांगना थीं। सच्चा वीर कभी विपत्तियों से नहीं घबराता है। प्रलोभन उसे कर्तव्य पालन से विमुख नहीं कर सकते । उसका लक्ष्य उदार एवं उच्च होता है। उसका चरित्र अनुकरणीय होता है। अपने पवित्र उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह सदैव विश्वासी, कर्तव्य परायण, स्वाभिमानी और धर्मनिष्ठ होता है। ऐसी ही थी वीरांगना लक्ष्मीबाई झांसी की रानी। भारतीय स्वतंत्रता के लिए आरंभ किए गए रण-यज्ञ की विशिष्ट होता थीं। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास इन्होंने अपने रक्त से लिखा था। यह झलकारी बाई के बाद स्वतंत्रता संग्राम में बलिदान होने वाली दूसरी वीरांगना थीं।

लक्ष्मीबाई का प्रारंभिक जीवन :

रानी लक्ष्मी बाई का जन्म 19 नवंबर, 1828[1] को वाराणसी शहर के भदैनी नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम मोरोपंत तांबे और माता का नाम भागीरथी बाई था। धूमधाम के साथ लक्ष्मी का जन्मोत्सव मनाया गया। चिमा जी ने दिल खोलकर पैसे लुटाए। मोरोपंत जी ने भी यथाशक्ति राजा के दास-दासियों को उदारता पूर्वक दान -दक्षिणा दी। भागीरथी बाई के पास जो भी एक-दो आभूषण थे, वे भी दासी को ही भेंट कर दिए गए। अच्छे-अच्छे पंडितों का शुभ आगमन हुआ। काफी उधेड़बुन के बाद पंडितों ने उस अपूर्व शिशु का नाम मणिकर्णिका रखा। धीरे-धीरे मणिकर्णिका बढ़ने लगी, क्योंकि अशिक्षित दास-दासियों के मुँह से मणिकर्णिका शब्द का शुद्ध उच्चारण नहीं हो पाता था, अतः प्यार से लोगों ने उसे मनु कहना प्रारंभ कर दिया।[2] माता का प्यार मनु को अधिक दिनों तक नहीं मिल सका। वह छुटपन में ही पंत और मनु को छोड़कर अकस्मात इस संसार से चल बसी। वस्तुतः मनु अभी 4 साल की ही हुई थी, लेकिन कौन कह सकता था कि मनु 4 साल की है? उसके क्रियाकलापों को देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि वह 7-8 साल की लड़की होगी।[3]

मनु की शिक्षा :

मनु की शिक्षा घर पर ही हुई थी। वह पढ़ने -लिखने में तेज थी। बचपन से ही मनु स्वतंत्र प्रवृत्ति की थी। मनु बाजीराव के पुत्रों नाना, राव के साथ खेलकूद, मनोरंजन करती थी। वे तीनों भाई बहन की तरह रहते थे। खेल के साथ साथ तलवार- बंदूक चलाना, अश्वरोहण, मलखंब,कुश्ती, पढ़ना-लिखना आदि तीनों ने छुटपन से एक ही साथ सीखना प्रारंभ कर दिया, क्योंकि बाजीराव के परिवार में भी बच्चियों का अभाव था। अतः बच्चों के साथ ही मनु अच्छी तरह घुल मिल गई।[4]

लक्ष्मी बाई का बचपन :

मनु बचपन से ही बेहद सुंदर थी। उनकी छवि मनमोहक थी। जो भी उनको देखता उनकी बात किए बिना नहीं रह पाता था। एक दिन प्यार भरे शब्दों में बाजीराव ने कह दिया- हमारी बिटिया तो छबीली मालूम पड़ती है, तब से सब के सब मनु को छबीली कहकर पुकारने लगे। लक्ष्मी बाई की बहादुरी के किस्से बचपन से ही प्रसिद्ध थे। वह बड़ी से बड़ी चुनौतियों का बड़ी समझदारी एवं होशियारी से सामना कर लेती थी।

एक बार जब वह घुड़सवारी कर रही थी, तब नाना साहब ने मनुबाई से कहा कि अगर हिम्मत है तो मेरे घोड़े से आगे निकल कर दिखाओ। फिर क्या था, मनु ने नाना साहब की यह चुनौती स्वीकार कर ली और घुड़सवारी के लिए तैयार हो गई। नाना साहब का घोड़ा तेज गति से भाग रहा था, वहीं लक्ष्मीबाई का घोड़ा भी पीछे नहीं रहा। दौड़ के दौरान नाना साहब ने मनु से आगे निकलने का कई बार प्रयास किया, लेकिन वह असफल रहे और इस रेस में घोड़े से नीचे गिर गए। इस दौरान नाना साहब की चीख निकल पड़ी 'मनु मैं मरा'। इसके बाद मनु ने घोड़ा पीछे की ओर मोड़ लिया और नाना साहब को घोड़े पर बिठा कर घर की तरफ चल पड़ी। नाना साहब ने मनु की घुड़सवारी की बहुत प्रशंसा की और बोले मनु तुम घोड़ा बहुत तेज दौड़ती हो, तुमने तो कमाल कर दिया। नाना साहब ने मनु को हिम्मती और बहादुर कहा। इसके बाद नाना साहब और राव साहब ने मनु की प्रतिभा देखकर उन्हें शस्त्र विद्या भी सिखाई।

रानी लक्ष्मीबाई का विवाह :

लक्ष्मी बाई का विवाह लगभग 14 साल की उम्र में उत्तर भारत में स्थित झांसी के महाराजा गंगाधर राव

नेवालकर के साथ हुआ। इस तरह काशी की मनु झांसी की रानी बन गई। विवाह के बाद मनु का नाम लक्ष्मीबाई पड़ा। इनका वैवाहिक जीवन सुख से बीत रहा था। सन 1851 में पुत्र की प्राप्ति हुई, जिसका नाम दामोदर राव रखा गया। दुर्भाग्यवश दामोदर राव 4 माह ही जीवित रह सका, जिससे उनके परिवार में संकट के बादल छा गए। वहीं पुत्र वियोग में महाराजा गंगाधर राव नेवालकर बीमार रहने लगे। लक्ष्मी बाई और महाराजा गंगाधर राव ने अपने रिश्तेदार का पुत्र को गोद लेने का फैसला किया। गोद लिए गए पुत्र के उत्तराधिकार पर ब्रिटिश सरकार कोई दिक्कत न करे, इसलिए उन्होंने ब्रिटिश सरकार की मौजूदगी में पुत्र को गोद लिया। यह काम ब्रिटिश अफसर एलिस की मौजूदगी में पूरा किया गया। गंगाधर राव ने स्वयं अपने हाथ में खरीता लिया और निर्निमिष दृष्टि से एक बार एलिस की ओर देख कर उसके हाथ में खरीता थमा दिया।[5] गोद लिए गए बच्चे का नाम पहले आनंद राव रखा गया, परंतु बाद में बदलकर दामोदर राव रखा गया ।

लक्ष्मीबाई का राज्य अभिषेक :

लगातार बीमार रहने के चलते एक दिन महाराजा गंगाधर राव की तबीयत ज्यादा खराब हो गई और 21 नवंबर, 1853 को उनकी मृत्यु हो गई। इस समय रानी लक्ष्मीबाई महज 25 वर्ष की थी। पुत्र वियोग के बाद राजा की मृत्यु की खबर ने रानी को बहुत आहत किया। लेकिन इतनी कठिन परिस्थिति में भी रानी ने धैर्य नहीं खोया। वहीं दत्तक पुत्र दामोदर राव की आयु कम होने की वजह से उन्होंने स्वयं ही राज्य का उत्तराधिकारी बनने का फैसला किया। उस समय लॉर्ड डलहौजी गवर्नर था, परंतु रानी को उत्तराधिकारी बनने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा। वहीं ब्रिटिश शासकों ने राजा गंगाधर राव की मौत का फायदा उठाने की तमाम कोशिशें कीं, क्योंकि वे झांसी को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाना चाहते थे। ब्रिटिश सरकार ने झांसी राज्य को हड़पने की हर कोशिश की। यहाँ तक कि ब्रिटिश शासकों ने महारानी लक्ष्मी बाई के दत्तक पुत्र दामोदर राव के खिलाफ मुकदमा दायर कर दिया। यहाँ के निर्दयी शासकों ने रानी के राज्य का खजाना भी जब्त कर लिया। इसके साथ ही राजा गंगाधर राव ने जो कर्ज लिया था उसकी रकम रानी लक्ष्मीबाई के सालाना आय से काटने का फैसला सुनाया। इसके लिए उन्हें झांसी का किला छोड़कर झांसी की रानी महल में जाना पड़ा। इस कठिन संकट से भी रानी लक्ष्मी बाई घबराई नहीं और वह अपने झांसी राज्य को ब्रिटिश शासकों के हाथ नहीं सौंपने के फैसले पर डटी रहीं। अपने राज्य को बचाने के लिए लक्ष्मीबाई ने सेना संगठन शुरू कर दिया।

साहसी रानी के संघर्ष का आरंभ :

झांसी को पाने की चाह रखने वाले ब्रिटिश शासकों ने 7 मार्च, 1854 को एक सरकारी गजट जारी किया, जिसमें झांसी को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने का आदेश जारी हुआ था। इसके बाद लक्ष्मी बाई ने ब्रिटिश शासकों के इस आदेश का उल्लंघन करते हुए कहा कि ''मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी।'' इसके बाद ब्रिटिश शासकों के खिलाफ विद्रोह तेज हो गया। झांसी को बचाने के लिए लक्ष्मीबाई ने कुछ अन्य राजाओं की मदद से सेना तैयार की, जिसमें बड़े पैमाने पर लोगों ने अपनी भागीदारी निभाई। इस सेना में सहेली-सेना के रूप में महिलाएँ भी शामिल थीं। लक्ष्मी बाई की सेना में अस्त्र-शस्त्र के विद्वान गुलाम खान, दोस्त खान, खुदा बख्श, काशीबाई, मोतीबाई सुंदर -मुंदर, लाला भाऊ बक्शी, दीवान रघुनाथ सिंह, दीवान जवाहर सिंह, जूही, दूल्हाज, झलकारी बाई समेत 1400 सैनिक शामिल थे।

1857 के स्वतंत्रता संग्राम में महारानी लक्ष्मी बाई :

10 मई, 1857 को अँग्रेजों के खिलाफ जगह -जगह विद्रोह शुरू हो गए। इसका कारण बंदूकों की गोलियों में सूअर और गौमांस की परत चढ़ा दी गई और जिसके बाद हिंदुओं की धार्मिक भावनाएँ काफी आहत हुईं। इसी वजह से पूरे भारत में आक्रोश फैल गया, जिसके बाद ब्रिटिश सरकार को विद्रोह को दबाना पड़ा और झांसी को महारानी लक्ष्मीबाई को सौंप दिया गया। सन 1857 में झांसी राज्य के पड़ोसी राज्य ओरछा और दतिया के राजाओं ने झांसी पर हमला कर दिया। रानी लक्ष्मीबाई ने अपनी बहादुरी एवं चतुराई का परिचय देते हुए जीत हासिल की।

1858 में झांसी पर अँग्रेजों का अधिकार :

मार्च, 1858 में एक बार फिर झांसी राज्य पर कब्जा करने के उद्देश्य से अँग्रेजों ने सर ह्यूरोज के नेतृत्व में रणनीति बनाई। लेकिन इस बार झांसी को बचाने के लिए तात्या टोपे के नेतृत्व में करीब 20000 सैनिकों के साथ लड़ाई लड़ी गई। इस लड़ाई में अँग्रेजों ने झांसी के किले की दीवारें तोड़कर वहाँ पर कब्जा कर लिया। साथ ही झांसी में लूटपाट भी की। इस संघर्ष में रानी ने साहस से काम लिया। सर्वप्रथम अपने दत्तक पुत्र दामोदर राव को बचाया एवं स्वयं भी बच निकलने में सफल हो गई। रानी झांसी से भागकर कालपी पहुँची और तात्या टोपे से मिली।[6]

कालपी की लड़ाई :

सन 1858 में झांसी पर अँग्रेजों द्वारा कब्जा करने के बाद लक्ष्मी बाई अपने दल के साथ कालपी पहुँची, जहाँ तात्या टोपे ने उनका साथ दिया। कालपी के पेशवा ने बिगड़ते हालात देखकर रानी को कालपी में शरण दी एवं सैन्य बल भी दिया। 22 मई, 1858 को सर ह्यूरोज ने कालपी पर भी आक्रमण कर दिया। यहाँ रानी ने अपने साहस और वीरता के साथ अँग्रेजों को धूल चटाई, जिसके बाद अँग्रेजों को पीछे हटना पड़ा। अपनी हार के कुछ समय बाद सर ह्यूरोज ने कालपी पर पुन: आक्रमण कर दिया एवं जीत हासिल की।

लक्ष्मीबाई का ग्वालियर पर अधिकार :

कालपी की लड़ाई में हार के बाद राव साहब पेशवा, बंदा के नवाब, तात्या टोपे व अन्य मुख्य योद्धाओं ने महारानी लक्ष्मी बाई को ग्वालियर पर अधिकार करने का सुझाव दिया और महारानी ने अपनी मंजिल में सफलता के लिए तात्या टोपे के साथ मिलकर ग्वालियर के महाराजा सिंधिया के खिलाफ लड़ाई की जो कि एक अँग्रेज भक्त था। इस युद्ध में तात्या टोपे ने ग्वालियर की सेना को पहले ही अपनी तरफ मिला लिया, वहीं दूसरी ओर अँग्रेज भी अपनी सेना के साथ ग्वालियर आ धमके। लेकिन रानी ने इस लड़ाई में ग्वालियर के किले पर जीत हासिल की। किंतु बाद में उन्होंने ग्वालियर का राज्य राव साहब पेशवा को सौंप दिया।

रानी लक्ष्मीबाई की मृत्यु :

17 जून, 1858 को रानी लक्ष्मीबाई ने किंग्स रॉयल आइरिस के खिलाफ लड़ाई लड़ी और ग्वालियर के पूर्व क्षेत्र का मोर्चा संभाला। अँग्रेज अधिकारी स्मिथ ने लड़ाई का बिगुल बजाया। लड़ाई प्रारंभ हो गई। स्मिथ की सेना आगे बढ़ने लगी। लक्ष्मीबाई ने गोलंदाज को चुप रहने का संकेत दिया। गोरी पलटन बढ़ती रही और अधिक बढ़ने का मौका दिया गया। उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि आज ही शहर पर कब्जा किया कर लिया जाएगा। टोरिया के पीछे एक तोपखाना लगा था। तोपखाने से गोलों की वर्षा करने के लिए जूही वहाँ पर मौजूद थी। रानी ने आज्ञा दी, मुहरा को थोड़ा ढीला करो फिर क्या? घुड़सवार धरती पर बिछ गए। पैदल पलटन भी बड़ी संख्या में मारी गई। सवारों का दूसरा दल आया। समाप्त! फिर तीसरा दल आया, वह भी समाप्त। इस प्रकार दल-पे-दल आते रहे और धीरे-धीरे धरती पे बिछते गए। पल भर में ही गोरी पलटन ने मैदान खाली कर दिया और स्मिथ को पहले दिन काला मुँह लेकर लौटना पड़ा।[7]

18 जून, 1858- यह युद्ध का दूसरा दिन था। प्रथम दिन की हार के कारण अँग्रेज जनरल आज बहुत सावधान था। ह्यूरोज ने अपनी पूरी ताकत लगा दी थी। आज ग्वालियर पर चारों तरफ से आक्रमण किया गया, किंतु पूरब की ओर सबसे अधिक तैयारी थी।[8] अगले दिन भी जूही की तोपें गजब ढा रही थीं। न जाने कितने गोरे सवार आए और मरे, मरते रहे, फिर आए और फिर मरे, मरते रहे...। तभी एकाएक तोपों पर गोलों की वर्षा हुई। तोपों के मुँह बंद हो गए। जूही को तलवार लेकर युद्ध करना पड़ा, किंतु लड़ते-लड़ते यह वीरांगना भी मारी गई। रानी को मालूम हुआ ग्वालियर सेना एवं सेनापति अँग्रेजों के साथ मिल गए। राव साहब भी अपने मोर्चे को छोड़कर धीरे-धीरे पीछे हट रहे और तात्या टोपे का भी यही हाल था। रानी को बोध हुआ -तात्या टोपे और राव साहब की विलासिता ने सब को नष्ट कर दिया, किंतु तत्क्षण उन्होंने क्रोधावेश पर नियंत्रण किया और उनकी भूलों को आशीर्वाद देकर आगे बढ़ी।[9] युद्ध में रानी की सेविकाओं ने उनका साथ दिया। इस युद्ध में

रानी का घोड़ा नया था, क्योंकि पिछले युद्ध में रानी का घोड़ा 'राज रतन' मारा गया था। रानी को अंदेशा हो गया था कि यह युद्ध उनके जीवन की आखिरी लड़ाई है। गुल मोहम्मद, रामचंद्र देशमुख और रघुनाथ सिंह अपनी अपनी तलवार की अंतिम करामात दिखला रहे थे। रानी की छोटी-सी टुकड़ी हजारों गोरी पलटन के द्वारा घेर ली गई। आगे-आगे रानी बगल में मुंदर, मुंदर के बगल में रामचंद्र देशमुख और रघुनाथ सिंह रानी के बगल में। गुलाम मोहम्मद रानी के पीछे और उसके पीछे लाल कुर्ती सवार। सभी अटूट शौर्य के साथ दुश्मनों को अपनी तलवार से कतरते जा रहे थे।[10] मुंदर के सीने में गोले लगे और वह महारानी लक्ष्मीबाई की जय का उद्घोष करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुई। तभी झटके से आकर एक अँग्रेज सवार ने महारानी के सर पर वार किया, सिर का दाई ओर का हिस्सा कट गया और दाईं आँख बाहर निकल पड़ी। आश्चर्य! तब भी रानी ने उस घातक पर अपनी तलवार चलाई और उसके दो टुकड़े कर दिए। आँखों से महारानी ने स्वयं उसे देखा।[11] युद्ध में रानी बुरी तरह घायल हो चुकी थी और घोड़े से गिर गई। रानी पुरुष का पोशाक पहनी हुई थ, इसलिए अँग्रेज उन्हें पहचान नहीं पाए और रानी को युद्ध भूमि में ही छोड़ गए। इसके बाद रामचंद्र और रघुनाथ सिंह, रानी और मुंदर के मृत शरीर को अंतिम संस्कार के लिए गंगादास मठ में ले गए। बाबा गंगा दास ने महारानी के पवित्र शरीर को गंगाजल से अभिसंचित किया। कहते हैं, गंगा जल का स्पर्श पाते ही महारानी को कुछ चेतना आई, उन्होंने मुख के संकेत से गंगाजल की याचना की...। बाबा गंगादास ने महारानी को अंतिम बार गंगा जल पिलाया और तभी 29 वर्षीय उस दुर्गा, काली, लक्ष्मी व महामाया की अंतिम वाणी नि:सृत हुई-हर हर महादेव! ओम।

पर्णकुटी की लकड़ी से महारानी का अंतिम संस्कार संपन्न हुआ। रानी के बगल में ही मंदर भी चिर निद्रा में सो गई।[12] रानी के मरते ही अँग्रेजों ने ग्वालियर पर कब्जा कर लिया। युद्ध की रिपोर्ट में ब्रिटिश जनरल ह्यूरोज ने टिप्पणी की कि ''रानी लक्ष्मीबाई अपनी सुंदरता, चतुराई एवं दृढ़ता के लिए उल्लेखनीय तो थी ही, विद्रोही नेताओं में सबसे अधिक खतरनाक भी थी।''[13]

निष्कर्ष :

रानी लक्ष्मीबाई ने एक स्त्री होकर भी पुरुषों की भाँति अँग्रेजों से लड़ कर उनकी हालत खराब कर दी थी और उन्हें बता दिया कि अँग्रेजों के लिए एक महिला ही काफी है। वह मृत्यु पाकर भी अमर हो गईं और स्वतंत्रता की ज्वाला को भी अमर कर गईं। उनका बलिदान आज भी भारतीयों में स्वस्फूर्ति और नव चेतना का संचार करता है।❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. झांसी की रानी लक्ष्मी बाई बायोग्राफी, आर्काइव्स, दिल्ली
2. प्रसाद सिंह, परमेश्वर- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, राष्ट्रीय प्रकाशनालय, जयपुर, पृष्ठ संख्या-7
3. वही, पृष्ठ संख्या-13
4. वही, पृष्ठ संख्या-13
5. वही, पृष्ठ संख्या- 38
6. दैनिक जागरण लेख, मूल से 18 जून 2019 को पूरालिखित , अभिगमन तिथि-2020-06-22
7. प्रसाद सिंह, परमेश्वर- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, राष्ट्रीय प्रकाशनालय, जयपुर, पृष्ठ संख्या-115
8. वही, पृष्ठ संख्या-116
9. वही, पृष्ठ संख्या-117
10. वही, पृष्ठ संख्या-117
11. वही, पृष्ठ संख्या-118
12. प्रसाद सिंह, परमेश्वर- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, राष्ट्रीय प्रकाशनालय, जयपुर, पृष्ठ संख्या-119
13. डेविड ,साउल- द इंडियन म्यूटनी -1857, पेंग्विन लंदन, पृष्ठ संख्या-367

हिंदी कविता की जातीय धारा

सत्येंद्र पाण्डेय

C2M1-5
फ्लैट नंबर–534
सी. एम .डी. ए .नगर,
बारासात रोड,
वायरलेस मोड़ के सामने,
बैरकपुर–700121
(पश्चिम बंगाल)
मोबाइल नंबर 9832558528

सारांश :

स्वतंत्रता संग्राम में हमारे राजनेताओं से लेकर साहित्यकारों, कवियों, पत्रकारों, समाज सुधारकों की अहम भूमिका रही है। बालगंगाधर तिलक से लेकर महात्मा गाँधी तक और भारतेंदु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त से लेकर छायावादी, प्रगतिवादी कवियों तक तथा युगल किशोर शुक्ल से लेकर पराड़कर, बालमुकुंद गुप्त, राजा राममोहन राय, दुर्गा प्रसाद मिश्र, अंबिका प्रसाद बाजपेयी, लक्ष्मण नारायण गर्दे, शिवपूजन सहाय, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, पांडे बेचन शर्मा उग्र, इलाचंद्र जोशी, बनारसीदास चतुर्वेदी, अज्ञेय तक राष्ट्रीयता का प्रबल वेग दिखाई देता है। इन लोगों ने स्वराज के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसकी महत्ता से जनता को जागरूक किया। आजादी किसके लिए और क्यों जरूरी है, इसकी भी वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की तथा पराधीन भारत की तमाम समस्याओं का विश्लेषण करते हुए जनसाधारण का मार्ग प्रशस्त किया। नवयुवकों में उपजे परिस्थितिजन्य निराशा और विषाद को दूर कर आशा का संचार किया। फलस्वरूप हम आजाद भारत की पवित्र भूमि को अपने मस्तक पर लगा पाए।

बीज शब्द :

स्वतंत्रता, अमृत महोत्सव, पराधीनता, सांस्कृतिक, अतीत गौरव, राष्ट्रीयता, धर्म, देशोद्धार, उग्र राष्ट्रीयता, जनता, आंतरिक फूट, नवजागरण।

आज पूरा देश आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है। हमें आजाद हुए आज 75 वर्ष हो गए। अब थोड़ा-ठहर कर यह सोचने की जरूरत है कि जिस आजादी रूपी अमृत का हम पान कर रहे हैं, उसकी पृष्ठभूमि में किसका योगदान रहा है? किन परिस्थितियों से लोहा लेकर हमारे कर्मवीर इस मुकाम तक पहुँचे? त्याग और बलिदान की शर्तों पर मिली आजादी का हमारे लिए क्या मूल्य है? इस मूल्य को समझने के लिए जरूरी है कि हम अपने इतिहास को खंगालें। ऐतिहासिक बोध ही हमें आजादी के मर्म तक पहुँचाती है। पराधीनता, विषमता और संकीर्णता की पीड़ा क्या होती है, यह हम महसूस कर पाते हैं। ध्यातव्य है कि स्वतंत्रता संग्राम में अहम भूमिका बालगंगाधर तिलक से लेकर महात्मा गाँधी जैसे स्वतंत्रता सेनानियों का रहा है। पर

साहित्य और पत्रकारिता की शक्ति को नकारा नहीं जा सकता, क्योंकि इसने ही देशवासियों में चेतना का संचार किया। स्वराज के अर्थ को स्पष्ट किया। आजादी की लड़ाई को धारदार बनाया।

दरअसल, आधुनिक हिंदी साहित्य की प्रवृत्ति ही राष्ट्रीयता की रही है। भारतेंदु जैसे रचनाकारों ने ब्रिटिश सरकार की दोगली नीति से जनता को सचेत किया और हिंदुस्तान के दरिद्र होने के कारणों की खोज की। क्योंकि अचानक सामाजिक विकृति और गुलामी की मानसिकता नहीं उत्पन्न होती।

भारतेंदु जानते थे कि अँग्रेजों ने भारत को न केवल आर्थिक रूप से गुलाम बनाया, बल्कि सांस्कृतिक और राजनीतिक तौर पर भी इसका शोषण किया। उन्होंने आर्थिक रूप से यहाँ के संसाधनों को लूटा है और एवज में यहाँ की सामाजिक व्यवस्था में गुणात्मक परिवर्तन दिखाकर जनता को छलने का काम किया है। भारतेंदु 'अंधेर नगरी' में लिखते हैं-

''प्रगट सभ्य अन्तर छलधारी।
सोई राज सभा बल भारी।
सांच कहैं ते पनही खावै।
झूठे बहुविधि पदवी पावै।।''

भारतेंदु को 1857 के संग्राम की असफलता रह- रह कर कचोटती है। वह भारत की दुर्दशा के पीछे अँग्रेजों की तो भूमिका स्वीकार करते ही हैं, मगर भारतीयों को भी कम दोषी नहीं पाते। उनकी अतिस्वार्थपरता, अशिक्षा, जातिवाद, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता ने ही उन्हें अधिक क्षति पहुँचाई। यही कारण है कि भारतेंदु अपनी गौरवशाली परंपरा को याद करते हुए लोगों में राष्ट्रीयता की भावना जगाने का प्रयास करते हैं-

''सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनों
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो।

जहं भए शाक्य हरिश्चंद्ररु नहुष ययाती
जहं राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती
जहं भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती
तहं रही मूढ़त कलह अविद्या राती
अब जहं देखहु तह दुखहि दुख दिखाई
हां हां ! भारत दुर्दशा न देखी जाई।''

(भारत दुर्दशा)

भारतेंदु ने अपनी लेखनी का प्रयोग जनता के लिए किया। वह अँग्रेजों की कूटनीति से देश की रक्षा करना चाहते थे। वह जानते थे कि धर्म की अंधी दौड़ में लोग अपने कर्तव्यों से विमुख हो रहे हैं। वह नाना कर्मकांडों और पाखंडों से घिरते जा रहे हैं। धर्म की विकृति जनता में भ्रम की स्थिति पैदा कर रही है। संकुचित मानसिकता के कारण लोगों में लोभ, भय, भेदभाव, द्वेष, निठल्लापन पनप रहा है। वह अपने लक्ष्य से विरत होने लगे हैं। भारतेंदु लिखते हैं –

''छोटे चित्त अति भीरु बुद्धि मन चंचल बिगत उंछाई।
उदर भरन-रत, ईसबिमुख सब भए प्रजा नरनाह।।
इनसो अंजू आस नहीं ये तो सब बिधि-बुधि-बल हीन।
बिना एकता बुद्धि -कला के भए सबहि बिधि दीन।।
हित अनहित पशु-पक्षी जाना पै ये जानहिं नाहिं।
भूले रहते आपुने रंग मैं फंसे मूढ़ता माहिं।।''

(भारत दुर्दशा)

'वैदिकी हिंसा' और 'प्रेमजोगिनी' में भी भारतेंदु ने वैष्णव महंतों की धूर्तता पर व्यंग्य किया है। वह भारतीय संस्कृति के विकास में धार्मिक रूढ़िवादिता, पाखंड, छुआछूत, ऊँच-नीच के भेदभाव को बाधक मानते हैं। उन्होंने पंडे -पुजारियों से लेकर पिछड़ेपन पर गर्व करने वाले बुद्धिजीवियों तथा अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए अँग्रेजों का साथ देने वाले सामंतों की भी खबर ली है। डॉ. रामविलास शर्मा स्पष्ट कहते हैं कि ''भारतेंदु ने जिस संस्कृति की नींव डाली, वह राष्ट्रीय थी। उसकी मूल भावना अँग्रेजी राज्य की लूट से देश की रक्षा करके उसकी उन्नति करना है।

उन्होंने रईसों, जमींदारों, राजाओं, पंडितों का मुँह न देखकर जनता को अपना भरोसा करना सिखाया। उन्होंने पढ़े लिखे लोगों से कहा कि जनता के बिना तुम अपाहिज हो। उन्होंने शिक्षित वर्ग को साधारण जनता से एकता कायम करना सिखाया। हिंदुओं और मुसलमानों से परस्पर भेद-भाव भूलकर देशोद्धार के लिए उन्होंने एक होने को कहा। अँग्रेजों ने जिस न्याय, पुलिस, कचहरी, फूट और आतंक की व्यवस्था की थी, भारतेंदु ने उसके

विपरीत जनता के हित – अहित को न्याय – अन्याय की कसौटी बनाया और अँग्रेजों की कूटनीति और आतंक दोनों का विरोध किया।''[1] 23 मार्च, 1874 की 'कविवचन सुधा' में ही भारतेंदु ने स्वदेशी आंदोलन का सूत्रपात कर दिया था। 'तदीय समाज' के सदस्यों के लिए स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग अनिवार्य कर दिया गया था। भारतेंदु मंडल के अन्य रचनाकारों ने भी उनके इस आंदोलन को मजबूत किया। प्रतापनारायण मिश्र ने 'देशी कपड़ा' शीर्षक निबंध में देशी लक्ष्मी और देशी शिल्प के उद्धार की बात की है। इस संदर्भ में ललित निबंधकार डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र ने ठीक ही कहा है कि– ''भारतेंदु युग के साहित्य में उन्नीसवीं शताब्दी के संपूर्ण राष्ट्रीय प्रयत्न और जातीय चेतना का जीवंत स्पर्श और यथार्थ आनयन हुआ है।''[2] स्वाधीनता के लिए बीसवीं सदी उर्वर भूमि तैयार करती है। लोकमान्य तिलक के आगमन से आंदोलन की गति तेज हो जाती है। 1906 के कांग्रेस के अधिवेशन में तिलक छा जाते हैं। उनकी निर्भीकता, निडरता, कष्ट सहने की क्षमता और आजादी की उत्कट आकांक्षा के नवयुवक दीवाने हो गए थे। हिंदी के कवि माखनलाल चतुर्वेदी भी इनमें से एक थे। वह तिलक के बारे में लिखते हैं–

''तेरी हुंकारों का फल था,
अगणित वीरों ने प्राण दिया,
राष्ट्रीय शक्ति ने तुझसे ही
अमृतसर में था भाग लिया।
तुझको अब कष्ट नहीं देंगे, हाथों में झंडा ले लेंगे,
मँडले के क्या, शूली के कष्टों को सादर झेलेंगे
इंग्लैंड नहीं नभमंडल में हम तेरे हैं, हो आवेंगे
तूने नरसिंह बनाये हैं,
अपना तिलकत्व दिखावेंगे।''[3]

उग्र राष्ट्रीयता तिलक युग की विशेषता है। उस समय पत्रकारिता देश सेवा का एक माध्यम थी। दुर्गा प्रसाद मिश्र, अंबिका प्रसाद बाजपेयी और बाबूराव विष्णु पराड़कर ने पत्रकारिता के माध्यम से देश में क्रांति का संचार किया और तिलक के विचारों से जनता को अवगत कराया। उस समय राष्ट्रभक्ति का अर्थ था सशस्त्र राजनीतिक क्रांति से जुड़ना। भारतमित्र, मारवाड़ी बंधु और नृसिंह ने अपने धर्म का पालन करते हुए न्याय और औचित्य की रक्षा की तथा सत्य को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। नृसिंह के अंक 4 में 'स्वराज की आवश्यकता' शीर्षक लेख से उसके उद्देश्य का पता चलता है– ''स्वराज्य की आवश्यकता भारतवासियों को इसलिए है कि विदेशी सरकार उनके अभाव – अभियोग के समझने में असमर्थ है। यदि आज यहाँ स्वराज होता, तो लाखों हिंदुस्तानी दुर्भिक्ष के कारण दाने–दाने को तरस कर प्राण न गँवाते ...... स्वराज के अभाव से ही प्रति वर्ष 45 करोड़ रुपये इस दरिद्र देश से इंग्लैंड चले जाते हैं!''[4]

बालगंगाधर तिलक, विपिनचंद्र पाल, लाला लाजपत राय और अरविंद घोष तत्कालीन राजनीति का नेतृत्व करते हुए स्वदेशी का प्रचार तथा विदेशी का बहिष्कार आंदोलन का संचार कर रहे थे। स्वदेशी भाषा और साहित्य पर भी जोर दिया जा रहा था। हिंदी साहित्य का द्विवेदी युग भी इसी समय प्रारंभ हुआ। सरस्वती के माध्यम से महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य के क्षेत्र में कट्टर राष्ट्रीयता का बिगुल बजाया। उन्होंने देश की दुर्दशा का चित्रण करने के साथ-साथ देशवासियों में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी, साथ ही 'संपत्ति

शास्त्र' नामक पुस्तक लिखकर उन्होंने भारतीयों में आर्थिक चेतना भी विकसित की। द्विवेदी जी की स्पष्ट धारणा थी कि जो शास्त्र भारत की निर्धनता की बात नहीं करता, यह प्रश्न नहीं उठाता कि देश की जनता निर्धन क्यों है और इसको दूर करने का उपाय क्या है, वह शास्त्र निरर्थक है। और इसके माध्यम से वह देश के बुद्धिजीवियों पर व्यंग्य करते हैं। द्विवेदी जी देश की निर्धनता का कारण अँग्रेजों को मानते हुए लिखते हैं– ''इस देश में अँग्रेजों के पधारते ही उनकी सत्ता का सूत्रपात होते ही– यहाँ की स्थिति में फेरफार शुरू हो गया। जो बातें संपत्ति शास्त्र की उत्पत्ति का कारण मानी गई हैं वे उपस्थित होने लगीं। यहाँ की संपत्ति इंग्लैंड गमन करने लगी। हुकूमत के बल पर इस देश के व्यापार की जड़ में कुठाराघात होने लगा।''[5] अँग्रेजों ने यहाँ आते ही सबसे पहले यहाँ की अर्थव्यवस्था पर प्रहार किया। नए सामंतवाद की स्थापना की, जो पहले की अपेक्षा अधिक क्रूर था। इसे स्पष्ट करते हुए द्विवेदी जी लिखते हैं–''पुराने जमाने में, हिंदुस्तान में, जमीन पर राजा का स्वामित्व न था। हर आदमी अपनी अपनी जमीन का मालिक था। राजा उससे सिर्फ उसकी जमीन की पैदावार का छठा हिस्सा ले लिया करता था। बस राजा का सिर्फ इतना ही हक था। वह एक प्रकार का कर था, जमीन का लगान नहीं।''[6] इससे यह स्पष्ट है कि लगान जनता के लिए अधिक घातक था, क्योंकि इसमें जमीन पर मालिकाना अधिकार अँग्रेजों का था, जबकि कर प्रजा की रक्षा के लिए लिया जाता था। द्विवेदी जी की स्थापनाओं से अँग्रेजी साम्राज्य का वास्तविक चेहरा सामने आ गया।

द्विवेदी युग के अन्य महत्वपूर्ण कवियों में मैथिलीशरण गुप्त का नाम विशेष रूप से लिया जाता है, जिन्होंने देश की समस्याओं, चुनौतियों को ध्यान में रखकर अपने काव्य का सृजन किया। ऐसा करते हुए उनके आँखों के सामने महावीर प्रसाद द्विवेदी की नैतिकता स्पष्ट थी। उनके लेखन और वैचारिकी पर द्विवेदी जी के प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है।

हिंदी कविता को रीतिकालीन पंक से बाहर निकालने का महत्वपूर्ण कार्य किया मैथिलीशरण गुप्त ने। दिसंबर 1914 की सरस्वती में उनका एक लेख छपा– 'हिंदी कविता किस ढंग की हो?' इसके माध्यम से उन्होंने द्विवेदी जी के रीतिवाद विरोधी अभियान में भाग लिया। रीतिवादी काव्य भाषा पर अपना मत व्यक्त करते हुए वह लिखते हैं–''नूपुरों का रव ही उसमें अधिक सुन पड़ता है और तरह की ध्वनियाँ कम सुनाई देती हैं। उसमें आवेग हो सकता है, पर संयम नहीं, असंयम अवश्य है। ऊपर से वह मधुर अवश्य हुई, पर उसके भीतर ही भीतर एक ऐसी चीज है, जो हृदय को अवश कर देती है। उससे हमारी नाड़ियों में जीवनी शक्ति नहीं दौड़ती। हाँ, रक्त– संचालन का वेग वह अवश्य बढ़ा देती है। शब्द– संबंधी विभूति उसमें अवश्य है, पर उच्च भावों की सहानुभूति विरल है। लोकानुभूति तो और भी विरल है। फिर कहिए कोरी विभूति को लेकर क्या करें? आप बड़े संपत्ति– साली हैं, परंतु यदि जनसाधारण के साथ आपके हृदय में सहानुभूति नहीं तो उस संपत्ति से उन्हें क्या लाभ? इसी कारण से हमारी कविता का संबंध सर्वसाधारण के साथ न रह सका।''[7]

गुप्तजी जनसाधारण के प्रति सहानुभूति के साथ सामाजिक आधार की व्यापकता पर बल देते हैं। लोकानुभूति को महत्वपूर्ण मानते हैं। चूँकि रीतिवादी कविता का सामाजिक आधार संकुचित है। इसलिए वह जनसाधारण के लिए उपयोगी नहीं है। राष्ट्रीय उत्थान के लिए जनता का सहयोग आवश्यक है।

गुप्तजी ने राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर 'जयद्रथ वध' की रचना की। इसमें बंग भंग की असफलता से उपजे स्वदेशी आंदोलन की गूँज सुनी जा सकती है। इस आंदोलन को लाला लाजपत राय, बिपिनचंद्र पाल और अरविंद घोष जैसे गरमपंथी नेताओं का साथ मिला। पर नरमपंथी नेताओं के दिमाग में कुछ और ही चल रहा था, जिसके कारण दोनों के बीच संघर्ष बढ़ता गया और 1907 में कांग्रेस विभाजित हो गई। इसका दुष्प्रभाव यह हुआ कि जनता में निराशा फैलने लगी। लेकिन इसी समय गुप्तजी ने अपनी कविताओं के माध्यम से जनता में ऊर्जा का संचार किया। वह लिखते हैं–

''सब लोग हिल मिलकर चलो, पारस्परिक ईर्ष्या तजो,
भारत न दुर्दिन देखता, मचता 'महाभारत' न जो।
हो स्वप्नतुल्य सदैव को सब शौर्य सहसा खो गया,
हां! हां! इसी समराग्नि में सर्वस्व स्वाहा हो गया।।''
(जयद्रथ वध)

मैथिलीशरण गुप्त प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात को स्पष्ट करते हैं। महाभारत का प्रसंग भी वह इसी दृष्टि से लेकर आते हैं। जिस तरह महाभारत घरेलू फूट का परिणाम था, उसी तरह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को भी आंतरिक फूट और कलह प्रभावित कर रही थी। इस संदर्भ में 'भारतमित्र' में प्रकाशित 'स्वदेशी आंदोलन' शीर्षक कविता को देखा जा सकता है। जो इस प्रकार है-

देख देश को अपने ख्वार, बंगनिवासी उठे पुकार।
आंगन में दीवार बनाई, अलग किए भाई से भाई।
भाई से किए भाई दूर, बिना विचारे बिना कुसूर।
आओ एक प्रतिज्ञा करें, एक साथ सब जीवें मरें।
चाहे बंग होय सौ भाग, पर न छूटे अपना अनुराग।
भोग विलास सभी को छोड़, बाबूपन से मुंह लो मोड़।
छोड़ो सभी विदेशी माल, अपने घर का करो खयाल।[8]

इस कविता में स्वदेशी आंदोलन का वास्तविक चेहरा मुखर हो गया है। वहीं गुप्तजी की कविता समय के अनुसार अर्थ ग्रहण करती है। उसके भाव धारदार होते जाते हैं। नंदकिशोर नवल अपनी पुस्तक 'मैथिलीशरण' में स्पष्ट कहते हैं कि- '''जयद्रथ वध की रचना के समय भारतीय राजनीति में न गांधी का पदार्पण हुआ था और न नेहरू का। एक- डेढ़ दशक के बाद ही जब नई युवा पीढ़ी अस्तित्व में आ गई, तो उन्होंने पाया कि उनके नेता बदल गए हैं और उनकी जगह गांधी और नेहरू ने ले ली है। उसने कौरव के रूप में अपने शत्रु अंग्रेजी हुकूमत को देखा, कृष्ण के रूप में गांधी को, यद्यपि वे जिस संघर्ष का नेतृत्व कर रहे थे, वह अहिंसात्मक था, और अर्जुन के रूप में गरमपंथी नेता नेहरू को। अभिमन्यु युवा शक्ति का प्रतीक बन गया, जिसके लिए सबसे बड़ा मूल्य था- आत्म बलिदान।''[7] यह कविता अपने कवित्व के लिए तो लोकप्रिय थी ही, लेकिन इसकी महत्ता तब और अधिक बढ़ गई, जब यह जातीय काव्य के रूप में जनता में स्वीकृत हो गई।

गुप्तजी ने भारतीय परंपरा को अपने काव्य में स्थान दिया और यह दिखाया कि वर्तमान और अतीत में कितना वैषम्य है। हम अपने गौरवपूर्ण इतिहास और परंपरा को भूलते जा रहे हैं, जिसका परिणाम वर्तमान की दुर्दशा है। कवि अतीत को याद कर वर्तमान से सीख लेकर सुंदर भविष्य का निर्माण करना चाहता है। 'भारत भारती' के माध्यम से वह जनसाधारण को सचेत करता है। पौराणिक घटनाओं की चर्चा करते हुए वह लिखता है-

''आमिष दिया अपना जिन्होंने श्येन- भक्षण के लिए,
जो बिक गए चांडाल के घर सत्य-रक्षण के लिए!
दे दीं जिन्होंने अस्थियां परमार्थ- हित जानी जहां,
शिवि, हरीशचंद्र, दधीचि- से होते रहे दानी यहां।।''
(भारत- भारती)

कवि उस भारत को याद करता है, जो विद्या, कला-कौशल और सभ्यता में संसार का शिरोमणि था। लेकिन वर्तमान में इन्हीं विशेषताओं का शोचनीय अभाव है। वह ऐसी कविता का आकांक्षी है, जिसमें हमारी प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनति का वर्णन भी हो, साथ ही भविष्य के लिए प्रोत्साहन भी। यद्यपि इस दिशा में उसकी लेखनी कार्यरत रही। वह सामाजिक दुरावस्था के कारणों की पड़ताल करता है। और उन दोषों को ढूँढ़ निकालता है, जिसके कारण हम हँसी के पात्र बने थे। वह जानता है कि-''जब तक हमारी बुराइयों की तीव्र आलोचना न होगी, तब तक हमारा ध्यान उनको दूर करने की ओर समुचित रीति से आकृष्ट न होगा।'' (भारत- भारती की भूमिका से) वर्तमान खंड में कवि कह उठता है-

''दुर्भिक्ष मानो देह धर के घूमता सब ओर है,
हा! अन्न! हा! हा! अन्न का रव गूंजता घनघोर है!
सब विश्व में सौ वर्ष में, रण में मरे जितने हरे,
जन चौगुने उनसे यहां दस वर्ष में भूखों मरे''
(भारत- भारती)

पराधीनता और दमन के विरुद्ध संघर्ष में मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर और निराला के काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक नवजागरण की चेतना प्रस्फुटित हुई। इससे लोगों में भारतीयता का बोध उत्पन्न हुआ तथा राष्ट्रीयता के प्रति विश्वास पनपा। ब्रिटिश शासन के प्रति घोर विद्रोह की भावना जागृत हुई।

इसी कड़ी में दिनकर काव्य की राष्ट्रीय चेतना को भी देखा जा सकता है। उनकी कविताओं में वह आग है, जो स्वतंत्रता संघर्ष में गर्माहट भरती है। स्वतंत्रता संग्राम को उन्होंने कई कोणों से महसूस किया तथा उसे अपनी कविताओं में मुखर किया। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उनकी लेखनी धारदार बनी रही। अँग्रेजी हुकूमत में नौकरी करते हुए सरकार के विरुद्ध लिखना आसान नहीं था। लेकिन उन्होंने कभी भी राष्ट्रीय मूल्यों की अवहेलना नहीं की। उनमें एक तरफ जहाँ पराधीनता की पीड़ा दिखती है, वहीं दूसरी तरफ अतीत का गौरव गान भी। वह कह उठते हैं–

''ओ, मौन तपस्या -लीन यती!
पल भर को तो कर दृगुन्मेष!
रे ज्वालाओं से दग्ध,
विकल है तड़प रहा पद पर स्वदेश।
सुखसिंधु, पंचनद, ब्रह्मपुत्र,
गंगा, यमुना की अमिय- धार
जिस पुण्यभूमि की ओर बही
तेरी विगलित करुणा उदार,
जिसके द्वारों पर खड़ा
क्रांत सीमापति! तूने की पुकार,
पद-दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार।''

(हिमालय के प्रति)

दिनकर पराधीनता के दर्द को जनता में महसूस कर रहे थे। उन्हें लग रहा था कि इस प्रतापी भूमि पर आज संकट के बादल मँडरा रहे हैं–''रे आन पड़ा संकट कराल/व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे डंस रहे चतुर्दिक विविध व्याल।'' यह वही दौर था, जब एक तरफ भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद आदि का प्रभाव युवाओं पर बढ़ रहा था और दूसरी तरफ कांग्रेस किसानों को आकृष्ट करने के लिए बारदौली में किसान सत्याग्रह का आयोजन कर रही थी। दिनकर ने बारदौली सत्याग्रह पर भी लिखा पर धीरे-धीरे वह उग्र राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर होने लगे, रेणुका और हुंकार की कविताएँ इसका प्रमाण हैं। दिनकर यूँ ही उग्र नहीं हुए, वह देख रहे थे कि गाँधी जी नमक सत्याग्रह छोड़कर भी गोलमेज सम्मेलन में चले गए, वही क्रांतिकारियों ने अँग्रेजी साम्राज्य को चुनौती दी। दिनकर लिखते हैं– ''प्यारे स्वदेश के हित अंगार मांगता हूं।/चढ़ती जवानिओं का श्रृंगार मांगता हूं।'' (आग की भीख) दरअसल, उनका साहित्य राष्ट्रीय जागरण का साहित्य है। विद्रोह और विप्लव के हुंकार का साहित्य है।

हम देखते हैं कि छायावादी साहित्य का तेवर भी राष्ट्रीयता का रहा है। इसने एक ओर जहाँ सामंती बेड़ियों को तोड़ा वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीयता के ओजपूर्ण गीत भी गाए। डॉ. शंभुनाथ ने ठीक ही लिखा है कि–''छायावादी कवियों के लिए अपने अनुभव का संसार काफी महत्वपूर्ण था, हालांकि वे कल्पना करते थे, स्वप्न बुनते थे। उनके स्वच्छंदतावादी अनुभव का एक उदात्त धरातल है, पर यह राष्ट्रीय मुक्ति के प्रश्नों से तटस्थ नहीं है। नवजागरण और छायावाद का काल एक तरह से मनुष्य के आदर्शवादी पुनर्निर्माण का काल है। जीवन का जो 'आनंदपूर्ण स्वर्ग' उसने खो दिया था, उसे अपने 'दुखदग्ध जगत' में पुन: पाने का काल।''[10] इस काल में संघर्षरत जाति के जीवन दर्शन का जीवंत चित्रण हुआ है।

निष्कर्ष : अत: यह स्पष्ट है कि बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, भगत सिंह, महात्मा गाँधी, सुभाषचंद्र बोस आदि नेताओं के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीयता अपने चरम पर पहुँच गई। इनके प्रभाव से देश में रचनात्मक बयार-सी चल पड़ी। हिंदी कविता ने अपने गौरवपूर्ण इतिहास की झाँकी प्रस्तुत कर वर्तमान को सुनहरा भविष्य दिया। मैथिलीशरण गुप्त से लेकर माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी और दिनकर के काव्यालोक ने जनता के हृदय में प्रकाश भर दिया। राष्ट्रप्रेम की ऐसी लहर शायद ही कहीं उठी हो। साहित्य

का चाहे द्विवेदी युग हो या छायावाद युग सभी जगह राष्ट्रीयता की लहर उठने लगी। हिंदी पत्रकारिता ने भी विदेशी सरकार का खुलकर विरोध किया। कलकत्ता के प्रमुख पत्र उदंतमार्तंड, बंगदूत, भारत मित्र से लेकर सारसुधानिधि , उचितवक्ता, नृसिंह, मतवाला, विशाल भारत आदि ने हिंदी समाज में राजनीतिक और साहित्यिक चेतना का संचार किया। इन पत्रों ने राष्ट्रीयता के विकास के लिए अथक प्रयास किया। इस तरह राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में क्रांति लाने का दायित्वपूर्ण काम साहित्य और पत्रकारिता ने किया है। हिंदी से इतर अन्य भारतीय भाषाओं के रचनाकारों ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण काम किया है। कृष्णदत्त पालीवाल के शब्दों में कहूँ तो–''भारतीय भाषाओं के सर्जनशील–साहित्यकार देश–रक्षा और देश भक्ति के प्रति खुले मन से समर्पित होते गए। अनेकता में एकता स्थापित करने की बात नारा नहीं रही, हमारा नैतिक कर्तव्य बन गई। इस प्रकार इस राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता ने मानव और देश के सर्वोच्च मूल्यों की महत्व प्रतिष्ठा में सृजनात्मकता को सक्रिय रखा है। आज हमारी आधुनिक राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता अपने विचार संपदा में इतनी पुष्ट है कि कोई भी देश अपनी इस गौरवपूर्ण थाती पर गर्व कर सकता है।''[11] हमारे साहित्यकारों ने जागरण की भूमि तैयार कर भारतीय अस्मिता और जातीयता को विस्तार दिया। ❑

संदर्भ :

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, प्रथम छात्र संस्करण– 2012, पृष्ठ संख्या 93–94
2. हिंदी पत्रकारिता– कृष्णबिहारी मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ , सातवां संस्करण 2011 पृष्ठ संख्या 117
3. नवजागरण की इतिहास चेतना, संपादक– प्रदीप सक्सेना, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण– 2017, पृष्ठ संख्या– 142
4. हिंदी पत्रकारिता, कृष्णबिहारी मिश्र ,भारतीय ज्ञानपीठ ,सातवां संस्करण– 2011 ,पृष्ठ संख्या 302
5. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, तीसरी आवृत्ति– 2010, पृष्ठ संख्या– 21
6. वही, पृष्ठ संख्या 22
7. वही , पृष्ठ संख्या 307
8. हिंदी पत्रकारिता, कृष्णबिहारी मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, सातवां संस्करण– 2011, पृष्ठ संख्या 271
9. मैथिलीशरण, नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, पहला संस्करण– 2011, पृष्ठ संख्या 120
10. राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन और प्रसाद, संपादक– शंभुनाथ, नयी किताब प्रकाशन, प्रथम संस्करण– 2013, भूमिका से, पृष्ठ संख्या –5
11. मैथिलीशरण गुप्त प्रासंगिकता के अंत:सूत्र, कृष्णदत्त पालीवाल, वाणी प्रकाशन, वाणी संस्करण– 2004, पृष्ठ संख्या –156

स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी उपन्यासों का योगदान

सार संक्षेप : सन 1857 ई. में भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का आरंभ हुआ, जिसमें अँग्रेज की विजय हुई, किंतु इस युद्ध से देशवासियों में स्वाधीनता की चेतना जागृत हो गई। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम एक तरफ गाँधी जी के नेतृत्व में चल रहा था तो दूसरी तरफ गोखले, लाला लाजपतराय, सुभाष चंद्र बोस, चंद्रशेखर आजाद, भगत सिंह अपने-अपने अंदाज में अँग्रेजों से संघर्ष कर रहे थे। साहित्यकारों ने भी साहित्य के माध्यम से स्वाधीनता आंदोलन में योगदान दिया। कविता, कहानी, निबंध, उपन्यास जैसी विधा महत्वपूर्ण हैं। गाँधीवाद, आश्रम, मजदूर आंदोलन, कृषक आंदोलन, समाजवाद, नारी जागरण, अछूतोद्धार, हिंदू-मुस्लिम एकता, पूँजीपति व्यवस्था, सांप्रदायिक दंगा का चित्रण अधिकांश उपन्यासों में हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं बिंदुओं पर विचार किया जाएगा।

बीज शब्द : स्वाधीनता, आंदोलन, हिंदी, उपन्यास ।

उर्मिला भगत

शोधार्थी, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी
असम-781001
मो. 7002868098
ई-मेल : ubs.bns@gmail.com

भूमिका :

किसी भी देश के निर्माण और विकास में साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण होता है। भारतीय साहित्य हमेशा मानवीय, राष्ट्रीय एकता और अखंडता का पक्षधर रहा है। हिंदी उपन्यासकारों ने स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान दिया है। साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से सधारणजन को जागृत करने का सफल प्रयास किया। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में स्वतंत्रता आंदोलन का यथार्थ चित्रण किया है। गाँधीवाद, आश्रम, मजदूर आंदोलन, कृषक आंदोलन, समाजवाद, नारी जागण, अछूतोद्धार, हिंदू-मुस्लिम एकता, पूँजीपति व्यवस्था, सांप्रदायिक दंगा का चित्रण अधिकांश उपन्यासों में हुआ है।

अध्ययन का महत्व : इस शोध के द्वारा स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी उपन्यासों का योगदान का अध्ययन करना है तथा आजादी के महत्व को स्थापित करना है।

अध्ययन का शीर्षक : प्रस्तुत शोध-पत्र का शीर्षक है स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी उपन्यासों का योगदान।

अध्ययन का उद्देश्य : आलोच्य विषय पर शोधपरक अध्ययन का उद्देश्य है- भारत के नवनिर्माण में मार्ग प्रस्तुत करना तथा देशवासियों में एकता और स्वाधीनता के महत्व को स्थापित करना।

अध्ययन का सीमांकन : इस अध्ययन का सीमांकन स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी उपन्यासों का योगदान विषय से संबंधित उपन्यासों को किया गया है।

अध्ययन में व्यवहृत पद्धति एवं उपाय : प्रस्तुत शोध-पत्र में आधार भूत

सामग्री के रूप में स्वाधीनता आंदोलन से संबंधित हिंदी उपन्यासों तथा समीक्षात्मक ग्रंथों की सहायता ली गई है तथा इसमें अपनाई गई पद्धति व्याख्या-विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक है। साथ ही एम.एल.ए. शोध पद्धति को यहाँ आधार रूप में अपनाया गया है।

विश्लेषण एवं निर्वचन : तत्कालीन युगीन संदर्भों ने तत्कालीन साहित्य को प्रभावित किया है। आधुनिक हिंदी साहित्य देशवासियों को जागृत करने का कर्तव्य निभा रहा था। प्रेमचंद पूर्व, प्रेमचंद युगीन तथा प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासकार अपने युगीन प्रभावों से अछूते नहीं रहे, बल्कि यह कहना सही होगा कि आधुनिक काल के

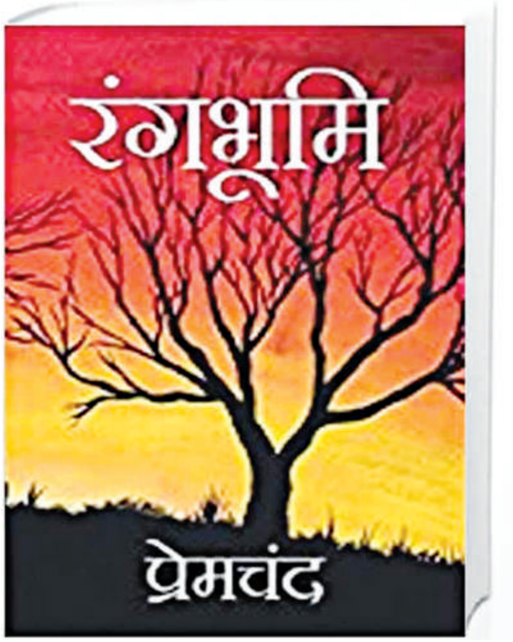

उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्वतंत्रता के आंदोलन में अपना योगदान दिया है।

प्रेमचंद के वरदान (1921) में बंगभंग के द्वारा नारी के हृदय में राष्ट्रीय प्रेम के जागरण को चित्रित किया है। इस उपन्यास की पात्रा सुवामा देवी देशभक्त पुत्र की कामना करती है। देश की स्वाधीनता और विकास के लिए प्रतापचंद अहिंसा नीति का मनोभाव व्यक्त करता है।

रंगभूमि (1925) प्रेमचंद का गाँधीवादी परंपरा का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास में गाँधी के असहयोग आंदोलन का यथार्थ चित्रण किया गया है। सूरदास गाँधीवाद का सजीव प्रतीक है। सूरदास का संघर्ष पूँजीवाद और उपनिवेशवाद द्वारा कुचली और शोषित जनता का संघर्ष है। गाँधी जी के नेतृत्व में सधारणजन अपने देश के लिए सर्वस्व लुटाने के लिए तैयार रहते थे। साम्राज्यवाद के विरोध में जाकर अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहे थे। एक स्थान पर सूरदास कहता है, ''गांधीवादिता में पगा हुआ ग्रामीण जनता का प्रतीक है उसके जीवन में आशावादिता तथा अजेयता सन्निहित है।'' (प्रेमचंद, 237. 2009)

इस उपन्यास में जनसेवक मिस्टर क्लर्क और राजा महेन्द्र अँग्रेजों के नीति के पक्षधर हैं तो विनय, सोफिया, प्रभु सेवक जागरूक तथा देश भक्त युवा पीढ़ी है।

कायाकल्प (1926) में प्रेमचंद ने असहयोग आंदोलन के उपरांत कांग्रेस खिलाफत आंदोलन के विघटन से उत्पन्न हिंदू-मुस्लिम समस्या का चित्रण किया है, जो साधारण बात हो गई थी। कायाकल्प में लेखक ने इस समस्या के कारणों पर भी प्रकाश डाला है।

यद्यपि गबन (1931) उपन्यास का आरंभ सामाजिक समस्या से होता है, लेकिन अंत राष्ट्रीय भावना से होता है। गबन में पूँजीवादी शोषण, पुलिस के झूठे मुकदमे और अत्याचार का वर्णन किया गया है। राजनीतिक नेताओं पर झूठे मुकदमे चलाकर राष्ट्रीय भावना को कुचलने का प्रयास होता है। गबन में वर्णित मुकदमे मेरठ षड्यंत्र की याद दिलाते हैं। नारी जागरण के रूप में जलपा भारतीय नारी की प्रतीक है।

जलपा की भावना नारी की भावना है. जो नर के साथ भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष में देश प्रेम की ज्वाला सुलगा देती है। (कोठारी, कोमल. 151)

कर्मभूमि (1932) में लेखक ने गाँधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम से अनेक तथ्यों का वर्णन किया गया है। अछूतोद्धार, कृषक उत्थान, नारी जागरण, हिंदू-मुस्लिम एकता जैसे तथ्यों का वर्णन इस उपन्यास में हुआ है। कर्मभूमि में मंदिर प्रवेश सत्याग्रह गाँधीवादी आंदोलन की देन है। कर्मभूमि सविनय अवज्ञा आंदोलन से संबंधित है। अमरकांत और सुखदा आंदोलन के राष्ट्र नेता हैं।

जागरण (1927) श्रीनाथसिंह का गाँधीवादी उपन्यास है। इसकी कथा-वस्तु गाँधी जी के ग्राम्य जागरण पर आधारित है।

राम-रहीम, गांधी टोपी, पुरुष और नारी तथा पूरब-पश्चिम राधिका रमण के द्वारा लिखित विभिन्न राष्ट्रीय आंदोलन से संबंधित उपन्यास हैं। राम-रहीम (1936)

अँग्रेजी हुकूमत की नीति फूट डालो राज करो से चिंतित होकर हिंदू-मुस्लिम एकता को लेकर लिखा गया उपन्यास है। गांधी टोपी (1938) की कथा-वस्तु 1930-38 तक की राजनीतिक घटनाएँ हैं।

दो पहलू (1940) यज्ञदत्त शर्मा का राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन से संबंधित उपन्यास है। उस उपन्यास में दो धारा क्रंतिकारी और गाँधीवाद को आधार बनाया गया है। दोनों विचारधारा के लोग अपने-अपने ढंग से देश को मुक्त करने का प्रयास करते हैं।

मन्मथनाथ गुप्त के द्वारा लिखित उपन्यास जययात्रा (1938) की कथा-वस्तु अवज्ञा आंदोलन के समय में घटित हिंदू और मुस्लिम दंगों पर आधारित है। भगत सिंह आदि को फाँसी से न छुड़ा पाने के कारण कानपुर में सांप्रदायिक दंगे हुए थे, विद्यार्थी जी को अपने प्राण गँवाने पड़े थे। महिलाओं के साथ हुए अमानवीय अत्याचार किए गए थे। जययात्रा में बलात्कार से उत्पन्न संतान के प्रति नारी-मन: स्थिति का व्यंग्यपूर्ण चित्रण है। लेखक ने दंगों का यथार्थ चित्रण किया है।

भगवती प्रसाद बाजपेयी द्वारा लिखित उपन्यास निमंत्रण (1942) में गाँधीजी के आंदोलनों को आधार बनाया गया है। लेखक ने मजदूरों और भिखमंगों को अपने साहित्य का हीरो बनाया है। इस उपन्यास में गाँधीजी के साम्यवादी भाव को व्यक्त किया गया है। चलते-चलते (1951) उपन्यास की कथा-वस्तु स्वातंत्र्य संग्राम में पूँजीवादी व्यवस्था पर प्रहार किया गया है।

यशपाल ने दादा कामरेड (1941) में क्रांतिकारियों के जीवन के आदर्शों को वाणी दी है। लेखक ने मजदूर आंदोलन को महत्व देते हुए तथा गाँधीवाद का विरोध करते हुए साम्यवाद का समर्थन किया है। दादा के रूप में लेखक ने चंद्रशेखर आजाद और हरिश के रूप में स्वयं को चुना है। देशद्रोही (1943) उपन्यास में लेखक ने कांग्रेस विभाजन, समाजवादी आंदोलन की स्थापना, क्रांतिकारियों का बम बनाना, उनका पकड़ा जाना और विश्वनाथ का गिरफ्तार होने की घटना का वर्णन किया है। पार्टी कामरेड (1946) के द्वारा लेखक ने कम्युनिस्ट पार्टी का दलीय अनुशासन, नियम, सिद्धांत उनके कार्य-कलाप, राजनीतिक दर्शन, जीवन पद्धति को पाठकों के समक्ष लाने का प्रयास किया है। भवरिया पूँजीपति मनोवृति का पात्र है, जो कामरेड गीता के संपर्क में आकर नाविक सैनिक विद्रोह में शामिल हो जाता है। लेखक ने कम्युनिस्टों के द्वितीय विश्वयुद्ध में शामिल होने के कारण उनपर लगाए गए गद्दारी के लांछन का उत्तर देते हुए उन कारणों पर प्रकाश डाला है, जिन कारणों से कम्युनिस्ट अँग्रेजों का साथ दे रहे थे। एक स्थान पर लेखक स्वयं कहते हैं- ''पार्टी कामरेड की कहानी आज की ही कहानी है। पाठक के चारों ओर मौजूद परिस्थितियों की कहानी है।'' (यशपाल, 5)

शेखर : एक जीवनी (1940-44) अज्ञेय द्वारा लिखित उपन्यास है, जो दो भागों में प्रकाशित हुआ था। प्रथम भाग 1940 में तथा दूसरा 1944 में प्रकाशित हुआ था। राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव लेखक की लेखनी में दिखाई देता है। उस समय देश में आजादी के लिए हिंसा और अहिंसा दोनों तरह से लोग संघर्ष कर रहे थे। यही कारण है कि शेखर: एक जीवनी का पात्र शेखर, उसके पिता बाबा मदनसिंह और शशि हिंसा और अहिंसा पर अपना-अपना दृष्टिकोण रखते हैं। शेखर आरंभ में गाँधीवादी है। गाँधीजी के असहयोग आंदोलन से प्रभावित होकर विदेशी कपड़ों को जला देता है। स्वभाषा स्वदेशी के प्रति आस्था दृढ़ हो जाता है। गाँधाजी की तरह ही शेखर हरिजनोद्धार का कार्य करता है। रात में पाठशाला चलाता है। आगे चलकर वह एक क्रांतिकारी बन जाता है और जेल जाता है। स्वयं अज्ञेय एक सक्रिय क्रांतिकारी रहे और उन्हें जेल भी जाना पड़ा था।

इसके अतिरिक्त वृंदावन लाल का प्रत्यागत, प्रतापनारायण श्रीवास्तव का विदा बयालीस, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का अप्सरा, अलका और कुल्लीभाट, चतुरसेन शास्त्री का आत्मदाह, ईलाचंद जोशी का मुक्तिपथ, गुरूदत्त का पथिक, रामेश्वर शुक्ल अंचल का चढ़ती धूप, नई ईमारत, उल्का, रांगेय राघव का विषाद मठ, गुरूदत्त का पथिक, स्वराज्यदान, देश की हत्या, उपेन्द्रनाथ अश्क का गिरती दीवार अमृतलाल नागर का महाकाल आदि हैं।

1947 के बाद भी स्वतंत्रता आंदोलन को विषय बनाकर अनेक उपन्यास लिखे गए हैं। भारतवर्ष को दो हिस्से में अँग्रेजी सरकार ने बाँट दिया- भारत और पाकिस्तान। इस बँटवारे से पूरे देश में सांप्रदायिक दंगा फैल गया, जिसमें देश जल उठा था। आज भी लोगों के मन-मस्तिष्क पर उसका प्रभाव देखा जा सकता है। यही कारण है कि आजादी के बाद भी लेखक उस सांप्रदायिक दंगों को विषय बनाकर साहित्य की रचना

कर रहे हैं।

यशपाल ने झूठा सच (1958) में इस त्रासदी का चित्रण बड़े ही संवेदनशील और रोमांचक ढंग से किया है। लेखक ने तत्कालीन लाहौर में रहने वाले हिंदुओं की मानसिक स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है। लौटते हुए मुसाफिर (1961) में कमलेश्वर ने देश विभाजन और सांप्रदायिक दंगों के भयानक और अमानवीय स्वरूप को अंकित किया है। भीष्म साहनी ने तमस (1973) में देश विभाजन की त्रासदी और सांप्रदायिक दंगों की जीवंत तस्वीर खींची है। लेखक स्वयं उस सांप्रदायिक दंगे का भोक्ता होने के कारण उसका अपना अनुभव और वेदना उपन्यास में मुखरित हो उठे हैं।

इसी तरह अमृतलाल मदान के उपन्यास सिन्धुपुत्र (1991), दीपचन्द निर्मोही का उपन्यास और कितने अंधेरे (1995), हरदर्शन सहगल का उपन्यास टूटी हुई जमीन (1996), द्रोणवीर कोहली का उपन्यास वाह कैम्प(1998), प्रताप सहगल का उपन्यास अनहदनाद (1999) में देश विभाजन की त्रासदी और सांप्रदायिक दंगे के परिणामों का यथार्थ चित्रण किया गया है।

1947 के सांप्रदायिक दंगे से भारतीय मुसलमानों के जिंदगी पर पड़ने वाले प्रभावों का चित्रण अनेक उपन्यासों में हुआ है। राही मासूम रजा के आधा गाँव (1966), टोपी शुक्ला (1969), ओस की बूँद (1970) दिल एक सादा कागज (1973) आदि उपन्यासों में भारतीय मुसलमानों के जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों का चित्रण किया गया है।

ज्योतिष जोशी ने अपने उपन्यास सोनबरस (2000) में सांप्रदायिक दंगे का चित्रण किया है। भगवानदास मोरवाल ने काला पहाड़ (1999) में भी सांप्रदायिक दंगे का चित्रण किया है। इस उपन्यास में लेखक ने बाबरी मस्जिद प्रकरण को उठाया है।

राम मंदिर का निर्माण और बाबरी मस्जिद प्रकरण राजनीतिक दृष्टि से एक बहुत बड़ा मुद्दा बन गया था, हालाँकि उच्चतम न्यालय ने इस झगड़े को खत्म कर राम मंदिर बनाने का इजाजत दे दी है। कमलेश्वर ने कितने पाकिस्तान (2000) में ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर स्पष्ट करना चाहा है कि बाबरी मस्जिद का निर्माण बाबर ने नहीं किया था, क्योंकि बाबर कभी सरयू के इस पार अयोध्या आया ही नहीं था। अँग्रेजों ने भारतीयों को आपस में लड़ाने के लिए ऐतिहासिक तथ्य को नष्ट कर गलत गजेटियर प्रस्तुत किया। इस संबंध में ए . फ्यूहरर का मत है –''इस खुतबे को वक्त ने नहीं, उन लोगों ने बरबाद किया था जो इस बाबरी मस्जिद और राम मंदिर के झगड़े को जिंदा रखना चाहते हैं।'' (सिंह. 2016:99)

निष्कर्ष :

इस विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्वाधीनता आंदोलन ने अनेक हिंदी उपन्यासों की रचना के लिए उपन्यासकारों को प्रेरित किया। स्वतंत्रता आंदोलन को आधार बनाकर लिखे गए उपन्यासों में तत्कालीन परिवेश का यथार्थ चित्र अंकित हुआ है। गाँधीवाद, आश्रम, मजदूर आंदोलन, कृषक आंदोलन, समाजवाद, नारी जागण, अछूतोद्धार, हिंदू-मुस्लिम एकता, पूँजीपति व्यवस्था का विरोध, देश के प्रति अनुराग, सांप्रदायिक दंगा का चित्रण अधिकांश उपन्यासों में हुआ है। लेखकों ने न केवल अपने समय के परिवेश का चित्र ही अंकित किया, अपितु साधारण जन को स्वाधीनता आंदोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लेने के लिए प्रेरित भी किया। स्वयं रचनाकारों ने प्रत्यक्ष रूप से स्वाधीनता आंदोलन में भाग लिया । ❑

सहायक ग्रंथ :

प्रेमचंद, रंगभूमि, प्रथम संस्करण, दिल्ली : नई सदी की बुक हाउस, 2009

प्रेमचंद, कर्मभूमि, प्रथम संस्करण, वाराणसी : संजय बुक सेंटर, 2003

राय, गोपाल, हिंदी उपन्यास का इतिहास, छठा संस्करण, नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2016

कमलेश्वर, कितने पाकिस्तान, प्रथम संस्करण, दिल्ली : राजपाल एंड संस, 2000

यशपाल, झूठा सच, सास्करण छात्रोपोयी, दिल्ली : लोकभारती प्रकाशन, 2009

चव्हाण, अर्जुन, समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष, प्रथम संस्करण. दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2012

डॉ. बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, नौवाँ संस्करण, दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2017

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में असमीया महिलाओं का योगदान

किरण कलिता

शोधार्थी, हिंदी विभाग
असम विश्वविद्यालय
सिलचर, असम
मो. 9101722532
ईमेल : kalitakiran73@gmail.com

शोध-सार :

असमीया महिलाएँ सिर्फ अपने परिवार की देखरेख तथा कपड़ा बुनने में ही पारंगत नहीं हैं, बल्कि जब-जब देश पर अशांति, अराजकता ने घर किया है, तब-तब पुरुषों के समान कदम-से-कदम मिलाकर उन्होंने अपने वीरत्व का झंडा लहराया है। वह चाहे मुगलों का आक्रमण हो या ब्रिटिशों का कुशासन-असमीया महिलाओं ने हर समय जरूरत पड़ने पर घर से निकलकर जंग के मैदान में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया है।

स्वतंत्रता संग्राम में असमीया महिलाओं का जो आत्मोत्सर्ग है, वह इतिहास के पन्नों पर स्वर्णिम अक्षरों से लिपिबद्ध है। हर वर्ग के, हर उमर के, हर जाति-धर्म के असम में रहने वाली असमीया महिलाओं ने इस संग्राम में अपना सर्वस्व दान कर दिया था। घर परिवार को संभालने में हो या अपने पति तथा देशमातृ की रक्षा के लिए हो, हर समय असमीया महिला तैयार रहती हैं। इस लेख में हम उन्हीं महिला योद्धाओं के बारे में चर्चा करने जा रहे हैं, जिन्होंने हमें स्वतंत्र होने में मदद की।

बीज शब्द :

स्वतंत्रता, ब्रिटिश, महिला, शहीद, साहसी, आत्मोत्सर्ग, गोली, लाठी, तिरंगा, निपुण।

भूमिका :

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान देश के अन्य हिस्सों की तरह असम में भी अँग्रेजों के खिलाफ काफी विरोध हुआ था। पुरुष और महिला दोनों संघर्ष में कूद पड़े। कई लोगों ने देश की खातिर अपने प्राणों की आहुति दी और कई हमेशा के लिए अपंग हो गए। कुशल कोंवर, मणिराम देवान, कनकलता बरुवा, मुकुंद काकति, थगी सुत आदि की मृत्यु ने स्वतंत्रता आंदोलन को और तेज कर दिया था। भारत के स्वाधीनता संग्राम में असम की महिला समाज का जो योगदान है, वह इतिहास के पन्नों पर एक अलग ही स्थान प्राप्त

करता है। सबका स्वागत करने वाली, आतिथ्य में कोई कमी न रखने वाली असम मातृभूमि पर ब्रिटिशों ने जो शोषण-उत्पीड़न चलाया उसे तोड़ने हेतु किस प्रकार असमीया नारी समाज गाँधीजी के सत्याग्रह आंदोलन में कूद पड़ा था, ये भी एक स्वर्णिम इतिहास है। असम के उस समय के कट्टरवादी समाज के कठोर अनुशासन के जंजीर को तोड़कर असमीया महिलाएँ स्वदेश प्रेम से प्रेरित होकर अपने रसोईघर से निकलकर सड़कों पर चल रहे आमने-सामने की लड़ाई में कूद पड़ी थीं। असमीया महिलाओं ने मुक्ति वाहिनी का गठन किया था। लालुंग प्रभावती देवी, बिद्युतप्रभा देवी, नलिनीबाला देवी, गुनेस्वरी देवी आदि महान नारियों के नाम इस मुक्तिवाहिनी में शीर्ष स्थान पर थे।

1857 के सिपाही विद्रोह ने उत्तर-पूर्व में भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के प्रकोप को चिह्नित किया। मणिराम देवान और पियलि बरुला के आत्मसमर्पण के साथ धीरे-धीरे समाप्त हो रहे विद्रोह में रूपही आइदेउ और लुमेइ आइदेउ पर विद्रोह का समर्थन करने का आरोप लगाया गया और उन्हें दंडित किया गया।

1921 के असहयोग आंदोलन ने असम और उत्तर-पूर्व में व्यापक ब्रिटिश विरोधी संघर्ष का नेतृत्व किया। पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं ने भी बड़े पैमाने पर आंदोलन में भाग लेना शुरू किया और इसके पीछे मूल वजह थी 1921 में असहयोग आंदोलन के दौरान गाँधीजी की असम यात्रा। असम की महिलाओं को आजादी के लिए जगाने के लिए महात्मा गाँधी ने अपनी असम यात्रा के दौरान महिलाओं के लिए विशेष सभाओं का आयोजन किया। उन्होंने असम की महिलाओं को कपड़ा आंदोलन के माध्यम से देश को आजादी दिलाने की सलाह दी। असम की महिलाओं ने गाँधी की सलाह मानी और स्वतंत्रता आंदोलन में शामिल हो गईं। गाँधी की असम यात्रा के दौरान तरुण राम फुकन के घर के पास जुबिली फील्ड में आयोजित वस्त्रमेध यज्ञ में सैकड़ों असमीया महिलाओं ने विदेशी कपड़ों को जलाने में भाग लिया। गाँधी ने असम की अपनी यात्रा से लौटने पर 'यंग इंडिया' अखबार में 'लवली असम' नामक एक लेख लिखा और असमीया महिलाओं के कपड़ा उद्योग की प्रशंसा की।

असहयोग आंदोलन :

असहयोग आंदोलन के शुरुआती दौर में केवल कुलीन महिलाओं ने ही मोर्चा संभाला। इनमें हेमंत कुमारी देवी, नलिनीबाला देवी, स्नेहलता भट्टाचार्य, बिजुली फुकन, धर्मदा देवी और अन्य शामिल थीं। हालाँकि, बाद के चरणों में चंद्रप्रभा शइकीयानी और राजबाला दास सहित नई पीढ़ी की अधिकांश महिलाओं ने आंदोलन का नेतृत्व किया। स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करने और विदेशी वस्तुओं को जलाने के उद्देश्य से उस समय महिलाएँ असहयोग आंदोलन में शामिल हुईं। असहयोग आंदोलन के दौरान बराक घाटी में शराब विरोधी अभियान में भाग लेने के दौरान लालमाटि चाय बागान की एक महिला मजदूर मालती मेम उर्फ मुंगरी की अँग्रेजों के हाथों मौत हो गई। वह स्वतंत्रता संग्राम में शहीद होने वाली पहली असमीया और उत्तर-पूर्व में शहीद होने वाली पहली महिला थीं।

रत्नेश्वरी फुकननी और देवेश्वरी हजारिका पहली असमीया महिला थीं, जिन्हें असहयोग आंदोलन में अँग्रेजों के खिलाफ विरोध करने के लिए कैद किया गया था। ब्रिटिश पुलिस की लाल आँखों से न डरते हुए महिलाओं ने नशीली दवाओं की रोकथाम, स्वदेशी लोगों को अपनाने और विदेशियों को बाहर करने जैसे कार्यक्रम शुरू किए। उन्होंने 'तिलक स्वराज फंड' के लिए गाँवों और कस्बों से चंदा इकट्ठा किया और असम की महिलाओं ने इस फंड में अपने गहने और पैसे दान किए।

1926 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने पांडू में एक अधिवेशन आयोजित किया। खादी सत्र का मुख्य आकर्षण रहा। प्रतिनिधिमंडल शिविर, जिसमें कुल 25,000 लोग बैठ सकते थे, असमीया महिलाओं द्वारा

बुने हुए खादी के कपड़े से बनाया गया था। कांग्रेस के पांडू अधिवेशन के 750 स्वयंसेवकों में से 25 महिलाएँ थीं।

असम में पुरुषों की तरह महिलाओं ने भी अपने घरों से निकलकर इस स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और देशभक्ति की मिसाल कायम की। असम की बहादुर महिलाओं ने विभिन्न तरीकों से अँग्रेजों का विरोध किया, जिनमें से कई ने अपने प्राणों की आहुति दे दी। पेश हैं ऐसी ही कुछ महान महिलाओं के बारे में, जिन्होंने स्वराज प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व दान दिया।

1. कनकलता बरुवा :

सन 1942 का समय है। कनकलता बरुवा उस समय बिल्कुल यौवनावस्था में पहुँच चुकी थी। 17 वर्ष की आयु में कनकलता आजाद हिंद फौज में भर्ती होना चाहती थी, किंतु नाबालिक होने के चलते वह उसमें भर्ती नहीं हो पाई थी। तेजपुर में ज्योति प्रसाद अगरवाला के नेतृत्व में कासारी घर और थानों में कांग्रेस ने राष्ट्रीय झंडे फहराने का फैसला लिया था। इस काम के लिए एक स्वयंसेवक दल का गठन किया गया। उस स्वयंसेवक दल से ही 'करिम बा मरिम' यानी 'करूंगा या मरूँगा' मंत्र से दीक्षित होकर एक मृत्युवाहिनी का गठन किया गया। 18 वर्ष की युवा कनकलता भी बिना कुछ सोचे उस मृत्युवाहिनी से जुड़ गई। उस मृत्युवाहिनी में वह इकलौती महिला सदस्य थी।

भारत छोड़ो आंदोलन के 43वें दिन यानी 20 सितंबर 1942 को एक गुप्त सभा में थाने पर तिरंगा फहराने की योजना बनाई गई। तय योजना के अनुसार करो या मरो, वंदे मातरम, भारत माता की जय, इंकलाब जिंदाबाद के नारों का उद्घोष करके स्वतंत्रता सेनानियों का नेतृत्व करते हुए कनकलता अपने दोनों हाथों में तिरंगा थामे आगे बढ़ती जा रही थी। थाने के पास पहुँचते ही थाने के अधिकारी उनका रास्ता रोकने लगे। कनकलता के लाख समझाने पर भी थानेदार उन्हें आगे बढ़ने के लिए इजाजत नहीं दे रहे थे और बार-बार यह कह रहे थे कि और आगे बढ़ने से वह गोली चलाने का आदेश देंगे। पर स्वतंत्रता सेनानियों पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह लोग राष्ट्रीय ध्वज को लेकर आगे बढ़ने लगे। उसी समय गोली चलाने का आदेश हुआ और कनकलता को गोली लग गई। सिर्फ 18 वर्ष की उम्र में मातृभूमि के लिए कनकलता ने अपना सर्वस्व बलिदान दे दिया।

2. भोगेश्वरी फुकननी :

बरहमपुर नगांव जिले का एक ऐतिहासिक क्षेत्र है। 1942 में बरहमपुर की बहू भोगेश्वरी फुकननी भी भारत छोड़ो आंदोलन में हिस्सा लेने निकलीं।

कांग्रेस के भिन्न कार्यकलापों से बरहमपुर के अनेक प्रतिवादी स्थल इंकलाब जिंदाबाद की ध्वनि से गूँजित थे। बरहमपुर के शांतिरक्षकों ने एक समय पर अपने शिविर को पुलिस के हाथों से मुक्त कर लिया था और इसी का जश्न मनाते हुए भोजभात का आयोजन होता है। नतीजा यह हुआ कि खुशी का स्थान जल्द ही युद्धक्षेत्र में तब्दील हो गया।

पुलिस व सेना के पहुँचते ही वंदे मातरम के जयकारों

से गूँज उठा माहौल। हाथों में झंडे लिए आसपास के गाँवों के लोग जुलूस में निकले। रत्नमाला और भोगेश्वरी फुकननी ने पार्टी के सामने तिरंगा झंडा लहराया। पुलिस से भिड़ते ही कैप्टन फिंच ने सोलह साल की बच्ची रत्नमाला के हाथ से तिरंगा झंडा छीनने की कोशिश की। खींचातानी में रत्नमाला जमीन पर गिर गई और कप्तान फिंच ने झंडा छीन लिया। रत्नमाला और तिरंगा का ऐसा अपमान देखकर भोगेस्वरी फुकननी गुस्से से आग बबूला हो उठीं। गुस्से से उन्होंने अपने हाथ में लिए हुए राष्ट्रीय ध्वज के डंडे से फिंच के चेहरे पर वार किया। कैप्टन फिंच ने गुस्से में आकर अपनी रिवॉल्वर निकालकर भोगेश्वरी फुकननी के सिर में गोली मार दी। तारीख 20 सितंबर का था। स्वतंत्रता आंदोलन में असम की महिला शहीदों में से एक 57 वर्षीय भोगेश्वरी फुकननी की मृत्यु हो गई।

3. किरणबाला बोरा :

सन 1904 में नगांव शहर में किरणबाला बोरा का जन्म हुआ था। किरणबाला बोरा असम के एक स्वतंत्रता सेनानी और सामाजिक कार्यकर्ता थीं। उन्हें 1930 और 1940 के भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति में तथा नागरिक अवज्ञा आंदोलनों में अहम भागीदारी के लिए जाना जाता है।

1920 की गर्मियों ने इस विचार के पुनरुत्थान को देखा कि भारत को ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता हासिल करनी चाहिए, खासकर जलियांवाला बाग नरसंहार के बाद। गाँधी के नेतृत्व में, सैकड़ों लोगों ने पूरे भारत में अहिंसक विरोध प्रदर्शन में भाग लिया। किरणबाला, उन बलिदानों और चुनौतियों से प्रेरित थीं, जो स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं ने सहन किया और संग्राम में भाग लेने का फैसला किया। उन्होंने खुद को आंदोलन की गतिविधियों में शामिल करना शुरू कर दिया और धीरे-धीरे उसके लिए अपना समय समर्पित किया। धन उगाहने के प्रति उनके प्रयास एक प्रमुख कारक था, जिसने भारत के उत्तर-पूर्वी भाग में कांग्रेस को आगे बढ़ाने में मदद की थी। पूर्ण चंद्र शर्मा, महिधर बरा, हलधर भूयाँ और देवकांत बरुवा जैसे नेताओं के सहारे और सहयोग ने उन्हें एक मजबूत स्वतंत्रता सेनानी बनने में मदद की। इस समय के दौरान, उन्होंने असम से एक महान लेखक, समाज सुधारक और स्वतंत्रता सेनानी चंद्रप्रभा शइकीयानी से भी मुलाकात की। किरणबाला ने उनके साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित किया और उनके निर्देशों के तहत कई सामाजिक कार्यों से जुड़ गईं। एक समाज सुधारक तथा भारतीय स्वतंत्रता प्राप्ति आंदोलन में असम प्रांत से देश को नेतृत्व करने वाली किरणबाला बोरा हमेशा के लिए इतिहास के पन्नों पर स्वर्णिम अक्षरों सहित जीवित रहेंगी।

4. चन्द्रप्रभा शइकीयानी :

चंद्रप्रभा शइकीयानी असम में महिला स्वतंत्रता सेनानियों की अग्रणी और कैद होने वाली पहली महिला हैं। वह असम महिला समिति की संस्थापक थीं। वह एक ऐसी महिला थीं, जिन्होंने जीवन भर समाज में महिलाओं को उनके अधिकारों की रक्षा की बात से जागरूक करती रहीं। उनका जन्म 1901 में बजाली के दैशिङ्गिरी गाँव में हुआ था। उन्होंने उस समय की महिलाओं के सामने आने वाली सभी बाधाओं को दूर करने के लिए कड़ी मेहनत की। उन्होंने मानवाधिकारों का दावा करने के लिए राजनीति में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी पर जोर दिया और खुद चुनाव लड़ीं और इस क्षेत्र में अन्य महिलाओं को भी शामिल किया। वह स्वतंत्र भारत की पहली असमीया महिला थीं, जिन्होंने कांग्रेस पार्टी को बाध्य किया चुनाव में असमीया महिला को शामिल कराने पर।

चंद्रप्रभा शइकीयानी एक युग की संग्रामी सत्ता थीं । निर्यातित, लांछित, अपमानित, वंचित महिलाओं को उद्धार करके उन्हें उनके अधिकार दिला कर सम्मानजनक जीवन प्रदान करना ही उनके जीवन का मूलमंत्र था।

5. मालती मेम (मांगरी उरांग) :

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में चल रहे असहयोग आंदोलन का प्रभाव असम पर भी खूब पड़ा था। स्वदेशी वस्तुओं का इस्तेमाल और विदेशी वस्तुओं का दहन- इसी उद्देश्य को आगे रखते हुए उस समय के असमीया महिलाओं ने असहयोग आंदोलन में योगदान दिया था। मालती मेम उर्फ मांगरी उरांग बराक घाटी के चाय

बागानों में शराब विरोधी आंदोलन के नेताओं में से एक थीं। मालती मेम को 1921 में दरंग जिले के लालमाटि में ब्रिटिश प्रशासन के खिलाफ कांग्रेस के स्वयंसेवकों को मदद करने के आरोप में उन्हें सरकार द्वारा मार दिया गया था।

6. दारिकी दासी बरुवा :

सविनय अवज्ञा आंदोलन की अग्रणी, गोलाघाट की दारिकी दासी बरुवा ने भी नशीली दवा विरोधी आंदोलन का नेतृत्व किया। इस आंदोलन में शामिल होने के आरोप में 1 फरवरी 1932 को उन्हें ब्रिटिश सरकार ने गिरफ्तार कर लिया और छह महीने जेल की सजा सुनाई। गिरफ्तारी के समय गर्भवती अवस्था में रहने वाली इस महिला ने सरकार द्वारा दी जाने वाली जमानत को ठुकराकर देशभक्ति की अतुलनीय मिसाल पेश की। जेल में बीमार पड़ने के बाद 26 अप्रैल, 1932 को उनकी मृत्यु हो गई।

7.तिलेश्वरी बरुवा :

तिलेश्वरी देवी का जन्म हुआ था सन 1930 में। ढेकियाजुलि में भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने के दौरान तिलेश्वरी बरुवा की मृत्यु हो गई थी। 20 सितंबर 1920 को ढेकियाजुलि पुलिस स्टेशन में झंडा फहराने जा रहे एक प्रदर्शनकरियों के झुंड पर पुलिस ने गोलियाँ चला दी थीं और उसी प्रदर्शनकारियों के बीच में थीं तिलेश्वरी बरुवा। पुलिस की गोली लगने से उनकी मृत्यु हो गई। भारत छोड़ो आंदोलन में भाग ले रही तिलेश्वरी बरुवा मृत्यु के समय सिर्फ 12 वर्ष की थी। कनकलता बरुवा और तिलेश्वरी बरुवा दोनों की मृत्यु एक ही दिन हुई थी।

8.रेवती लाहन :

रेवती लाहन स्वतंत्रता आंदोलन की अन्य एक अग्रदूत थीं। उन्होंने भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भाग लिया था। 1942 के आंदोलन में भाग लेने के कारण उन्हें जेल में डाल दिया गया था और इस दौरान निमोनिया के कारण उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। कारावास की अवधि समाप्त होने के कुछ दिनों बाद उनकी मृत्यु हो गई।

9. खहुली देवी :

20 सितंबर, 1942 को ढेकियाजुली में पुलिस फायरिंग में खहुली देवी घायल हो गईं और बाद में उनकी मृत्यु हो गई। अन्य महिला स्वतंत्रता सेनानियों की तरह ही वह भी मातृभूमि की पुकार सुनकर घर से बाहर आ गई थीं। जिस समय उनकी मृत्यु हुई उस समय वह भी गर्भवती थीं।

10. कुमली देवी :

तिलेश्वरी बरुवा और खहुली देवी के साथ शहीद होने वाली एक और बहादुर महिला थीं कुमली देवी। भारत छोड़ो आंदोलन की ब्रिटिश विरोधी रैलियों में सक्रिय रूप से भाग लेने के बाद 20 सितंबर, 1942 को ढेकियाजुली में पुलिस की गोलीबारी में कुमली देवी शहीद हो गई थीं। ढेकियजुली में पुलिस और आंदोलनकारियों में हुई झड़प के दौरान वह चोटिल हो गई थीं। जब उन्होंने देखा कि राष्ट्रीय झंडा फहराने के लिए जा रहे उनके बेटे पर पुलिस गोली चलाने वाली है, तब वह खुद आगे आ जाती हैं और उसी गोली से लगने उनकी मृत्यु हो जाती है।

11. पदुमी गगोई :

पदुमी गगोई 20 सितंबर, 1942 को ढेकियाजुली में भारत छोड़ो आंदोलन रैली में भाग लेने के दौरान पुलिस लाठीचार्ज में घायल हो गई थीं। बाद में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और छह महीने जेल की सजा सुनाई गई। लाठी के प्रहार से उनका शरीर बिल्कुल टूट चुका थी। कारावास की अवधि समाप्त होने के कुछ समय बाद ही उन घावों के चलते उनकी मृत्यु हो गई।

12.गोलापी सुतियानी :

1942 के 20 सितंबर को हुए भारत त्याग आंदोलन में भीड़ को तितर-बितर करने के लिए पुलिस ने फायरिंग की और लाठीचार्ज किया। उसी आंदोलनकारियों के बीच रहीं गोलापी सुतियानी भी हमले में गंभीर रूप से घायल हो गईं। बाद में उन्हीं चोटों से उनकी मौत हो गई।

13.लीला निउगनी :

लीला निउगनी एक ऐसी महिला थीं, जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया। वह लखीमपुर में भारत छोड़ो आंदोलन के सदस्य थीं। अक्टूबर 1942 में, ब्रिटिश विरोधी आंदोलन में भाग लेने के दौरान लीला निउगनी पुलिस की डंडों से घायल हो गईं और दो महीने बाद उनकी मृत्यु हो गई।

14. थुनुकी दास :

20 सितंबर, 1942 को ढेकियाजुली में भारत छोड़ो आंदोलन रैली में भाग लेने के दौरान लाठीचार्ज में थुनुकी दास गंभीर रूप से घायल हो गई थीं। घायल थुनुकी दास का कुछ दिनों बाद निधन हो गया।

15. जालुकी कछारीयनी :

जालुकी कछारीयनी भी भारत छोड़ो आंदोलन की सक्रिय सदस्य थीं । 1942 में, 20 सितंबर के प्रदर्शन में भाग लेने के दौरान उन्हें पुलिस द्वारा बाएँ कंधे में गोली मार दी गई थी। उसी से उनकी मृत्यु हो गई।

16. कन सुतियानी :

20 सितंबर को ढेकियाजुली थाने में लाठीचार्ज में कन सुतियानी गंभीर रूप से घायल हो गई थीं। कुछ दिनों बाद शरीर टूटने के बाद उनकी मौत हो गई।

निष्कर्ष :

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि ऊपर उल्लेखित महिला स्वतंत्रता सेनानियों ने देश के लिए जो अपना बलिदान दिया, वह निश्चित ही प्रशंसनीय है वंदनीय है। देशभर के निवासियों ने बढ़-चढ़कर स्वाधीनता संग्राम की लड़ाई में हिस्सा लिया और देश को विदेशी जंजीरों से मुक्त कराया।

असम प्रांत के पुरुष-महिला भी इस महान कार्य से जुड़े गए थे और अपनी अहम भूमिका अदा की थी। जहां तक पुरुषों की हिस्सेदारी की बात आती है, वहीं महिलाएँ भी पुरुषों के कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ चुकी थीं।

जहाँ पुरुषों ने अपना सर्वस्व दान किया तो वहीं महिलाओं ने भी वह चाहे कम आयु की युवती हो या गर्भवती महिला हो या फिर बुजुर्ग महिला, सब ने पुरुषों के समान ही भारतीय स्वतंत्रता संग्राम बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और इतिहास के पन्नों पर अपने नाम को हमेशा के लिए स्वर्णिम अक्षरों से अंकित कर दिया। नमन है उन सभी असमीया महिलाओं को, जिन्होंने इस यज्ञ में अपना सर्वस्व बलिदान दिया था। ❑

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. बरुवा, डॉ. सागर, भारतर स्वाधीनता आंदोलनत असम, जागरण साहित्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2013,
2. कलिता, कमला, भारतर स्वाधीनता आंदोलनत असमर सेनानी, चन्द्र प्रकाश, गुवाहाटी, प्रथम संस्करण-2019,
3. हलोई, कल्पना, लेखिका, भारतर स्वाधीनता आंदोलनत असमर नारी, ज्ञानम ई पत्रिका
4. कलिता, रमेश चन्द्र, आसाम छात्र संमिलन आरु भारतर स्वाधीनता संग्राम, आखर प्रकाशन, गुवाहाटी,
5. कलिता, रमेश चन्द्र, संपादक, स्वाधीनता आंदोलन आरु असम, असम प्रकाशन परिषद, प्रथम संस्करण-2008,
6. बरा, नीलिमा, गगोई स्वर्ण बरुवा, संपा. लुइत पारर महिला स्वाधीनता संग्रामीर जीवन गाथा, जिला पुस्तकालय, गुवाहाटी, असम, पृष्ठ 39

राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम और हिंदी पत्रकारिता

शिप्रा शुक्ला

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर
मो. 8010222643
ई-मेल : shiprajji@gmail.com

शोध सार :

भारत का स्वाधीनता संग्राम अपने भीतर तमाम आंदोलनों को समाविष्ट किए हुए है। जिन तत्वों ने इसे गहराई से प्रभावित किया, उनमें हिंदी पत्रकारिता अपना विशेष स्थान रखती है। अँग्रेजी हुकूमत के खिलाफ उठने वाला विरोध 19वीं सदी की पत्रकारिता से लेकर आजादी तक बुलंद दिखाई देता है। हिंदी साहित्य के भारतेन्दु हरिश्चंद्र जैसे रचनाकार आम जनमानस तक राष्ट्रीय चेतना का प्रचार-प्रसार करने हेतु पत्रकार के रूप में भी सामने आते हैं। 20वीं सदी में हिंदी पत्रकारिता विभिन्न राजनैतिक आंदोलनों एवं राजनेताओं से प्रभाव ग्रहण करते हुए आगे बढ़ती है। इस पत्रकारिता ने एक ओर स्वाधीनता संग्राम को ताकतवर बनाया, वहीं दूसरी ओर सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण की लहर पैदा की। इस शोध आलेख में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान विकसित हिंदी पत्रकारिता और उसके महत्वपूर्ण योगदान को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द :

राष्ट्रीय नवजागरण, राजनीतिक एकजुटता, सांस्कृतिक पुनर्जागरण, चेतना, राष्ट्रवाद, राष्ट्रीयता।

मूल आलेख :

भारत एक राष्ट्र के रूप में सदियों से बहुत से उथल-पुथल तथा उत्थान-पतन का साक्षी रहा है। इस देश में स्वाधीनता आंदोलन का एक संघर्षपूर्ण लंबा इतिहास रहा है, पर इसके साथ ही यदि इसकी पराधीनता के ऐतिहासिक पक्षों की चर्चा की जाए तो उसका इतिहास कहीं अधिक व्यापक और विस्तार लिए हुए दिखाई देता है। इतिहास इस बात का गवाह है कि प्राचीन समय में प्राय: भौगोलिक एवं राजनीतिक एकजुटता का अभाव देखा गया, जिस कारण हमारे गणराज्यों को बार-बार पराजय का सामना करना पड़ा। यह देश लगभग हजार वर्षों तक बाहरी आक्रमणकारियों का गुलाम बना रहा, लेकिन इसकी सांस्कृतिक विरासत इतनी मजबूत एवं समन्वयवादी थी कि इसकी अक्षुण्णता कायम रही। मुगलों के शासनकाल के बाद अँग्रेजों ने भारत को आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टि से गुलाम बनाया। यह गुलामी केवल आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक शोषण तक सीमित नहीं थी, बल्कि हमारी सांस्कृतिक

अस्मिता अनेक रूपों में क्षरित हो रही थी। भारत की राष्ट्रीयता का आधार राजनैतिक एकजुटता न होकर सांस्कृतिक एकता रही है। मुहम्मद एकबाल ने लिखा है कि—

''यूनान मिश्र रोमां, सब मिट गए जहां से
लेकिन बचा हुआ है, नामो निशां हमारा।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन, दौरे जमां हमारा।।''[1]

यहाँ इकबाल हमारी उस सांस्कृतिक एकता और निरंतरता की ओर संकेत कर रहे हैं, जो तमाम झंझावातों के बावजूद बरकरार रही। प्रो चमनलाल गुप्त अपने लेख में लिखते हैं कि ''संसार का चक्र हमारे विपरीत रहा, फिर भी हमारी एक राष्ट्र के रूप में पहचान बची रही है। हम राजनैतिक रूप से असंख्य आक्रांताओं से पराजित हुए, परंतु सांस्कृतिक रूप से अजेय रहे। हमारे शरीर पर विदेशियों ने राज किया, परंतु हमारी आत्मा अजेय बनी रही। इतनी लंबी गुलामी भोगने वाला कोई राष्ट्र कैसे अपनी पहचान बनाए रख सका, यह विश्व के लिए आश्चर्य का विषय हो सकता है, हमारे लिए नहीं, क्योंकि आध्यात्मिकता, धार्मिकता की जिस नींव पर भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ, उसमें विरोधियों को आत्मसात् करने की अद्भुत क्षमता थी, नया अपनाने और पचाने की भरपूर क्षमता थी।''[2]

सन 1857 का वर्ष भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में अपना विशेष महत्व दर्ज करता है, लेकिन यदि अँग्रेजी हुकूमत के खिलाफ भारतीय जनमानस के विरोध का इतिहास खंगाला जाए तो उससे पूर्व भी बहुत से जनजातियाँ जल, जंगल एवं जमीन की सांस्कृतिक मुहिम का बिगुल भारत के अलग-अलग क्षेत्रों में फूँक रही थीं। भारत का जन-जन इस गुलामी के खिलाफ संघर्षरत था- चाहे मजदूर हों या किसान, सिपाही हों या साहित्यकार, पत्रकार हों या समाजसुधारक। सभी का एक लक्ष्य था अँग्रेजी हुकूमत की जड़ों को उखाड़कर भारत माता को स्वाधीन करना। इस स्वाधीनता संग्राम के संघर्षपथ पर हिंदी पत्रकारिता ने अपने अविस्मरणीय पदचिह्न अंकित किए। इसने न केवल जनता से उसी की भाषा में संवाद स्थापित किया, बल्कि देश के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में बौद्धिक चेतना का प्रचार-प्रसार किया। 19वीं सदी के हिंदी प्रांत में मौजूद पत्रकारों ने अपनी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्र को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित कराते हुए नई आशा का संचार किया। इसके साथ ही इन पत्रिकाओं के माध्यम से भारतीय संस्कृति नवीन रूपों में दिखाई पड़ी। इन पत्रकारों की पत्रकारिता का लक्ष्य था प्रसुप्त भारतीय जमानस को उनकी यथास्थिति अवगत करना तथा उनके भीतर राष्ट्रप्रेम की भावना का संचार करते हुए स्वाधीनता की लड़ाई को नवीन गति और बल प्रदान करना। हिंदी पत्रकारिता का इतिहास अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत है। भारत की संघर्षपूर्ण स्वाधीनता की लड़ाई को इस पत्रकारिता ने एक मजबूत एवं वैचारिक आधार प्रदान किया। अंबिकादत्त वाजपेयी के अनुसार, ''सन 1818 ई. भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में स्मरणीय है, क्योंकि इसी वर्ष स्वदेशी भाषा का पहला पत्र प्रकाशित हुआ।''[3] यह मासिक पत्रिका रामपुर के बैपटिस्ट मिशनरियों द्वारा निकाली गई थी, जिसका नाम 'दिग्दर्शन' था। स्वतंत्र रूप से हिंदी भाषा में न निकलने के कारण इसे हिंदी का प्रथम समाचार पत्र कहना उचित न होगा। हिंदी पत्रकारिता का उदय पंडित जुगलकिशोर द्वारा 1826 में निकाले गए 'उदन्त मार्तंड' नामक पत्र से हम मान सकते हैं। आर्थिक एवं राजनैतिक कारणों के चलते लगभग डेढ़ वर्षों के बाद यह पत्र बंद हो गया। 'बंगदूत', 'बनारस अखबार' एवं 'सुधावर्षण' जैसे पत्रों ने अँग्रेजी हुकूमत का विरोध करते हुए राष्ट्रीयता की भावना का जनता में प्रस्फुटन किया। हिंदी के दैनिक समाचार 'सुधावर्षण' ने बहादुर शाह जफर के फरमान को प्रकाशित कर तत्कालीन ब्रिटिश शासन को खुली चुनौती दी। इस फरमान में बहादुर शाह ने अँग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करने की बात कही थी। जंगे आजादी की चिंगारी को असल अर्थों में हवा देने का काम हिंदी पत्रकारिता ने किया। 1857 की क्रांति जनमानस की क्रांति थी, जिसमें कई पत्रकारों ने अपने पत्रों के माध्यम से आजाद भारत के सपनों की तस्वीर बनाई। इसी क्रम में अजीमुल्ला खाँ ने 8 फरवरी, 1857 को दिल्ली से हिंदी और उर्दू में 'पयामे आजादी' नामक छोटा समाचार पत्र आरंभ किया। इस तरह 19वीं

शताब्दी के अंत तक तमाम ऐसे समाचार पत्रों का प्रकाशन हुआ, जिनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय चेतना एवं देश भक्ति की भावना से परिपूर्ण था। इन पत्रों में सन 1881 में 'कवितेन्दु', 1885 में 'सरस्वती विलास' आदि महत्वपूर्ण हैं। स्वाधीनता आंदोलन की लड़ाई में सभी दिशाओं से विदेशी हुकूमत के खिलाफ विद्रोह के स्वर गूँज रहे थे। ऐसे में देखा जाए तो हिंदी साहित्य और हिंदी पत्रकारिता दोनों कंधे से कंधा मिलाकर साथ चलने लगे। तत्कालीन परिवेशगत दबावों के कारण रचनाकार साहित्यकार होने के साथ-साथ पत्रकारिता भी कर रहे थे, क्योंकि चाहे वो हिंदी साहित्य हो अथवा हिंदी पत्रकारिता दोनों का लक्ष्य समानधर्मी था, अँग्रेजों से भारत को मुक्त करना।

हिंदी साहित्य के इतिहास को देखा जाए तो सन 1850 से 1900 तक का कालखंड भारतेंदु युग के नाम से सर्वमान्य है। यह काल हिंदी साहित्य में विभिन्न गद्य विधाओं की शुरुआत का काल कहा जा सकता है। तत्कालीन साहित्यकार अपनी युगीन चेतना से अनुप्राणित होकर राष्ट्रप्रेम, राजनैतिक चेतना एवं सामाजिक चेतना से ओत-प्रोत साहित्य सृजन कर रहे थे। भारत के आम जनमानस को देश की यथास्थिति से अवगत कराना तथा तमाम सामाजिक सांस्कृतिक विकृतियों से मुक्त कर स्वाधीनता आंदोलन हेतु एकजुट करना तत्कालीन बुद्धिजीवियों का परम उद्देश्य था। ऐसे में अशिक्षित एवं अल्पशिक्षित जनता तक साहित्य की अपेक्षा पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से वैचारिक आदान-प्रदान करना अधिक सहज था, क्योंकि इनकी भाषा आम बोलचाल की भाषा होती है। भारतेंदु मंडल के समस्त रचनाकार पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अविस्मरणीय योगदान प्रदान करते हैं। इस युग की हिंदी पत्रकारिता से संबद्ध पत्रकारों के समक्ष एक महान आदर्श उपस्थित था। अँग्रेजों के आने के बाद से वे एक नवीन सभ्यता से परिचित हो रहे थे तथा समस्त राष्ट्र को नवीन चेतना एवं विचारशरणियों से जोड़ना चाहते थे। तत्युगीन पत्र-पत्रिकाओं में देश की चहुँमुखी चेतना विद्यमान दिखाई पड़ती है। इस काल की पत्रकारिता का केंद्रीय भाव राष्ट्रीय चेतना को कहा जा सकता है। विदेशी शासन के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर बुलंद कर ये पत्रकार भारत में नवजागरण लाने के हिमायती थे। इनकी पत्र-पत्रिकाओं में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक समस्याओं को मुखर रूप से न केवल उठाया गया, वरन् उनके समाधान भी प्रस्तुत किए गए। ये पत्रकार एक ओर राष्ट्रीय जागरण की चेतना से ओत-प्रोत लेख लिख रहे थे, साथ ही भारतीय समाज में मौजूद विविध विसंगतियों, रूढ़ियों एवं कुरीतियों का खुलकर विरोध भी कर रहे थे। समाज सुधार के लक्ष्य से इन पत्र-पत्रिकाओं ने स्त्री शिक्षा, विधवा पुनर्विवाह, जाति व्यवस्था, धार्मिक अंधविश्वास जैसे विषयों पर प्रचुर मात्रा में लेखन किया। इस युग के पत्रकारों पर रामविलास शर्मा अपनी टिप्पणी करते हैं कि ''राजनीतिक वातावरण में जो रूढ़िप्रियता, अंध-परंपरा-प्रियता, शासकों की खुशामद और अपनी सभ्यता के प्रति हीन भावना फैली हुई थी, उसे देखते हुए हिंदी पत्रकारों की निर्भीक लेखन-शैली और भी चमक उठती है। इसमें पर्याप्त साहस था और उस साहस का उपयोग वे बेपर की बातें करने में न करते थे वरन् वे दिन-प्रतिदिन की देश तथा विदेश संबंधी समस्याओं के विवेचन में उसका उपयोग करते थे। काबुल युद्ध, जुलूस और अंग्रेजों की लड़ाई आदि पर जो कुछ तब लिखा गया था, उससे और साफ सुथरा लिखना आज के लेखकों के लिए भी कठिन है।''[4]

यह युग हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में नवीन आदर्शों एवं मूल्यों को स्थापित करने वाला साबित हुआ। इन पत्र-पत्रिकाओं में जिन विषयों को मुख्य रूप से शामिल किया गया उनमें राष्ट्रप्रेम, राजनैतिक चेतना, सामाजिक चेतना तथा समन्वय की भावना महत्वपूर्ण है। राजनैतिक विषयों के समानांतर इन पत्रकारों ने सामाजिक उन्नयन के लक्ष्य की पूर्ति हेतु भी तमाम लेख प्रकाशित किए। इन पत्रकारों ने सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए भारतीय समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं का यथार्थपरक चित्रण किया। उनका मानना था कि विदेशी शासन से मुक्ति की राह को निर्मित करने के लिए भारत को अपनी सामाजिक विसंगतियों का आकलन कर उन्हें खत्म करना होगा। इस प्रकार ये पत्रकार जनमानस में सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण का संदेश फैलाने के उद्देश्य से कई पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन कर रहे थे। इस दिशा में

भारतेंदु हरिश्चंद्र एक महत्वपूर्ण पत्रकार के रूप में सामने आते हैं। समाज-सुधारकों से प्रेरित होकर उन्होंने 'बालाबोधिनी' नामक पत्रिका को प्रकाशित किया, जो मूल रूप से स्त्री जीवन और उसकी समस्याओं पर केंद्रित थी। इसी क्रम में अन्य सामाजिक चेतना से ओत-प्रोत पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुईं, जिनमें 'भारतबंधु (अलीगढ़ 1874)', 'बनारस समाचार (काशी 1882)', 'जगतमित्र (मथुरा 1891)', 'भारतभूषण (बंबई 1892)', 'सुदर्शन (1900) आदि प्रमुख हैं।

तत्कालीन राजनैतिक परिवेश की क्रूरता एवं भ्रष्टाचार ने राजनैतिक चेतना से संबद्ध पत्र-पत्रिकाओं को जन्म दिया। सामाजिक पत्रिकाओं में जहाँ समाज सुधार एवं सांस्कृतिक नवजागरण लक्ष्य निहित था, वहीं राजनीतिक पत्रकारिता के माध्यम से पत्रकार देश की दुर्दशा का चित्रण करते हुए स्वाधीनता की राह बनाना चाहते थे। यह सत्य है कि राजनैतिक पत्र तत्कालीन सरकार की निगाह में रहते थे, इसके बावजूद निर्भीकता तथा बेबाकी के साथ इस युग के पत्रकार अपनी लेखनी के माध्यम से तीखे व्यंग्य तथा प्रश्न करते रहे। इस दिशा में भारतेंदु, प्रतापनारायण मिश्र, केशवराम भट्ट, प्रेमघन और बालकृष्ण भट्ट आदि अपने लेखों के माध्यम से राजनैतिक जागरण और राष्ट्रप्रेम का संदेश दे रहे थे। 8 फरवरी, 1874 को 'कविवचनसुधा' नामक पत्रिका में भारतेंदु जी का 'क्या हमारे देश बांधव अब भी सचेत न होंगे' शीर्षक से ऐतिहासिक महत्व का एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें अँग्रेजी हुकूमत के खोखले प्रचारों का पुरजोर खंडन करते हुए वे लिखते हैं कि ''कुछ काल पहले अँगरेज लोग जब हिन्दुस्तान के विषय में व्याख्यान करते थे तब यही प्रकट करते थे कि हम केवल इस देश के लाभ अर्थ राज्य करते हैं यही चिल्ला-चिल्ला कर सर्वदा कहा करते थे कि हम हिन्दुस्तान की वृद्धि के निमित्त विचार करते हैं कि हम लोग इस देश की वृद्धि करेंगे और वहाँ के निवासियों को विद्यामृत पिलायेंगे... परन्तु अब अँगरेजी माया छल और घात दृष्टि में आने लगा क्योंकि हम लोगों को केवल अँगरेजी भाषा प्राप्त हुई, परंतु कला कौशल के विषय में हम लोग भलीभाँति अज्ञात सागर में निमग्न हुए हैं इसमें संदेह नहीं।''[5] इस प्रकार यह कहना अत्यंत समीचीन होगा कि इस युग की हिंदी पत्रकारिता ने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन को नवीन गति एवं ऊर्जा प्रदान करने के साथ-साथ हिंदी गद्य साहित्य को भी मजबूत रचनात्मक धरातल प्रदान किया। इस संदर्भ में अनिल सिन्हा लिखते हैं कि ''यह आश्चर्य की बात नहीं है कि भारतेंदु काल तक हिंदी पत्रकारिता के साढ़े तीन सौ से अधिक अखबार विकसित हो गए थे, जिनमें से अधिसंख्य लोगों में राष्ट्रीय भावना पैदा करने, देश के लिए मर मिटने तथा स्वाधीनता के लिए तैयारी कर रहे थे।''[6]

बीसवीं सदी का आरंभिक दौर राजनैतिक दृष्टि से अत्यंत उथल-पुथल से भरा था। भारत की राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक ताकत को क्षीण करने के लिए लार्ड कर्जन ने अनेक रूपों में भारतियों को उत्पीड़ित तथा दमित किया। बंग-भंग जैसे राजनैतिक घटनाओं ने संपूर्ण राष्ट्र को गुलामी के विरोध तथा स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में खड़ा किया। इनका प्रभाव हिंदी पत्रकारिता पर गहरे रूप में देखा जा सकता है। उस समय जातीय राजनीति का नेतृत्व करने वालों में लालालाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल और बालगंगाधर तिलक के नाम अग्रगण्य हैं। इस दौर की हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में बालमुकुंद गुप्त का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन्होंने 16 जनवरी, 1899 को 'भारतमित्र' पत्रिका का संपादन भार संभाला। स्वराज प्राप्ति की मुहिम को गति देना इस पत्र का प्रमुख लक्ष्य था। इनके अतिरिक्त लक्ष्मण नारायण गर्दे, अंबिकाप्रसाद, हरमुकुन्द शास्त्री, रूपदत्त शर्मा, छोटूलाल मिश्र, दुर्गाप्रसाद मिश्र आदि ने इस पत्रिका का संपादन किया। इस पत्र के माध्यम से बालमुकुंद गुप्त जी ने साहसिकता का परिचय देते हुए लार्ड कर्जन की दमनकारी नीतियों पर तीखा प्रहार किया। 1903 में 'सरस्वती' पत्रिका का संपादकत्व संभालने वाले राष्ट्रवाद के पोषक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने हिंदी साहित्य एवं भाषा को परिमार्जित करते हुए भारतीय संस्कृति की विरासत को संरक्षित करने का अतुलनीय प्रयास किया। साहित्य संस्कृति के माध्यम से 'सरस्वती' पत्रिका देश कल्याण में उसी मशाल को जला रही थी, जिस मशाल को प्रज्ज्वलित करने का काम 'वन्देभारत', 'संध्या', 'केसरी', 'पंजाबी'

और 'भारतमित्र' जैसे पत्र अपनी रचनात्मकता से कर रहे थे। द्विवेदीयुगीन हिंदी पत्रकारिता के विषय में नंद दुलारे वाजपेयी लिखते हैं कि ''द्विवेदी जी के सरस्वती संपादन का इतिहास ऐसे अनेक आंदोलनों का इतिहास है, जो उनके व्यक्तित्व और तत्कालीन समाज के विकास का इतिहास भी कहा जा सकता है।''[7] इस युग की कुछ पत्र-पत्रिकाएँ जैसे गुलेरी जी का 'समालोचक', तिलक का 'केसरी', शांतिनारायण का 'स्वराज', मालवीय जी का 'अभ्युदय', आदि महत्वपूर्ण हैं। सन 1920 से 1947 का कालखंड भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसका प्रतिनिधित्व गाँधी जी द्वारा किया गया। इस समस्त मुक्ति संग्राम के संघर्ष में हिंदी पत्रकारिता का अविस्मरणीय योगदान रहा है। गाँधी जी के नेतृत्व में अँग्रेजों के विरुद्ध असहयोग आंदोलन, चौरी-चौरा कांड, साइमन कमीशन, सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं भारत छोड़ो आंदोलन जैसी क्रांतिधर्मी घटनाएँ घटीं। इन स्वाधीनता आंदोलन के कदमों को दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्रों ने नवीन ऊर्जा एवं गति प्रदान की। इस क्रम में भारत दुर्दशा, गांधी-प्रताप, वीर भारत, वंदे मातरम आदि पत्र उल्लेखनीय हैं। साथ ही कुछ भूमिगत प्रकाशन जैसे गदर, रणभेदी, बदमास अंग्रेज सरकार, बगावत इत्यादि ने साम्राज्यवादी ताकतों को कड़ी चुनौती दी। एक क्रांतिकारी पत्रकार के रूप में पराड़कर जी 1930 में रणभेदी में लिखते हैं, ''ऐसा कोई बड़ा शहर नहीं रह गया है, जहाँ से एक भी रणभेरी जैसा परचा न निकलता हो। अकेले बम्बई में इस समय ऐसे कई एक दर्जन परचे निकल रहे हैं। शुरू में वहाँ सिर्फ कांग्रेस बुलेटिन निकलती थी। नये परचों के नाम समयानुकूल हैं। जैसे रिवोल्ट रिवोल्यूशन (विप्लव), वलक, फिडूर, गदर, बगावत, बदमाश अंग्रेज सरकार आदि। दमन से द्रोह बढ़ता है, इसका यह अच्छा सबूत है।''[8] परतंत्रता के खिलाफ इस लड़ाई में गाँधी जी अपना राष्ट्रव्यापी प्रभाव डाल रहे थे। उस समय की पत्रकारिता पर भी उनके विचारों की गहरी छाप परिलक्षित होती है। स्वयं गाँधी जी नवजीवन एवं हरिजन जैसे पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय जागरण, सत्याग्रह, अस्पृश्यता जैसे विषयों पर निरंतर लिखते रहे। इस समय की कुछ महत्वपूर्ण हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक नवजागरण का मार्ग प्रसस्त कर रही थीं, जिनमें प्रताप, चाँद, हंस, माधुरी, मतवाला, विशाल भारत एवं प्रतीक इत्यादि अपना ऐतिहासिक महत्व रखते हैं। गणेश शंकर विद्यार्थी, बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, निराला जैसे तमाम हिंदी के साहित्यकारों ने पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अहम भूमिका निभाते हुए सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जागरण का उद्घोष किया।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की लड़ाई केवल राजनेताओं, समाज सुधारकों एवं क्रांतिकारियों तक ही सीमित नहीं थी, विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों एवं पत्रकारों ने इस संग्राम में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। हिंदी पत्रकारिता का इस संग्राम में अमूल्य योगदान रहा जहाँ साहित्यकारों, राजनेताओं आदि सभी ने अपने-अपने सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण के आलोक में हिंदी पत्रकारिता को गति एवं उन्मेष प्रदान किया। 1947 से पूर्व की हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ चाहे वे सामाजिक रही हों अथवा राजनैतिक, धार्मिक रही हों अथवा साहित्यिक सभी ने मिलकर स्वतंत्रता आंदोलन के संघर्ष को पैनी धार दी। साथ ही भारतीय समाज में मौजूद तमाम विसंगतियों एवं विकृतियों के उन्मूलन की दिशा में सुधारवादी आंदोलन खड़ा किया। हिंदी पत्रकारिता ने आजादी की जंग को जो मजबूती दी उसे विस्मृत करना असंभव है। ❑

संदर्भ सूची :

(1) राष्ट्रीय स्वातंत्र आंदोलन और हिंदी साहित्य, प्रो. चमनलाल गुप्त, पृ. 174, (2) उपरोक्त, पृ 175 (3) अंबिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, पृ. 29 (4) डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, पृ. 181 (5) भारतेन्दु हरिश्चंद्र, कविवचनसुधा, 8 फरवरी 1874 (6) अनिल सिन्हा, हिंदी पत्रकारिता, इतिहास स्वरूप और संभावनाएं, पृ. 18. (7) ओ पी शर्मा, पत्रकारिता और उसके विभिन्न स्वरूप, पृ. 25 (8) बाबूराव विष्णु पराड़कर, रणभेदी, अगस्त 1930 ई., https://10603/9303/8/08_chapter-203.pdf

शहीद मांगरी उरांव का अनकहा इतिहास और असहयोग आंदोलन

प्रवीण बोरा

शोधार्थी, हिंदी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय
कांचिपुर, मणिपुर – 795003
मो. : 7002575545
ई-मेल : bora.prabin09@gmail.com

शोध सार : गाँधीजी के मार्गदर्शन से प्रारंभ असहयोग आंदोलन का गहरा प्रभाव समग्र देश के साथ-साथ पूर्वोत्तर के राज्य असम में भी पड़ा। सितंबर, 1920 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा आरंभ किए गए इस असहयोग आंदोलन की अवधि फरवरी, 1922 तक मानी जाती है। असहयोग आंदोलन के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक नए अध्याय का जन्म हुआ। अंग्रेजों द्वारा जलियाँवाला बाग में किया गया हत्याकांड, अत्याचारों तथा अन्य कारकों के कारण भारतवासियों के मन में अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन का भाव जाग्रत हुआ। गाँधीजी के नेतृत्व में संपूर्ण देश में असहयोग आंदोलन और खिलाफत आंदोलन तीव्रता से होने लगा। ये दोनों आंदोलन अहिंसा और असहयोग पर आधारित थे।

सन 1920 में गाँधीजी द्वारा जारी असहयोग आंदोलन के घोषणापत्र के अंतर्गत मुख्यतः निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा गया था। जैसे–

1. स्वदेशी सिद्धांतों को अपनाएँ
2. हाथ से कटाई और बुनाई सहित स्वदेशी आदतों को स्वीकार करें
3. समाज से अछूतपन को समाप्त करने का प्रयास
4. मादक पेय सामग्रियों का वर्जन आदि

बीज शब्द : खिलाफत आंदोलन, चाय जनजाति, आदिवासी, स्वाधीनता संग्राम, बुजुर्ग, रैलियाँ।

मूल अंश : इस आंदोलन को सफल बनाने हेतु महात्मा गाँधी ने पूरे भारतवर्ष में विभिन्न जगहों पर कई रैलियाँ और सभाएँ आयोजित कीं। कोलकाता में शैक्षिक बहिष्कारों को सफल बनाने हेतु सी.आर. दास ने मुख्य भूमिका निभाई। कोलकाता राष्ट्रीय कांग्रेस को सुभाष चंद्र बोस ने प्रमुख नेतृत्व प्रदान किया। इसी तरह असम में चंद्रनाथ शर्मा, त्रिगुणा बरुवा, अंबिकागिरि रायचौधुरी, मुहिबुद्दीन अहमद आदि छात्र नेताओं ने मुख्य भूमिका का पालन किया। इस आंदोलन के दौरान ही असम के चाय बागानों में काम करने वाले मजदूर हड़ताल पर चले गए थे।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में असम की अन्य महिलाओं की तरह चाय जनजाति की महिलाओं का भी योगदान सराहनीय रहा। सन 1920 में असहयोग आंदोलन के दौरान गाँधीजी ने असम भ्रमण किया, जिसके फलस्वरूप

यहाँ की महिलाएँ अंग्रेज विरोधी संग्रामों के प्रति प्रेरित होने लगीं। असम में चाय जनजाति के सभी पुरुष-महिलाओं इस आंदोलन में जोर-शोर से भाग लिया। स्वतंत्रता की वाणियों ने चाय जनजाति के अनपढ़ श्रमिकों के मन भी देश को अंग्रेजों से आजाद कराने की सोच को प्रोत्साहित किया। असम प्रदेश में असहयोग आंदोलन के प्रवाह ने जिस तरह गति की, उस पर अपना आशय व्यक्त करते हुए चक्रवर्ती राजा गोपालचारी ने कहा है, ''भारत के अन्य प्रदेशों में भी यदि असम की तरह साहसी और विश्वासी नौजवान रहते तो अति कम दिन में ही भारतवर्ष अपना लक्ष्य प्राप्त कर पाता।'' इसी असहयोग आंदोलन में भाग लेते हुए अंग्रेजों के हाथों प्राण त्याग करने वाली मांगरी उरांव को असम की पहली महिला शहीद होने का दावा किया गया है। प्रस्तुत आलेख का शीर्षक 'मांगरी उरांव का अनकहा इतिहास' होना भी इस उद्देश्य की पूर्ति करता है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के शहीदों के सूची में कहीं भी मांगरी उरांव के नाम उल्लेख नहीं है तथा जितनी सम्मान उन्हें मिलना चाहिए था, वह आज भी उपेक्षित है।

मांगरी उरांव उर्फ मालती मैम असम की पहली महिला शहीद हैं, जिन्होंने गाँधीजी द्वारा परिचालित असहयोग आंदोलन में खुद को न्योछावर करते हुए आत्मबलिदान दिया। मांगरी उरांव का जन्म हजारीबाग के पहाड़ी गाँव में एक गरीब आदिवासी परिवार में हुआ था। बड़ी होने के बाद मांगरी ने छोमरा नामक एक लड़के से भाग कर विवाह कर लिया। इसी समय अंग्रेज ठेकेदार भारतवर्ष के विभिन्न आदिवासी गाँवों से लोगों को लालच दिखाकर असम के चाय बागानों में काम करने के लिए लाते रहे। मांगरी और छोमरा इसी प्रलोभन का शिकार बने तथा जलमार्ग से असम पहुँचे। इसके पश्चात मांगरी और छोमरा अंग्रेजों के अधीन होकर असम के चाय बागान में मजदूरी करने लगे। कुछ ही महीने बाद मांगरी का पति छोमरा बीमार होने लगा और यथोचित चिकित्सा के अभाव में उसका देहांत हो गया। इस अनजान जगह पर मांगरी स्वयं को अकेला महसूस करने लगी। अत: बगान के एक बुजुर्ग की सलाह से पुन: विवाह करने हेतु सहमत हुई। द्वितीय विवाह के प्रसंग में लछमन नामक बुजुर्ग ने अपनी बेटी जैसी मांगरी का हाथ एक अंग्रेज साहब के हाथ में थमा दिया ताकि मांगरी अपना शेष जीवन सुख और समृद्धि के साथ व्यतीत कर पाए। उसी दिन से मांगरी उरांव मालती मैम बन गई। मांगरी का जीवन खुशहाली से भर गया। वह बागान की कुटिया के विपरीत महल में रहने लगी, मजदूरी के विपरीत मैम बन के रही।

मांगरी ने तीन पुत्र संतानों को जन्म दिया, परंतु दुर्भाग्यवश एक भी संतान मांगरी के पास नहीं रही। उज्ज्वल भविष्य के बहाने अंग्रेज साहब ने मांगरी की तीनों संतानों को उससे दूर कर दिया। अंग्रेज साहब ने बताया कि बच्चों को मिशनरी में रखा गया है। अंग्रेज साहब के इस षड्यंत्र से तीनों पुत्र अपनी माँ से दूर हो गए तथा मांगरी माँ होते हुए भी संतानहीनता से ग्रस्त रही। इसके पश्चात अंग्रेज साहब एक दिन विदेश चले गए और जाते समय मांगरी को लालबस्ती में एक घर दे गए। कुछ दिन पश्चाात वही साहब एक विलायती महिला के साथ वापस आए और तब मांगरी को महसूस हुआ कि अंग्रेज साहब उसे केवल भोग की सामग्री ही समझता रहा। इस घटनाक्रम से मांगरी के ह्रदय में अंग्रेजों के प्रति विरक्ति का भाव उत्पन्न हुआ। आर्थिक तनाव तथा मानसिक अस्थिरता की त्रासदी से मांगरी पूरी तरह टूट गई। हालात ये बन गए कि हर तरह से निराश-परेशान मांगरी उरांव लालबस्ती का घर छोड़कर सुबह-शाम शराब के नशा में रहने लगी।

19वीं शताब्दी में असम में अधिकतर युवा शराब और अफीम के नशे में स्वयं के साथ ही अपने घर का भी नाश कर चुके थे। नशे की लत लगने के कारण घर की जमीन, बर्तन आदि बेचे गए या गिरवी रखे गए। इससे कई घर-परिवार बिखर चुके थे। इस भयावह परिस्थिति से निजात पाने के लिए असम में विभिन्न जगहों पर लोग लामबंद होकर और अंग्रेजों के खिलाफ मुखर हुए। लोगों ने नशे के व्यापार के खिलाफ आवाज उठाई। इस क्रम में मादक द्रव्य विक्रेताओं के विरोध में नारा लगे, हड़ताल शुरू किए गए। 2 अप्रैल, 1921 को तेजपुर शहर के नेपालीपट्टी में 'लोकनायक' अमिय कुमार दास और 'देशप्राण' लक्ष्मीधर शर्मा की अगुवाई में राष्ट्रीय कांग्रेस शराब की दुकानों के सामने धरना दे रही थी। उसी समय हाथ में नशे में चूर मांगरी हाथ में शराब

की बोतल थामे आंदोलनकारियों के सामने से गुजरी। तभी आंदोलनकारियों में शामिल एक लड़के ने मांगरी को 'माँ' संबोधित करते हुए पूछा, दोपहर में ही भला क्यों शराब पीकर भटक रही हैं। लड़के के मुँह से 'माँ' शब्द सुनते ही मांगरी का हृदय भावविभोर हो उठा और शराब की बोतल वहीं जमीन पर पटक कर शपथ ली कि वह और कभी भी नशा नहीं करेगी। इसके बाद वह मादक-द्रव्य विरोधी आंदोलन से जुड़ गई।

असहयोग आंदोलन में मांगरी उरांव सक्रियता से काम कर रही थीं। सन 1921 में अंग्रेजी गोली का शिकार हो गईं और अपने प्राण त्याग दिए। यह असम की पहली ऐसी घटना थी, जिसमें कोई महिला शहीद हुई थी। इसलिए मांगरी उरांव को स्वाधीनता आंदोलन की असम की पहली महिला शहीद बनीं, लेकिन दुर्भाग्यवश उनके बलिदान को वह सम्मान आज तक नहीं मिला, जिसकी वह हकदार हैं।

सन 1969 में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित ग्रंथ Who's who of Indian Martyrs में स्वाधीनता आंदोलन में शहीद 41 वीर-वीरांगनाओं का संक्षिप्त विवरण दिया गया है, जिसमें असम के चार शहीदों के बारे में उल्लेख किया गया है। परंतु मांगरी उरांव के संबंध में भारत सरकार के उक्त ग्रंथ में कोई उल्लेख नहीं है। सन 1979 में असम सरकार ने 'मुक्तिजुजारूर अनुसंधान समितिर प्रतिवेदन' नामक एक पुस्तिका का प्रकाशन करवाया, जिसमें स्वाधीनता संग्राम में प्राण देने वाले पाँच महिला शहीदों के साथ कुल 29 शहीदों का विवरण मिलता है। परंतु असम सरकार द्वारा प्रकाशित इस प्रतिवेदन में भी शहीद मांगरी उरांव की उपेक्षा की गई है। सन 1984 में National Archieves of India द्वारा प्रकाशित पुस्तक Women in India's Freedom Struggle में भी स्वतंत्रता संग्राम में शहीद भारतीय महिला शहीदों के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है, हालाँकि इसमें भी मांगरी उरांव उर्फ मालती मैम का उल्लेख नहीं किया गया। सरकार, लेखक तथा इतिहास लेखकों की नजर में मांगरी के प्रति यह उपेक्षा उनके आदिवासी होने के कारण है तो यह बड़ी विडंबना की बात है।

सन 1921 में असम की शहीद होने वाली प्रथम महिला मांगरी उरांव को अधिकांश लोग नहीं जानते हैं। मांगरी उरांव को आज स्वाधीनता प्राप्ति के 75 वर्षों बाद भी जिस सम्मान से सम्मानित किया जाना चाहिए था, वह नहीं के बराबर है। 'लोकनायक' अमिय कुमार दास जी ने 'मांगरी उरांव के जीवन चरित' नामक ग्रंथ में तथा सन 1969 के जुलाई महीने में प्रकाशित 'चाय मजदूर' नमक समाचारपत्र में 'उति अहा एपाही फूल- मांगरी' नाम से एक आलेख में विस्तृत विवरण दिया गया है। दास जी ने लिखा है कि ''मांगरी को ज्यादा दिनों तक जीवित रहने का अवसर नहीं मिला। असहयोग आंदोलन के विभिन्न कार्यक्रम में व्यस्त रहने के समय में ही एक दिन सुनने को मिला कि मालती मैम का खून हो गया। न जाने कहाँ से बहते आए एक फूल मांगरी को इस तरह शहीद होना पड़ा।'' इसके पश्चात लेखिका डॉ. दीप्ति शर्मा ने 1988 में प्रकाशित पत्रिका 'प्रांतिक' के 16-30 नवंबर अंक में 'भारतर स्वाधीनता संग्रामत असमर महिला शहीद' (भारतीय स्वाधीनता संग्राम में असम की महिला शहीद) नाम से एक आलेख में मांगरी उरांव के संबंध में गहराई से अवलोकन किया है। डॉ. दीप्ति शर्मा के इस महान प्रयास से ही मांगरी उरांव का जीवनवृत्त थोड़ा-बहुत लोगों के समक्ष उभरकर आया। इसके उपरांत मांगरी उरांव संबंधित विभिन्न आलेख बीच-बीच में स्मृतिग्रंथ, अखबार आदि में आते रहते हैं। जैसे सन 1994 की फरवरी में ढेकियाजुली में आयोजित असम चाय जनजाति युवा संस्था के राज्य अधिवेशन में प्रकाशित 'जिनगानी' स्मृतिग्रंथ में मांगरी के बारे में लिखा गया है।

डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. स्वर्णलता बरुवा और इतिहास विभाग के अध्यापक डॉ. डंबरूधर नाथ ने भी मालती मैम के बारे में अपनी इतिहास की पुस्तक में उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि ''महात्मा गाँधी जी के असम भ्रमण ने महिलाओं को भी संग्रामी होने का उत्साह प्रदान किया था, जिससे महिलाओं ने घर में ही बुनाई का काम शुरू किया था, जो कि असहयोग आंदोलन का एक महत्वपूर्ण अंग था। इसी समय में चाय बागानों में श्रमिक आंदोलन हुआ, जिसमें महिलाओं ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। सन 1921 में भाँग, गाँजा, शराब आदि मादक-द्रव्य बहिष्कार के आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। उल्लेखनीय है कि इसी आंदोलन में दरंग जिला में स्थित लालमाटि चाय बागान की निवासी श्रीमती मांगरी उरांव

उर्फ 'मालती मैम' नामक एक महिला को पुलिस के हाथों प्राण गँवाने पड़े। संभवत: मांगरी ही असम के स्वतंत्रता संग्राम में शहीद प्रथम महिला है।'' इसके अलावा लेखिका दिप्तीरानी सइकिया चांगमाय, डॉ. सागर बरुवा, बिटूल कुर्मी तथा सुशील कुर्मी आदि ने मांगरी उरांव उर्फ मालती मैम के संबंध में लेख, पुस्तक आदि प्रकाशित करवाया है। 1921 में शहीद हुई मांगरी उरांव जैसी वीरांगना के जीवन संबंधी तथ्यों को संचित करना आवश्यक है। इससे न सिर्फ मांगरी उरांव को उचित सम्मान मिलेगा, बल्कि इतिहास में बिसराए गईं मांगरी जैसी वीरांगनाओं के बारे में जानने की इच्छा भी जगेगी। ❑

संदर्भ :

1. सुशील कुर्मी : 2009, 'निर्जातितार परा वीरांगनालोई' पदातिक प्रकाशन-चांदमारी, गुवाहाटी।
2. डॉ. डंबरूधर नाथ : 2018, 'असम बुरंजी' विद्या भवन प्रकाशन, महात्मा गाँधी पथ- जोरहाट।
3. डॉ. श्रीमती दीप्ती शर्मा : Role of the Women of Assam in the Freedom Movement in the period 1921-1947: With special reference to the Brahmaputra Valley (अप्रकाशित)।

देशप्रेम को बढ़ाता झंडागीत

कानपुर (उत्तर प्रदेश) के नर्वल में नौ सितंबर, 1896 को झंडागीत के रचनाकार श्याम लाल गुप्त 'पार्षद' का जन्म हुआ था। विश्वेश्वर प्रसाद व कौशल्या देवी के पांच बेटी में श्याम लाल सबसे छोटे थे। बचपन से ही उनके मन में देश के प्रति भावनाएँ उफान पर थीं। भारत की पराधीनता से वे व्यथित रहते। सन् 1921 में उनकी मुलाकात गणेश शंकर विद्यार्थी से हुई। विद्यार्थी जी के संपर्क में आने के बाद वह स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े। कानपुर के साथ-साथ श्याम लाल गुप्त ने फतेहपुर अपना कर्मक्षेत्र बनाया। 21 अगस्त, 1921 को फतेहपुर में असहयोग आंदोलन शुरू करने के आरोप में उन्हें गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। श्याम लाल गुप्त को आठ बार जेल भेजकर प्रताड़ित करने का प्रयास हुआ, लेकिन वह विचलित नहीं हुआ और भारत माता को गुलामी की जंजीरों से मुक्ति दिलाने के लिए जी-जान से जुटे रहे। 1924 में महात्मा गांधी की प्रेरणा से श्याम लाल गुप्त ने 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' गीत की रचना की। 23 दिसंबर 1925 को गांधी जी की मौजूदगी में ही इसे झंडागीत की मान्यता दी गई। कानपुर के कांग्रेस के सम्मेलन में पहली बार इसका गान हुआ। स्वाधीनता प्राप्ति के उपरांत 15 अगस्त, 1952 को उन्होंने लाल किले में झंडागीत गाकर इसे देश को समर्पित कर दिया। 26 जनवरी, 1973 को उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया।

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा,
झंडा ऊंचा रहे हमारा।
सदा शक्ति बरसाने वाला,
प्रेम सुधा सरसाने वाला,
वीरों को हरषाने वाला,
मातृभूमि का तन-मन-सारा॥ झंडा ...।
स्वतंत्रता के भीषण रण में,
लखकर बढ़े जोश क्षण-क्षण में,
कांपे शत्रु देखकर मन में,
मिट जाए भय संकट सारा॥ झंडा...।
इस झंडे के नीचे निर्भय,
लें स्वराज्य यह अविचल निश्चय,
बोले भारत माता की जय,
स्वतंत्रता हो ध्येय हमारा ॥ झंडा...।
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा...

यह अमर गीत लिखकर कानपुर के श्याम लाल गुप्त पार्षद ने सारे देश को स्वाधीनता की लड़ाई का सिपाही बना दिया था। ❑

ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলন আৰু অসমীয়া উপন্যাসত ইয়াৰ প্ৰভাৱ
(বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ 'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়' আৰু 'মৃত্যুঞ্জয়' উপন্যাসৰ বিশেষ অধ্যয়ন)

ড° অম্বেশ্বৰ গগৈ

সহকাৰী অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ, কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী-৭৮১০০১, অসম
ম'বাইল ঃ ৯৮৫৪০৭৪৭৭১
ই-মেইল - ambeswar@gmail.com

দিপাংকৰ বৰুৱা

গৱেষক ছাত্ৰ, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয়
গুৱাহাটী-৭৮১০০১, অসম
ই-মেইল ঃ dipankarboruah717@gmail.com

সাৰাংশ ঃ

ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনক পটভূমি হিচাপে লৈ ভাৰতীয় বিভিন্ন ভাষাৰ সাহিত্যত গল্প, কবিতা, উপন্যাস, নাটক আদি ৰচনা কৰা হৈছে। অসমীয়া সাহিত্যও ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। অসমীয়া গল্প, কবিতা, উপন্যাস আৰু নাট্য সাহিত্যত স্বাধীনতা সংগ্ৰাম আৰু স্বাধীনোত্তৰ ভাৰতৰ তৎকালিন পৰিস্থিতিৰ ৰূপায়ন যথেষ্ট পৰিমাণে দেখিবলৈ পোৱা যায়। অসমীয়া উপন্যাস বিধাত বিশ্বযুদ্ধ আৰু স্বাধীনতা আন্দোলনৰ পটভূমিত কেইখনমান উচ্চমানৰ উপন্যাস ৰচনা হৈছে। এইবোৰত সমকালিন ভাৰতীয় পৰিস্থিতিত অসমীয়া সমাজৰ প্ৰতিক্ৰিয়া প্ৰকাশ পাইছে। এই শ্ৰেণীৰ অন্যান্য উপন্যাসৰ ধাৰাত ঔপন্যাসিক বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ কেইবাখনো উপন্যাস সংযোজিত হৈছে। ভট্টাচাৰ্য এগৰাকী মাৰ্ক্সীয় দৰ্শনেৰে উদ্বুদ্ধ সাম্যবাদী লেখক আছিল। তেওঁৰ ৰচনাৰাজিৰ মাজত তেনে চিন্তা-দৰ্শনৰ পূৰ্ণ প্ৰকাশ ঘটিছে। বিয়াল্লিছৰ গণ আন্দোলনত সক্ৰিয়ভাৱে অংশ গ্ৰহণ কৰা ভট্টাচাৰ্যৰ বহু ৰচনাত বিপ্লৱৰ প্ৰতিধ্বনি শুনা যায়। আমাৰ নিৰ্বাচিত বিষয়ৰ প্ৰদত্ত গৱেষণা পত্ৰত স্বাধীনতা আন্দোলনৰ প্ৰসংগই স্থান লাভ কৰা অসমীয়া উপন্যাসসমূহৰ সম্যক পৰিচয় দাঙি ধৰাৰ লগতে বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ বিষয়বস্তুৰে ৰচিত 'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়' আৰু 'মৃত্যুঞ্জয়' উপন্যাসৰ বিশেষ অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ ঃ স্বাধীনতা আন্দোলন, অসমীয়া উপন্যাস, সাম্যবাদ, সমাজবাদ, বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য।

০.০ অৱতৰণিকা ঃ

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

প্ৰাক্ স্বাধীনতা কালৰ অসমীয়া সাহিত্যত বিশ্বযুদ্ধৰ তাৎক্ষণিক পৰিস্থিতি, অসমীয়া সমাজৰ প্ৰতিক্ৰিয়া, আৰু ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ প্ৰস্তুতি, প্ৰতিবাদী কাৰ্যসূচী ৰূপায়ন আদিৰ বিষয় উত্থাপিত হৈছিল। এই ধৰণৰ বিষয়বস্তুক উপজীৱ্য হিচাপে লৈ স্বাধীনোত্তৰ কালত বিভিন্ন বিধাত বহুতো সাহিত্য ৰচনা কৰা হ'ল। অসমীয়া সাহিত্যত যুদ্ধোত্তৰ যুগ বা স্বাধীনোত্তৰ যুগ বুলি

সমালোচকসকলে যি যুগ নির্দেশ কৰিছে, সেই সময়ছোৱাৰ সাহিত্যত দুখনকৈ বিশ্বযুদ্ধ আৰু তাৰ সমান্তৰালভাৱে ভাৰতে স্বাধীনতা লাভৰ বাবে কৰা দীৰ্ঘদিনীয়া সংগ্ৰাম, গান্ধীৰ অহিংসা নীতি, তাৰ বিপৰীতে সুভাষ চন্দ্ৰ বসুৰ আদৰ্শৰ সশস্ত্ৰ যুদ্ধ, হত্যা-হিংসা, ত্যাগ, আত্মবলিদানৰ মাজেৰে ভাৰতৰ স্বাধীনতা লাভ, ভাৰত বিভাজন, চৰকাৰ গঠন আদিৰ অশান্তজৰ্জৰ সময়ৰ ঘটনাৱলীয়ে স্থান লাভ কৰিছে।

উনবিংশ শতিকাতে আৰম্ভ হোৱা অসমীয়া জাতীয়তাবাদী সাহিত্যৰ ধাৰাই বিংশ শতিকাৰ মাজ ভাগলৈ জাতীয় চৈতন্যৰ সমানে ৰাষ্ট্ৰীয় সমস্যা সন্দৰ্ভত এক অৱস্থান গঢ়ি তুলিবলৈ সক্ষম হ'ল। অসমীয়া উপন্যাস চৰ্চাত উল্লিখিত সময়ৰ বিষয়বস্তুৰে কলাত্মকৰূপত প্ৰকাশ লাভ কৰিছে। সংখ্যাৰ দিশেৰে স্বাধীনতা আন্দোলনৰ বিষয়বস্তুৰে ৰচিত উপন্যাসৰ সীমিত যদিও সেই সময়ৰ পটভূমিত বহুকেইখন সাৰ্থক উপন্যাস ৰচিত হৈছে। লিখিত বুৰঞ্জীয়ে বহন নকৰা অনেক ঘটনা আৰু পৰিস্থিতিক এই উপন্যাসবোৰে বহন কৰি আছে। আমাৰ গৱেষণাপত্ৰত ভাৰতৰ তথা অসমৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ স্বৰূপ বুজিবলৈ চেষ্টা কৰাৰ লগতে অসমীয়া উপন্যাসত এইবোৰৰ স্থান নিৰ্ণয়ৰ চেষ্টা কৰা হৈছে।

০.২ অধ্যয়ন পদ্ধতি ঃ

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

আমাৰ গৱেষণাৰ প্ৰধান ভিত্তি- ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলন আৰু তদানীন্তন ভাৰত তথা অসমৰ ৰাজনৈতিক ঘটনাৰাজিয়ে অসমীয়া উপন্যাসত কেনেধৰণে প্ৰকাশ লাভ কৰিছে অধ্যয়ন কৰা। লগতে উপন্যাসৰ মাজেৰে ফুটি উঠা অসম মুলুকৰ আন্দোলটোৰ স্বৰূপ সন্ধান কৰা। ইয়াৰ বাবে ভাৰতৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ ঘটনাৱলীয়ে স্থান লাভ কৰা অসমীয়া উপন্যাসসমূহ অধ্যয়ন কৰা হৈছে। এইবোৰৰ গভীৰ অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজন আছে। কিন্তু আটাইবোৰ উপন্যাসৰ বিশদ্ আলোচনা গৱেষণাপত্ৰৰ চমু পৰিসৰত সম্ভৱ নহয়। সেয়েহে স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ বিষয়বস্তুৰে ৰচনা কৰা বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ 'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়', আৰু

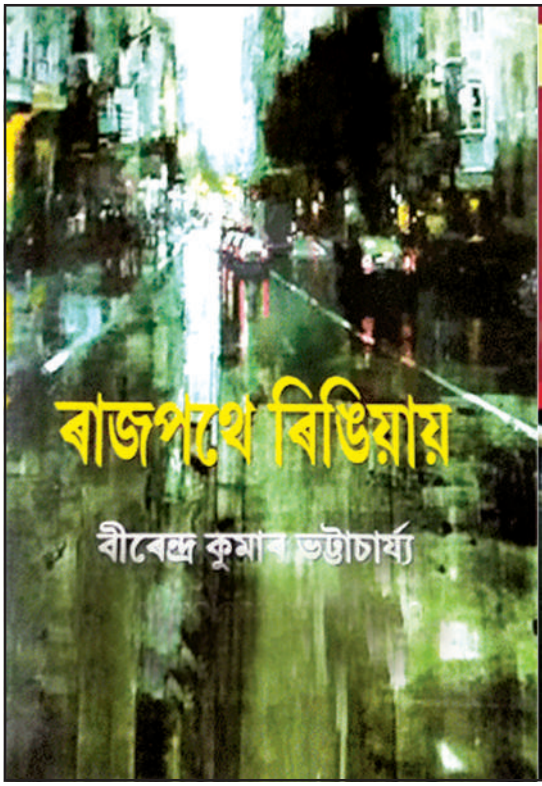

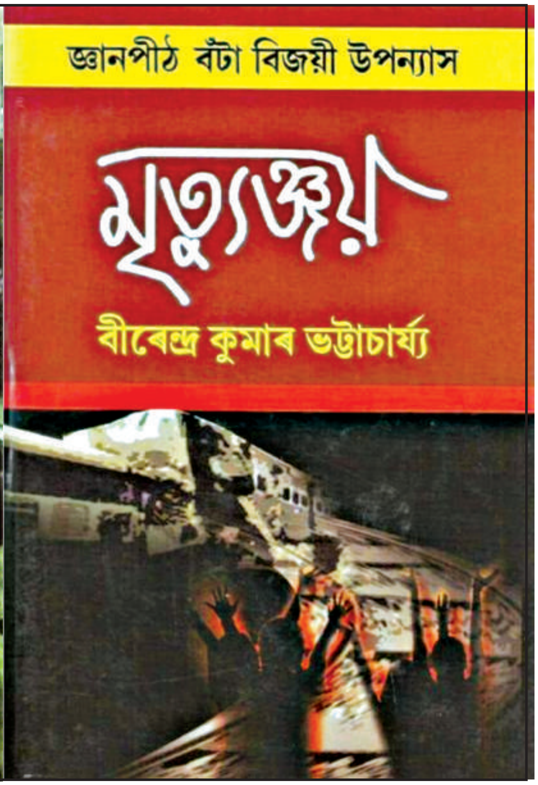

‘মৃত্যুঞ্জয়’ উপন্যাসৰহে বিশেষ অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য ঃ

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে কেতবোৰ লক্ষ্য নিৰ্দ্ধাৰিণ কৰি লোৱা হৈছে। সেইবোৰ হ’ল—

১) ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলন আৰু তদানীন্তন ভাৰত তথা অসমৰ ৰাজনৈতিক পৰিস্থিতিয়ে প্ৰভাৱিত কৰা অসমীয়া উপন্যাসৰ ধাৰাটোৰ পৰিচয় দাঙি ধৰা।

২) উপন্যাসসমূহৰ মাজেৰে প্ৰাক্ স্বাধীনতা আৰু স্বাধীনতা কালৰ অসমৰ তৎকালিন পৰিস্থিতি সন্দৰ্ভত অসমীয়া বিপ্লৱী সত্তাৰ প্ৰতিক্ৰিয়া কেনে আছিল অধ্যয়ন কৰা।

৩) ভাৰতৰ স্বাধীনতা বিপ্লৱৰ ঘটনা-পৰিঘটনাক বিষয় হিচাপে লৈ ৰচিত বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ ‘ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়’, আৰু ‘মৃত্যুঞ্জয়’ উপন্যাসৰ মাজেৰে আন্দোলনটোৰ স্বৰূপ অধ্যয়ন কৰা।

৪) স্বাধীনতা আন্দোলনত গান্ধীবাদী আৰু সুভাষ পন্থী দুই বিপৰীত বৈপ্লৱিক মতাদৰ্শই অসমত সৃষ্টি কৰা পৰিস্থিতি বীৰেন ভট্টৰ উপন্যাসৰ মাজেৰে অধ্যয়ন কৰা।

১.০ ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলন আৰু অসমীয়া উপন্যাস ঃ

পূৰ্বতে উল্লেখ কৰা হৈছে যে, বিংশ শতিকাৰ দ্বিতীয় আৰু তৃতীয় দশকৰ ভিতৰত ৰচিত অসমীয়া উপন্যাসত মহাত্মা গান্ধীৰ নেতৃত্বত আৰম্ভ হোৱা ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলন, স্বাৱলম্বী ভাৰত নিৰ্মাণৰ প্ৰস্তুতিৰ আদৰ্শবাদৰ গভীৰ প্ৰভাৱ লক্ষ্য কৰা যায়। গান্ধীৰ অসম ভ্ৰমণে অসমীয়া জাতীয়তাবাদী জনতাক উদ্বুদ্ধ কৰিছিল। গান্ধীৰ নেতৃত্বত দেশ জুৰি আৰম্ভ হোৱা বিদেশী সামগ্ৰী বৰ্জন, ব্ৰিটিছৰ অপশাসনৰ গ্ৰাসৰপৰা ভাৰতীয় জনতাক মুক্ত কৰাৰ স্বপ্নই অসমীয়া সমাজকো প্ৰভাৱিত কৰিছিল। সমাজ সচেতন লেখক, শিল্পীসকলে এই মতাদৰ্শবোৰ সাধাৰণ জনতাৰ কাষ চপাই নিবলৈ বিভিন্ন কাৰ্য পন্থা গ্ৰহণ কৰিছিল। সাহিত্য, সংগীত, নাটক, জাগৰণমূলক সভা আদি আছিল সেই পন্থাবোৰৰ ভিতৰত প্ৰধান। মুক্তিৰ আন্দোলনৰ সৈতে সমাজ সংস্কাৰ আৰু গ্ৰাম্য উন্নয়নো গান্ধীৰ স্বৰাজ ভাৰতৰ স্বপ্ন আছিল। কিয়নো সংস্কাৰহীন সমাজ আৰু অৰ্থনৈতিকভাৱে দুৰ্বল পিছপৰা জনতাৰে দেশ পৰিচালনা যে অসম্ভৱ সেই কথা গান্ধীয়ে উপলব্ধি কৰিছিল। গান্ধীৰ মতাদৰ্শৰদ্বাৰা সচেতন লেখকসকল অনুপ্ৰাণিত হৈছিল। বিংশ শতিকাৰ তৃতীয় দশকতে প্ৰকাশিত দণ্ডিনাথ কলিতাৰ ‘সাধনা’ (১৯২৮) উপন্যাসত সমাজ সংস্কাৰকামী চিন্তা আৰু দেশ মুক্তিৰ প্ৰত্যাশা প্ৰকাশ পাইছে। স্বাধীনোত্তৰ কালত প্ৰকাশ পোৱা তেওঁৰ আন এখন উপন্যাস ‘আৱিষ্কাৰ’তো (১৯৫০) একেই ভাৱাদৰ্শ প্ৰচাৰিত হোৱা দেখা যায়। আন এগৰাকী উপন্যাসিক দৈৱচন্দ্ৰ তালুকদাৰে জাতীয় স্বতন্ত্ৰতাৰ বাবে গান্ধীৰ আদৰ্শ প্ৰচাৰ কৰি উপন্যাস ৰচনা কৰিছিল। তালুকদাৰৰ ‘আগ্নেয়গিৰি’ (১৯২৪), ‘অপূৰ্ণ’ (১৯৩১), আৰু ‘বিদ্ৰোহী’ (১৯৪৮) উপন্যাসত এনে গান্ধীবাদী আদৰ্শ প্ৰকাশ পাইছে। স্বাধীনতাৰ পূৰ্বে প্ৰকাশ পোৱা বীণা বৰুৱাৰ ‘জীৱনৰ বাটত’ (১৯৪৪) উপন্যাসত অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ বিভিন্ন ঘটনা-পৰিঘটনাৰ সমান্তৰালভাৱে স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ ঢৌৱে স্পৰ্শ কৰা অসমীয়া সমাজৰ ক্ৰিয়া-পৰিক্ৰিয়াও কাহিনীৰ মাজলৈ আহিছে। তৎকালিন ভাৰতৰ সামাজিক, ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক পৰিস্থিতিৰপৰা উপন্যাসখন বিচ্ছিন্ন নহয়। উপন্যাসখনৰ কাহিনীৰ সময় যিহেতু প্ৰাক্ স্বাধীনতা কালৰ শেষ ভাগৰ, সেয়েহে স্বাভাৱিকতে স্বাধীনতা আন্দোলনৰ দেশজুৰি সৃষ্টি হোৱা জাগৰণে উপন্যাসৰ পটভৌমিক সমাজখনক স্পৰ্শ কৰিছে। ‘দেশৰ মুক্তি সংগ্ৰামৰ কাৰণে মহাত্মা গান্ধীৰ আহ্বানৰ প্ৰতি জনোৱা সঁহাৰি, সমাজ সেৱাৰ মনোভাৱ, অহিংস আন্দোলন, বিদেশী বস্তু বৰ্জন, মাদকদব্য নিবাৰণ— এই সকলোবোৰতে পোহৰ পেলোৱা হৈছে। (ভৰালী, ২০১৫, পৃ. ৩৬)

দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধ আৰু ভাৰতৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ পাছৰ অসমীয়া সমাজখনৰপৰা বুটলি অনা কেইটামান চৰিত্ৰৰ জীৱনৰ বৈচিত্ৰহীন ঘটনাৰ অবিনস্ত সংযোজন প্ৰফুল্ল দত্ত গোস্বামীৰ ‘কেঁচাপাতৰ কঁপনি’ (১৯৫২)। উপন্যাসখনে বিশ্বযুদ্ধ আৰু স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ অশান্ত পৰিৱেশে অসমীয়া সমাজলৈ অনা পৰিৱৰ্তন, শোষিত, বঞ্চিতসকলৰ জীৱনৰ আংশিক দিশ ফুটাই তুলিছে। আওহতীয়া পিছপৰা কছাৰী গাঁৱতো বামপন্থী মতাদৰ্শৰ স্পৰ্শ লাগিছে। গাঁওবোৰত অস্থিৰতা। খাজানা দিবলৈ ৰায়তবোৰে অস্বীকাৰ কৰিছে। সাম্যবাদী নেতা ৰবীন কুমাৰে গাঁৱে-গাঁৱে মানুহবোৰক সজাগ কৰিছে। ৰবীন কুমাৰ শিল্পীও। ৰবীন কুমাৰ চৰিত্ৰৰ প্ৰসংগত কৃষ্ণ কুমাৰ মিশ্ৰই লিখিছে— ‘শিল্পী বিষ্ণু ৰাভাৰ আদৰ্শ আৰু কৃতিৰ আলমত ৰবীন্দ্ৰ কুমাৰৰ চৰিত্ৰই গঢ় লোৱা যেন লাগে।’ (মিশ্ৰ, ২০১২, পৃ. ৩৮৮)

নৰকান্ত বৰুৱাৰ চুটি উপন্যাস 'কপিলীপৰীয়া সাধু' (১৯৫৩)ত গান্ধীৰ সত্যাগ্ৰহ আন্দোলনৰ প্ৰতি আস্থা আৰু বিশ্বাস প্ৰকাশ কৰা হৈছে। সত্যাগ্ৰহী আন্দোলনৰ সমৰ্থন আগবঢ়াই তিলক গোঁসায়ে কাৰাবাস খাটিছে। কাৰাৰুদ্ধ হৈয়ো তেওঁ অহিংস পন্থা ত্যাগ কৰা নাই। বৰঞ্চ স্বাধীনতা আন্দোলনত নামি ইংৰাজৰ ৰোষত পৰা ডেকা আন্দোলনকাৰীসকলক জেইলৰ ভিতৰতে গান্ধীৰ অহিংস নীতি আৰু সত্যাগ্ৰহৰ জ্ঞান দিছে। উপন্যাসখনৰ মুখ্য চৰিত্ৰ ৰূপ সিং বা ৰূপায়েও স্বাধীনতাৰ যুঁজত নামি কাৰাবাস খাটিছে। জেইলত থাকোঁতে তিলক গোঁসাইৰ মুখেৰে গান্ধীৰ অহিংস নীতি আৰু সত্যাগ্ৰহৰ কথা শুনি গান্ধীৰ আদৰ্শৰ প্ৰতি ৰূপাই আকৰ্ষিত হৈছে। জেইলৰপৰা ওলাই আহি ৰূপায়ে নিজৰ গাঁৱৰ, নিজৰ সমাজখনৰ উন্নতিৰ কামত মনোনিৱেশ কৰিছে।

স্বাধীনোত্তৰ কালৰ উপন্যাস চৰ্চাত চন্দ্ৰপ্ৰসাদ শইকীয়াৰ কেইবাখনো মানবিশিষ্ট উপন্যাস সংযোজন ঘটিছে। শইকীয়াৰ 'এদিন' (১৯৭১), 'জন্মান্তৰ' (১৯৭৮), 'তোৰে মোৰো আলোকৰে যাত্ৰা' (দুটা খণ্ডত। প্ৰথম খণ্ড ঃ ১৯৯২, দ্বিতীয় খণ্ড ঃ ১৯৯৯) উপন্যাসত ভাৰতৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ প্ৰসংগ আছে। কাহিনীৰ পটভূমি স্বাধীনতা আন্দোলনৰ সময়ৰ বা তাৰ পৰৱৰ্তী কালৰ হোৱা বাবে স্বাধীনতা আন্দোলনত অসমীয়া সমাজৰ ভূমিকাৰ সামগ্ৰিক আভাস একোটা পৰিস্ফুট হৈছে। 'এদিন' শীৰ্ষক উপন্যাসৰ মুখ্য চৰিত্ৰ জাতীয়তাবাদী যুৱক প্ৰশান্ত স্বাধীনতাৰ যুঁজত জড়িত হৈছে। অন্যান্য ঘটনাৰ লগতে ভাৰত ত্যাগ আন্দোলন, স্বাধীনতা সংগ্ৰামীৰ আত্মবলিদান, দেশাত্মবোধ, তাৰ বিপৰীতে এচাম সুবিধাবাদী নেতাৰ ভণ্ড চৰিত্ৰক উপন্যাসখনত উপস্থাপন কৰা হৈছে। কেৱল সমস্যাসমূহ উপস্থাপন কৰাই নহয়, মুখ্য চৰিত্ৰ প্ৰশান্তই এইবোৰ সমাধানৰ চেষ্টাও কৰিছে। 'জন্মান্তৰ' উপন্যাসত 'প্ৰকাশ' চৰিত্ৰই স্বাধীনতা বিপ্লৱত সক্ৰিয়ভাৱে অংশ লৈছে। বিপ্লৱত যোগদান কৰিবলৈ সি পঢ়া-শুনা কিছু দিনৰ বাবে বাদ দিছে। প্ৰকাশে কৈছে ঃ দেশ স্বাধীন হোৱাৰ পিছত মই আকৌ পঢ়িবলৈ আৰম্ভ কৰিম....এতিয়া মোৰ একেবাৰে সময় নাই। দেশৰ প্ৰতি মোৰ এটা দায়িত্ব আছে। (শইকীয়া, ১৯৭৮, পৃ. ১৬২) উপন্যাসখনৰ আলোচনা প্ৰসংগত আনন্দ বৰমুদৈয়ে লিখিছে— 'স্বাধীনতা সংগ্ৰাম আৰু অসহযোগ আন্দোলনক 'জন্মান্তৰ'ত এখন বহল প্ৰেক্ষাপটত থৈ বিচাৰ কৰা হৈছে। (বৰমুদৈ, ২০১২ পৃ. ৫০৭)

স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ নেতৃস্থানীয় বিপ্লৱীৰ জীৱনৰ আধাৰতো উপন্যাস ৰচনা কৰা হৈছে। ৰূপকোঁৱৰ জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ সৃষ্টি চেতনাৰ আধাৰ আছিল সমাজৰ প্ৰগতি আৰু ৰূপান্তৰ মাজেৰে সুন্দৰৰ সাধনা। সাম্যবাদ আৰু গান্ধীৰ আদৰ্শৰদ্বাৰা গভীৰভাৱে অনুপ্ৰাণিত জ্যোতিপ্ৰসাদৰ গীত, নাটকত ক্ষমতাশালীৰ কৱলত স্ব-অধিকাৰ হেৰুওৱা জনতাৰ প্ৰতিবাদী কণ্ঠ শুনা যায়। শক্তিশালী ভাৰতৰ বিপ্লৱী বীৰ সন্তানক অধিকাৰৰ বাবে যুঁজ দিবলৈ আহ্বান জনাই তেওঁ গীত, নাটক ৰচনা কৰিছিল। তেওঁ নিজেও স্বাধীনতা আন্দোলনত নামিছিল। এইগৰাকী ৰূপান্তৰৰ সাধক বিপ্লৱী জ্যোতিপ্ৰসাদৰ বৰ্ণিল জীৱন কাহিনীৰে চন্দ্ৰপ্ৰসাদ শইকীয়াই 'তোৰে মোৰে আলোকৰে যাত্ৰা' উপন্যাসখন ৰচনা কৰিছে। জ্যোতিৰ জীৱনৰ প্ৰসংগতে স্বাধীনতা আন্দোলনৰ ঘটনাও সংপিক্ত হৈছে। জ্যোতিপ্ৰসাদৰ জীৱনৰ আধাৰত চৈয়দ আব্দুল মালিকে ৰচনা কৰিছে 'ৰূপতীৰ্থৰ যাত্ৰী' (প্ৰথম খণ্ডঃ ১৯৬৩, দ্বিতীয় খণ্ড ঃ ১৯৬৫) উপন্যাস।

ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ প্ৰসংগই স্থান পোৱা আন এখন উপন্যাস হোমেন বৰগোহাঞিৰ 'পিতা-পুত্ৰ' (১৯৭৫)। উপন্যাসখনত স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ ব্যাপকতাই সমাজৰ সকলো স্তৰৰ লোকক স্পৰ্শ কৰা দেখুওৱা হৈছে। স্বৰাজোত্তৰ কালত অসমৰ গাঁও-চহৰলৈ অহা পৰিৱৰ্তন, সংঘাত, সংগ্ৰাম, আৰু সামাজিক অৱক্ষয়ৰ ছবি উপন্যাসত আমি পাওঁ। সাধাৰণ জনতাৰ দেশ মুক্তিৰ যুঁজলৈ অৱদান, অন্যহাতে সুবিধাবাদী শ্ৰেণীয়ে আন্দোলনত কোনো ধৰণৰ সহযোগিতা নকৰাকৈ স্বাধীনতাৰ পাছত দেশপ্ৰেমিকৰ মৰ্যদা পোৱাৰ বিষয়টোও উপন্যাসখনত দেখুওৱা হৈছে।

পশুপতি ভৰদ্বাজ ছদ্মনামেৰে উপন্যাস ৰচনা কৰা উমাকান্ত শৰ্মাৰ 'এজাক মানুহ এখন অৰণ্য' (১৯৮৬) উপন্যাসত অসমৰ চাহ জনগোষ্ঠীৰ লোকসকল ইংৰাজ চৰকাৰৰ অপশাসন, শোষণ আৰু বঞ্চনাৰ বিৰুদ্ধে প্ৰতিবাদী হৈ উঠিছে। ব্ৰিটিছসকলেই তেওঁলোকক অসমত চাহ খেতিৰ বাবে আনিছিল। পৰৱৰ্তী সময়ত কামত নিয়োজিত কৰি তেওঁলোকক প্ৰাপ্যৰ পৰাও বঞ্চিত কৰিছে। এই চাহ জনগোষ্ঠীয় শ্ৰমিকসকল প্ৰতিবাদী হৈ উঠিছে। ভাৰতৰ স্বাধীনতাৰ বিপ্লৱৰপৰা পোৱা প্ৰেৰণাই তেওঁলোকক আত্ম অধিকাৰৰ বাবে যুঁজ দিবলৈ সাহস যোগাইছে। ইংৰাজৰ অপশাসনৰ উফৰাই স্বাধীন ভাৰতৰ

নাগৰিক হোৱাৰ যুঁজত চাহ জনগোষ্ঠীসকলৰ এই প্ৰতিবাদে কিছু পৰিমাণে হ'লেও অৰিহণা যোগাইছে।

পূৰ্ণাঙ্গৰূপত বিয়াল্লিছৰ গণ বিপ্লৱৰ পটভূমিত ৰচিত উপন্যাস তাকৰ। বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ 'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়' আৰু 'মৃত্যুঞ্জয়' উপন্যাসৰ পাছত উমাকান্ত শৰ্মাই ৰচনা কৰা 'ৰঙা ৰঙা তেজ' (১৯৬৭) এই ক্ষেত্ৰত উল্লেখযোগ্য উপন্যাস। শৰ্মাৰ উপন্যাসখনত স্বাধীনতা আন্দোনৰ হিংসাত্মক কাৰ্যাৱলীৰ বৰ্ণনাই বহু ঠাই অধিকাৰ কৰিছে। বিপ্লৱৰ ধ্বংসাত্মক কাৰ্য যেনে- ৰে'লৰ দলং ভঙা, তৰাবনৰ বিমান-কোঠ নিৰ্মাণ কাৰ্যত অগ্নি সংযোগ, বৰনগৰ থানা আক্ৰমণ আৰু জাতীয় পতাকা উত্তোলন আদি আন্দোলনৰ উগ্ৰতাৰ বৰ্ণনা আছে। উপন্যাসৰ মুখ্য চৰিত্ৰ শিৱনাথে এই ধ্বংসাত্মক কাৰ্যাৱলীৰ নেতৃত্ব দিছে। শৰ্মাৰ উপন্যাসখন স্বাধীনতা সংগ্ৰামত অসমীয়া নাৰীৰ ভূমিকা প্ৰকাশ পাইছে। উপন্যাসখনত 'উমা' আৰু 'সাবিত্ৰী' নামৰ নাৰী চৰিত্ৰ দুটাই বৈপ্লৱিক কাৰ্য পন্থাৰ দলং ভঙাত অংশ গ্ৰহণ কৰিছে। আনহাতে সুমিত্ৰা নামৰ আন এক নাৰী চৰিত্ৰই ধৰ্ষণকামী চিপাহীক লোৰ শলাৰে চকু ফুটাই দিছে । সুমিত্ৰাই ৰঞ্জন নামৰ কিশোৰ এজনক লগত লৈ বৰনগৰ থানাত প্ৰৱেশ কৰি থানাত বন্ধী কৰি থোৱা বিপ্লৱীসকলক পলাবলৈ ব্যৱস্থা কৰি দিয়া কাৰ্য মনকৰিবলগীয়া। উপন্যাসখনৰ বিশাল অংশত এই সশস্ত্ৰ বিদ্ৰোহৰ বিৱৰণ আছে।

'ইয়াৰুঙ্গম', 'মৃত্যুঞ্জয়', 'ৰঙা ৰঙা তেজ' উপন্যাসত গান্ধীৰ অহিংস পন্থাৰ সমান্তৰালভাৱে সশস্ত্ৰ সংগ্ৰামত বিশ্বাসী বিপ্লৱীৰ ধ্বংসাত্মক আন্দোলনকো দেখুওৱা হৈছে।

গল্পকাৰ, ঔপন্যাসিক অৰূপা পটঙ্গীয়া কলিতাৰ 'অয়নান্ত' (১৯৯৪) উপন্যাসৰ এটা মনকৰিবলগীয়া দিশ হ'ল- ভাৰতৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰামত নাৰীশক্তিৰ ভূমিকা। উপন্যাসখনত পুৰুষৰ সমানে অসমীয়া নাৰীয়েও স্বাধীনতা আন্দোলনত সক্ৰিয় অংশ গ্ৰহণ কৰা দেখুওৱা হৈছে। স্বাধীনতাৰ যুঁজত বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰা অসমীয়া নাৰী সন্দৰ্ভত উপন্যাস ৰচনাৰ সমল আৰু গুৰুত্ব দুয়োটাই থকা স্বত্বেও বৰ্তমানেও এই দিশৰ ঔপন্যাসিকসকলে বিশেষ দৃষ্টি ৰখা নাই বুলিবই পাৰি।

অৰুণ শৰ্মাৰ 'আশীৰ্বাদৰ ৰং' (১৯৯৬) উপন্যাসৰ কাহিনীতো ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ প্ৰসংগ আছে। উপন্যাসৰ এটা অংশত আন্দোলনৰ প্ৰস্তুতি, গাঁৰে-ভূঞে জাতীয়তাবাদী ডেকা দেশপ্ৰেমীৰ স্বাধীনতা আন্দোলনত অংশ গ্ৰহণ, প্ৰতিবাদী কাৰ্যসূচী ৰূপায়ন ছবি সংলগ্ন কৰা হৈছে। উপন্যাসখনে ১৯৩৫ চনৰপৰা অসম আন্দোলনলৈকে এক বিশাল সময়ৰ পটভূমিত অসমৰ সমাজ, ৰাজনীতিৰ উত্থান-পতন, সমাজলৈ অহা পৰিৱৰ্তনৰ ইতিহাস বহন কৰিছে। স্বাধীনতা আন্দোলনৰ কাৰ্যসূচীত জনতাই স্বতঃস্ফূৰ্তভাৱে যোগদান কৰিছে। উপন্যাসখনৰ মুখ্য চৰিত্ৰ গজেনেও স্বাধীনতাৰ স্বপ্নত আন্দোলনত নামি প্ৰতিবাদী কাৰ্যসূচীত জড়িত হৈছে। পুলিছৰ নিৰ্মম প্ৰহাৰতো আন্দোলনকাৰীসকল থমকি ৰোৱা নাই। ব্ৰিটিছৰ আমোলত উত্থান ঘটা অসমীয়া মৌজাদাৰ, গাঁওবুঢ়া, আমোলা-বিষয়া, চিপাহী শ্ৰেণীয়ে দুখীয়া-নিচলাক শোষণ কৰি ইংৰাজীৰ গোলামী কৰাৰ দিশটোও উপন্যাসতখনত অৱতাৰণা কৰা হৈছে।

স্বাধীনতা আন্দোলনৰ প্ৰসংগই আংশিকভাৱে স্থান পোৱা আন কেইখনমান উপন্যাস হ'ল— মেদিনী চৌধুৰীৰ 'বিপন্ন সময়' (১৯৯৬), 'ফেৰেংগাদাও' (১৯৮২) (বিপ্লৱী শিল্পী বিষ্ণু ৰাভাৰ জীৱন আধাৰিত); শুচিব্ৰতা ৰায়চৌধুৰীৰ 'জীৱন প্ৰেমৰ অতন্দ্ৰ অনল' (২০০০) (অম্বিকাগিৰি ৰায়চৌধুৰীৰ জীৱন ভিত্তিক উপন্যাস) ইত্যাদি।

২.০ বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলন ঃ

বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যই গল্প, কবিতা, উপন্যাস, নিবন্ধ আদি বিভিন্ন শ্ৰেণীৰ সাহিত্য ৰচনা কৰিছিল। মূলতঃ ঔপন্যাসিক হিচাপে পৰিচিত ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসৰ সংখ্যা প্ৰায় কুৰিখন। ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ সময়ত ভট্টাচাৰ্য কটন কলেজৰপৰা স্নাতক ডিগ্ৰী লাভ কৰা চফল ডেকা। ভট্টাচাৰ্যই স্বাধীনতা আন্দোলনত ভাৰতীয় জনতাৰ ত্যাগ, আত্ম-বলিদান, পৰাক্ৰম আৰু ইংৰাজ শাসনৰ পৃষ্ঠপোষক একাংশ ভাৰতীয়ৰ ভণ্ড চৰিত্ৰ, শোষণ, শ্ৰেণী বৈষম্যৰ দুই বিপৰীত ছবি স্বচক্ষে প্ৰত্যক্ষ কৰিছিল। সেয়ে তেওঁৰ গল্প, উপন্যাস, কবিতা আদিত এইবোৰ স্বাভাৱিকতে উপস্থিত হৈছেহি। ভট্টাচাৰ্যৰ প্ৰথম উপন্যাস 'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়' (১৯৫৫) ১৯৪৭ চনৰ ১৫ আগষ্টৰ স্বাধীনতা দিৱসৰ পুৱাৰ পৰা সন্ধিয়ালৈ মাথোঁ এটা দিনৰ ঘটনাৰ পটভূমিত ৰচিত। ভট্টাচাৰ্যৰ আন এখন গুৰুত্বপূৰ্ণ উপন্যাস 'ঈয়াৰুঙ্গম' (১৯৬০)। ঈয়াৰুঙ্গমত বৰ্ণিত হৈছে দ্বিতীয় মহাসমৰ আৰু ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনৰ সময়ত নগা পাহাৰৰ টাংখুল নগা সমাজৰ ঘাট-প্ৰতিঘাট আৰু বিপ্লৱৰ

কাহিনী। ১৯৪২ চনৰ গণ বিপ্লৱক পটভূমিত ৰচিত উপন্যাস 'মৃত্যুঞ্জয়' (১৯৬১)। 'প্ৰতিপদ' (১৯৭০) নামৰ উপন্যাসখন ডিগবৈৰ শ্ৰমিক বিপ্লৱৰ আধাৰ কাহিনীৰে ৰচনা কৰা। ডিগবৈৰে ঔদ্যোগ বিপ্লৱৰ কাহিনীৰে ৰচনা কৰা উপন্যাস 'বল্লৰী' (১৯৭৩)। 'কালৰ হুমুনিয়াহ' (১৯৮২) কাহিনী প্ৰাক্ স্বাধীনতা কালৰ চাহ বাগিছাৰ শ্ৰমিকৰ সৈতে বিদেশী, শ্বেতাঙ্গৰ সংঘাত। শতঘ্নী (১৯৬৫) নামৰ উপন্যাসখনৰ বিষয়-বস্তু চীনৰ ভাৰত আক্ৰমণ। বাংলা দেশৰ স্বাধীনতা যুদ্ধৰ পটভূমিত ৰচিত উপন্যাস 'কবৰ আৰু ফুল' (১৯৭২)। 'ৰঙা মেঘ' (১৯৭৬) নামৰ আন এখন উপন্যাসতো সমকালিন ৰাজনৈতিক স্বৰূপৰে প্ৰকাশ।

দেখা যায় ভট্টাচাৰ্যৰ সাহিত্যিক জীৱনত তদানীন্তন ভাৰতৰ স্বাধীনতা, সমতা আৰু মুক্তিকামী চিন্তাৰ প্ৰভাৱ ব্যাপক। তেওঁৰ নাটকসমূহটো পৰাধীন ভাৰতৰ শোষণ, শাসন আৰু বৈষম্যবাদী উশৃংখল সমাজখনৰ চিত্ৰণ আৰু স্বাধীনতাৰ হকে ঐক্যান্তিক যুঁজ, দেশৰ হেৰুৱা স্বাধীনতা ফিৰাই আনিবলৈ নিজৰ জীৱনকো তুচ্চ জ্ঞান কৰি প্ৰাণ আহুতি দিয়া অসমীয়া আৰু সৰ্বত্ৰে ভাৰতীয় বিপ্লৱী সত্তাৰ মহানতাৰ প্ৰকাশ প্ৰকাশ পাইছে। 'মুক্তি', 'গোমধৰ কোঁৱৰ', 'পিয়লি ফুকন', 'মণিৰাম দেৱান', 'কুশল কোঁৱৰ' আদি নাটকৰ বিষয়বস্তুৰে ইয়াকে নিৰ্দেশ কৰে। ভট্টাচাৰ্যৰ একমাত্ৰ কবিতা পুথি 'সান্ধ্যস্বৰ'ৰ কবিতাসমূহতো সমাজ সচেতন দৃষ্টিভংগীৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। ভট্টাচাৰ্যৰ সাহিত্য চিন্তাত কম বেছি পৰিমানে সকলোতে সাম্যবাদ আৰু সমাজবাদী চিন্তাৰ প্ৰকাশ পৰিলক্ষিত হয়।

ঔপন্যাসিক হিচাপে ভট্টাচাৰ্যৰ এনে অনন্য ৰাজনৈতিক চেতনাৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি গোৱিন্দ প্ৰসাদ শৰ্মাই লিখিছে— 'ঔপন্যাসিক হিচাপে এওঁৰ এটা বিশেষ পৰিচয় এই যে, এওঁ অসমীয়া সাহিত্যৰ শ্ৰেষ্ঠ ঔপন্যাসিক নহ'লেও, শ্ৰেষ্ঠ ৰাজনৈতিক ঔপন্যাসিক।' (শৰ্মা, ২০১০ পৃ. ২৬)

২.১ বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ 'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়'ত ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলন ঃ

'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়' ভট্টাচাৰ্যৰ প্ৰথম উপন্যাস। উপন্যাসখনৰ কাহিনী স্বাধীনতা লাভৰ তাৎক্ষণিক প্ৰতিক্ৰিয়া। ইয়াত দীৰ্ঘদিনীয় সংগ্ৰামৰ অন্ততঃ ভাৰতবাসীয়ে লাভ কৰা স্বাধীনতাক কমিউনিষ্টসকলে প্ৰকৃত স্বাধীনতা নহয় বুলি অনস্থা ঘোষণা কৰিছে। 'এ আজাদী জুঠী হ্যায়' বুলি তেওঁলোকে প্ৰতিবাদ সাব্যস্ত কৰিছে। কমিউনিষ্ট আদৰ্শৰে অনুপ্ৰাণিত ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসখনো এই শ্ল'গানৰে প্ৰতিধ্বনি বুলিব পাৰি।

নিজৰ উপন্যাসৰ নেপথ্যৰ বিষয়ে বীৰেন্দ্ৰ ভট্টাচাৰ্যই 'মোৰ উপন্যাস ঃ নেপথ্যৰ কথা' শীৰ্ষক ৰচনাত লিখিছে—

'মোৰ উপন্যাসসমূহৰ মাজত যুগসন্ধিৰক্ষণজনিত একপ্ৰকাৰৰ ৰাজনৈতিক ৰস আছে ঃ 'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়', 'ঈয়াৰুঙ্গম', 'প্ৰতিপদ'— এইবিলাকত ই কম-বেছি পৰিমাণে পৰিস্ফুট। আনকি 'আই', 'নষ্টচন্দ্ৰ', 'শতঘ্নী', 'বল্লৰী'— এইবিলাক অৰাজনৈতিক মানৱীয় কাহিনীতো সেই ৰস আহি ছিটিকি পৰিছেহি। ইয়াৰ কাৰণে মই অনুতপ্ত নহয়, যদিও মোৰ কিছু পাঠক অসন্তুষ্ট। কাৰণ ৰাজনৈতিকক ৰস মানৱ ৰসৰে অংগ মাথোন।'

বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত ৰাজনৈতিক চেতনাৰ আলোচনা সন্দৰ্ভত কৃষ্ণ কুমাৰ মিশ্ৰই লিখিছে— 'ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত ৰাজনৈতিক চেতনাৰ অন্তৰালত ঘাইকৈ দুটা অনুঘটকে ক্ৰিয়া কৰিছে। এটা হ'ল প্ৰত্যক্ষ অভিজ্ঞতাৰ যোগেদি আৰ্জিত লিপ্ততা (involvement)। ...দ্বিতীয় কথাটো হ'ল তেওঁৰ ৰাজনৈতিক ভাৱাদৰ্শ।' (মিশ্ৰ, ২০০৮, ৬৮)

ভট্টাচাৰ্যই উপন্যাসসমূহত গান্ধীৰ আদৰ্শৰ সমানে হিংসাত্মক বিপ্লৱৰ দিশটোকো গুৰুত্ব দিয়া দেখা যায়। কৃষ্ণ কুমাৰ মিশ্ৰই স্বাধীনতাৰ দুটা দশকৰ পাছত ৰচিত বীৰেন ভট্টৰ 'মৃত্যুঞ্জয়' উপন্যাসত ঔপন্যাসিকে হিংসাত্মক বিপ্লৱৰ পোষকতা কৰিছে (৬৮) বুলিছে। কিন্তু, ঔপন্যাসিক হিংসাত্মক আন্দোলনৰ সমৰ্থক আছিল বুলিলে ভুল হ'ব। স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ স্বৰূপ প্ৰকাশ কৰোঁতে ঔপন্যাসিকে কেইবাখনো উপন্যাসত হিংসাত্মক দিশটো অধিক ৰূপত দেখুওৱাটো অৱশ্যে সত্য। বীৰেন ভট্ট সমতাৰ সমাজ আৰু উদাৰনৈতিক মানৱতাবাদৰ সমৰ্থক আছিল। গণতান্ত্ৰিক দেশৰ সকলো নাগৰিকে স্বাধীনচেতীয়াভাৱে জীয়াই থাকিবলৈ পোৱাকহে তেওঁ প্ৰকৃত স্বাধীনতা বুলি ভাৱিছিল। আনৰ দয়া পৰবশ হৈ জীয়াই থকা, নিজৰ সম্পত্তিৰ অধিকাৰ নথকা, মত প্ৰকাশৰ স্বাধীনতা নথকা দেশৰ সৰ্বসাধাৰণৰ বাবে এইয়া স্বাধীনতা নহয় ক্ষমতাৰ হস্তান্তৰহে। তেওঁ 'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়'ত এনে বক্তব্যকে প্ৰকাশ কৰা হৈছে।

উপন্যাসৰ এঠাইত মোহনে লিফলেট এখন পঢ়িছে—

'যদি জনতাই স্বাধীনতা পাইছে ক'ত সেই জনশাসন? মাটিৰ ওপৰত সমাজৰ অধিকাৰ ক'ত? খেতিৰ ওপৰত খেতিয়কৰ স্বত্ব ক'ত? ক'ত বনুৱাসকলৰ আত্ম-প্ৰতিষ্ঠাৰ দিহা। ক'ত তেওঁলোকৰ জীয়াই থকাৰ অধিকাৰ?... নাই এই খুজি অনা স্বাধীনতাত জনতাৰ জীৱন্ত আসাৰ বাণী নাই আছে হতাশাৰ হা-হুমুনিয়াহ। এই স্বাধীনতা বহুজনৰ বাবে নহয়, কেইজনমানৰ বাবে।... ই ধনীৰ, পুঁজিপতিৰ, চোৰাংবেপাৰীৰ, মিল মালিকৰ, জমিদাৰৰ স্বাধীনতা।' (ভট্টাচাৰ্য, ২০১৬, পৃ. ২০)

উপন্যাসখনত সমাজৰ লাঞ্চিত, বঞ্চিত, শোষিত শ্ৰেণীয়ে দেশ স্বাধীনতাৰ বাবে কৰা শ্ৰম-ত্যাগ কৰি লাভ কৰা পৰিণতিত আশাহত হৈছে। প্ৰথম স্বাধীনতা দিৱসে ঔপন্যাসিকৰ মনত সৃষ্টি কৰা প্ৰতিক্ৰিয়া, তেওঁ লক্ষ্য কৰা স্বাধীনতাৰ স্বৰূপ, স্বাধীনতাৰ যুঁজত নিজৰ আত্মীয়-স্বজন, প্ৰেম-প্ৰণয়কো ত্যাগ কৰা সংগ্ৰামী সত্তাৰ কৰুণ জীৱন গাঁথাকো প্ৰত্যক্ষদৰ্শীয় অভিজ্ঞতাৰে উপস্থাপন কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিছে।

আন্দোলনৰ সময়ত দেশপ্ৰেমীৰ ত্যাগৰ বিপৰীতে ইংৰাজৰ ৰাজত্বত ক্ষমতাশালী হৈ উঠা সুবিধা সন্ধানী শ্ৰেণীটোৰ স্বাধীনতাৰ প্ৰতি অনস্থা দেখিবলৈ পোৱা গৈছিল। 'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়'ত মোহনৰ দেউতাক এগৰাকী আৰক্ষী বিষয়া। তেওঁ মোহনৰ সহযোগী কমিউনিষ্টসকলেৰে ঘৰত হোৱা আলোচনাৰ বিৰোধিতা কৰিছে। ব্যক্তি স্বাৰ্থৰ বাবে তেওঁ সামাজিক স্বাৰ্থক জলাঞ্জলি দিবলৈ কোণ্ঠাবোধ কৰা নাই। এদিন আলোচনাৰ মাজতে মোহনৰ দেউতাকে কঠোৰ সুৰত সকলোকে উদ্দেশ্যি কৈছে- 'মোৰ ঘৰত মই ৰাজনীতিৰ আড্ডা হ'বলৈ নিদিওঁ।' লগতে মোহনক কৈছে- 'তোৰ বাবেই মোৰ পদোন্নতি নহ'ল, এতিয়া মই ডি. এছ. পি. হ'ব লাগিছিল।' (ভট্টাচাৰ্য, ২০১৬, পৃ. ১৪)

স্বাধীনতা লাভৰ তাৎক্ষণিক প্ৰতিক্ৰিয়া হিচাপে কমিউনিষ্টসকলে বিযোদগাৰ প্ৰদৰ্শন কৰিছে। মজদুৰ বিলাক স্বাধীনতা উৎসৱৰ সভালৈ সদল-বলে যাত্ৰা কৰি গৈছে। তেওঁলোকৰ মুখত প্ৰতিবাদী শ্ল'গান ধ্বনিত হৈছে- 'বৰ্খাস্ত মজদুৰক কাম দিয়ক, মালিকৰ শোষণ বন্ধ কৰক।' (ভট্টাচাৰ্য, ২০১৬, পৃ.১২২) তেওঁলোকে আপোচৰ স্বাধীনতা বিচৰা নাই, বিচাৰিছে প্ৰকৃত স্বাধীনতা।

কমিউনিষ্টসকলেও সদ্য প্ৰাপ্ত স্বাধীনতাক প্ৰকৃত স্বাধীনতা নহয় বুলি পুনৰ এক সৰ্বাত্মক বিপ্লৱৰ প্ৰস্তুতি চলাইছে। স্বাধীনতা দিৱসৰ মহা উৎসৱত আয়োজিত সভাত মজদুৰসকলে মুখ্যমন্ত্ৰীক বিৰোধিতা কৰি 'এ আজাদী জুঠী হ্যায়, দেশকী জনতা ভুখী হ্যায়' (ভট্টাচাৰ্য, ২০১৬, ১২৩) বুলি প্ৰতিবাদ সাব্যস্ত কৰিছে। তেওঁলোকৰ হাতে-হাতে ৰঙা পতাকা। মোহনেও মুখ্যমন্ত্ৰীক প্ৰতিবাদ জনাই কৈছে - 'স্বাধীনতা মানে চৰকাৰ সলনি নহয়, ব্যৱস্থাৰ সলনি।' (ভট্টাচাৰ্য, ২০১৬, ১২৩) সভাত মোহনে দীঘলীয়া ভাষণ দিছে— 'এই স্বাধীনতা কেৱল ক্ষমতা-হস্তান্তৰতে সীমাবদ্ধ। বিদেশীয়ে প্ৰৱৰ্তন কৰা ঔপনিৱেশিক অৰ্থনীতি, অন্যায় সমাজ-ব্যৱস্থা, শাসন চলি আছে। গাঁৱত কৃষক, চহৰত বনুৱা, ঘৰত নাৰী, মঞ্চত শিল্পীসকলো প্ৰকৃত স্বাধীনতাৰপৰা বঞ্চিত।...আমাক ব্যক্তিগত সম্পত্তিৰ দুদৰ্শাৰপৰা মুক্তি লাগে। ভাত-কাপোৰ, ঘৰৰ মাটি, কাৰখানা পৰিচালনা, সৃষ্টি আৰু আৱিষ্কাৰৰ প্ৰকৃত স্বাধীনতা লাগে। আমাৰ দেশ আমাক চলাবলৈ দিব লাগে...' (ভট্টাচাৰ্য, ২০১৬, ১২৮)

এই কাৰ্যত নতুন চৰকাৰ ক্ষুণ্ণ হৈ বিপ্লৱী জনতাৰ ওপৰত পুনৰ ব্ৰিটিছী শাসনকে আৰোপ কৰিছে। প্ৰতিবাদীসকলৰ ওপৰত পুলিচে লাঠি চাৰ্জ কৰিছে, ১৪৪ ধাৰা জাৰি কৰিছে আৰু আন্দোলনৰ নেতাসকলক আটক কৰি কাৰাগাৰলৈ প্ৰেৰণ কৰিছে। মন কৰিবলগীয়া যে মোহনৰ দেউতাকে এই কাৰ্যত আগ-ভাগ লৈছে।

উপন্যাসখনত মানৱীয় প্ৰেমৰ ডুখৰীয়া চিত্ৰও আছে। চৰিত্ৰবোৰে স্বৰাজ আন্দোলনৰ নামত তেওঁলোকৰ প্ৰেম উৎসৰ্গা কৰিছে। আটাইবোৰ ঘটনা-উপঘটনাক তল পেলাই ৰাজনৈতিক বিষয়সমূহতহে ঔপন্যাসিকে দৃষ্টি নিবদ্ধ কৰাত সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই 'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়'ক তীব্ৰ সমালোচনা কৰিছে। তেওঁ লিখিছে— 'লেখকৰ প্ৰথম সৃষ্টি 'ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়' সাৰ্থক সৃষ্টি বুলি ক'ব নোৱাৰি। সমাজবাদী আদৰ্শই উপন্যাসকলাৰ শ্বাসৰোদ্ধ কৰি আত্মমহিমা প্ৰকাশ কৰিছে।.... ৰাজনৈতিক আদৰ্শবাদে কাহিনীৰ স্বাভাৱিক বিকাশ আড়ষ্ট কৰি চৰিত্ৰাৱলীকো স্বকীয় ৰূপ পৰিগ্ৰহ কৰিবলৈ সুবিধা দিয়া নাই। সাহিত্যত যিকোনো বাদ (ism)ৰ স্থান গৌণ, অন্যথা কলা দূষিত হোৱাৰ সম্ভাৱনাই অধিক। ভট্টাচাৰ্যৰ প্ৰথম উপন্যাস শৈল্পিক অঙ্গ তেওঁৰ উৎকট ৰাজনৈতিক মতবাদে বিকল কৰিছে।' (শৰ্মা, ২০১৩, ৮৪)

২.২ বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ 'মৃত্যুঞ্জয়' উপন্যাসত ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলন ঃ

বিয়াল্লিছৰ গণ বিদ্যোহৰ বিষয়বস্তুৱে যিকেইখন উপন্যাসত স্থান লাভ কৰিছে, সেইসমূহৰ ভিতৰত বীৰেন ভট্টৰ 'মৃত্যুঞ্জয়'ক আটাইতকৈ সাৰ্থক সৃষ্টি বুলি ক'ব পাৰি। 'মৃত্যুঞ্জয়'ত স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ বিষয়বস্তুৱে স্থান লাভ কৰাই নহয় কাহিনীৰ আধাৰটোৱেই হৈছে বিয়াল্লিছৰ বিৰাট গণ আন্দোলন। উপন্যাসখনৰ পাতনিত ঔপন্যাসিকে লিখিছে—

'এই উপন্যাসত বৰ্ণোৱা ঘটনাৰ কাল ১৯৪২। চৰিত্ৰসমূহ কাল্পনিক। অৱশ্যে ইয়াত স্বাধীনতাৰ এই শেষ আন্দোলনৰ চিৰস্মৰণীয় ঘটনাৱলীৰ আভাস আৰু চিত্ৰণ আছে। ই ইতিহাস নহয়। নিজৰ কালত ঘটা ঘটনাৰ আলম লৈ ৰচা কাহিনীহে। এই ঘটনাবোৰ আন যুগৰল মানুহে বা ঐতিহাসিকে আন ধৰণে চাব আৰু সেইবোৰৰ বেলেগ ব্যাখ্যা দিব। কিন্তু তথাপি ৰচকে নিজে দেখা সেই মহৎ জাগৰণ, তাত লিপ্ত হৈ অনুভৱ কৰা উত্তোলনৰ ভাৰ আৰু তাৰ মাজেদি প্ৰত্যক্ষ কৰা স্বপ্ন— এইবোৰ জনাবলৈ অন্য যুগৰ লেখক বা বুৰঞ্জীবিদ সমৰ্থ হ'ব বুলি আমাৰ ধাৰণা নহয়।'

উপন্যাসখনত বিয়াল্লিছৰ গণ-আন্দোলনৰ সহিংসাত্মক দিশটোৰ ৰূপায়ন হৈছে। বিয়াল্লিছৰ আন্দোলনত প্ৰথমে গান্ধীৰ অহিংসা পন্থা অৱলম্বন কৰা হৈছিল, কিন্তু অহিংসা পন্থাৰে কোনো ফল নধৰিল। বৰঞ্চ আন্দোলনকাৰী নেতাবোৰক জেইলত ভৰাই থ'লে। নেতৃত্বহীন জনতাৰ মাজত হিংসাত্মক পন্থাই মাথোঁ বাছি আছিল। তেওঁলোকৰ সংকল্প আছিল 'কৰিম নহ'লে মৰিম'। তেওঁলোকে পথ অৱৰোধ কৰা, ৰেল বগৰোৱা, দলং ভঙা, চৰকাৰী কাৰ্যালয়ত জুই লগোৱা, আৰক্ষী থানা, বিমান ঘাটি, ডাকসেৱা আদি চৰকাৰী সম্পত্তি ধ্বংস কৰা আদি ধ্বংস কৰি ইংৰাজক প্ৰতিবাদ জনাইছিল। ফলস্বৰূপে জনতাৰ ওপৰত পুলিচ, মিলিটেৰিৰ হত্যা-হিংসা, ধৰ্ষণ অকথ্য নিৰ্যাতন চলিছিল।

'...নেতাবোৰ গ্ৰেপ্তাৰ হৈ যোৱাৰ পিছত কৰ্মীবোৰক কৰ্মসূচী দিব লগা হ'ল। কৰ্মসূচী হ'ল মিলিটেৰীৰ যোগান বন্ধ কৰি আৰু দলং ভাঙি যাতায়াত ভংগ কৰা। দেশ মিলিটেৰীৰে ভৰি পৰিছিল। ...যমদূতৰ দৰে দয়ামায়াহীন পুলিচ, চি-আই
-ডিয়ে দেশসেৱকৰ পাচে পাছে ঘূৰি নকৰিবৰ চকৰি কৰিলে। গাঁৱে-গাঁৱে দেশদ্ৰোহী ঠিকাদাৰ ওলাল, নগৰততো কথাই নাই। দেশদ্ৰোহীৰ সীমাসংখ্যা নোহোৱা হ'ল। ... কামপুৰৰ টেলিফোনন-টেলিগ্ৰাফৰ তাঁৰ কটা হ'ল এদিন। ৰে'লৰ ফিচ্-পেল্ট খুলি থোৱা বাবে এদিন কামপুৰৰ ৰে'ল লাইনৰপৰা যুদ্ধৰ খাৰ-বাৰুদ লৈ অহা মানগাড়ী এখন লাইনচ্যুত হ'ল। পিছদিনা ওচৰৰে যমুনামুখ থানাত পতাকা তোলা হ'ল। এখন-দুখনকৈ দলং ভাগিল। এই সকলোবোৰতে এটা নহয় এটা কাম নিয়াৰিকৈ কৰিছিল ধনপুৰে।' (ভট্টাচাৰ্য, ২০০৫, ২)

আন্দোলনকাৰীসকল মতৰ দ্বন্দ্ব আছিল। হাতত অস্ত্ৰ তুলি লোৱাৰ অগত্য কোনো পথ নেদেখি হত্যা-হিংসাৰ ধ্বংসযজ্ঞত নামি পৰা পূৰ্বৰ আদৰ্শবাদী বিপ্লৱীসকলৰ অন্তৰ্দ্দ্বন্দ্ব হৈছে। ৰূপনাৰায়ন, গোঁসাই, মধু, ধনপুৰহঁতে ৰে'ল বাগৰাইছে। ৰে'ল যাত্ৰী আৰু সেনাভৰ্ত্তি ৰে'লখন দ' খাৱৈত বাগৰি পৰা আৰু বহুতো ডবা জ্বলি যোৱা, যাত্ৰীৰ মৰণ ছিৎকাৰ, মানুহ পোৰাৰ গোন্ধ, অৰ্ধমৃতৰ মৃত্যুৰে যুঁজ দেখি তেওঁলোকৰ মন অস্থিৰ হৈ পৰিছে।

'...দবাবোৰ ইটোৰ ওপৰত সিটো উঠি বাগৰি পৰিবলৈ ধৰিলে। কিছুমান হোলাত, কিছুমান ৰে'লৰ দাঁতিৰ মাটিত। তিনি-চাৰি বাগৰ মাৰি দবাবোৰ গৈ গৈ এঠাইত স্থিৰ হ'লগৈ।

ৰে'লখনৰ ভিতৰত দুই-এটা দবা জ্বলি গৈছিল, প্ৰচণ্ড তাপ বিকিৰণ হৈ।....মৰাশৰ পোৰা গোন্ধ আহি তাৰ নাকত লাগিলহি। এবাৰ এখন ছিগা হাত দবা এটাৰ পৰা ওলাই একেবাৰে ৰূপনাৰায়নৰ ওচৰত পৰিলহি।...দবাবোৰৰ অস্থিৰতা যিমানে কমি আহিল, সিমানে কাণত পৰিল মানুহৰ যন্ত্ৰণাৰ চিঞৰ। দবাৰ দুইকুৰা লাহে-লাহে প্ৰচণ্ড হৈ উঠিছে, লগে লগে চিঞৰ শুনা গৈছে আৰু পোৰা মানুহৰ গোন্ধ আহি নাকচ লাগিছেহি।' (ভট্টাচাৰ্য, ২০০৫,১৭৪)

নিজৰ হিংসাত্মক আন্দোলনৰ ৰূপ প্ৰত্যক্ষ কৰি গোঁসায়ে কৈছে— 'মানুহ নমৰাকৈ যদি যুঁজিব পাৰিলোহেঁতেন তেন্তে কিমান যে সুন্দৰ হ'লহেঁতেন। কিন্তু তাকে ইহঁতে নিদিলে। মহাত্মা বাহিৰত থকাহেঁতেনো কিজানি এনে যুঁজ নহ'লহেঁতেন।' (ভট্টাচাৰ্য, ২০০৫, ১৭৫)

ৰূপনাৰায়ণৰো আগৰ আত্মবিশ্বাস কুটাঘাতৰ ভংয়কৰ দৃশ্য আৰু মৃত্যুৰ ক্ৰোৰতাই নোহোৱা কৰিছে। সি মনতে ভাবিছে 'যুদ্ধ বৰ নিষ্ঠুৰ'। অন্তৰ্দ্বন্দ্বৰ পিছমুহূৰ্ততে

আকৌ মন দৃঢ় কৰিছে— ‘নহয়, নহয়, আৰু ডাঙৰ অপৰাধ কৰিছে এই সেনাবোৰে। কুকুৰ-মেকুৰী মৰাদি অহিংস সৈনিকক গুলিয়াই মাৰিছে। অপৰাধৰ আজি প্ৰথম চেজাই হৈছে।’ (ভট্টাচাৰ্য, ২০০৫, ১৭৬)

নিজকে হত্যাকাৰী বলি পতিয়ন নিয়াবলৈ ৰূপনাৰায়ণৰ মানসিক সংঘাত হৈছে। তথাপি আকৌ নিজকে প্ৰবোধ দিছে— ‘ঠিকেই সি হত্যাকাৰী, গোঁসাই হত্যাকাৰী, মধু হত্যাকাৰী, ধনপুৰ হত্যাকাৰী....এইবোৰ প্ৰয়োজনীয় হত্যা। এনে হত্যা নকৰিলে দেশ স্বাধীন নহয়।’ (ভট্টাচাৰ্য, ২০০৫, ১৭৬)

গান্ধীৰ আদৰ্শক শ্ৰদ্ধা জনায়ো অহিংস সংগ্ৰামত ৰূপনাৰায়ণৰ দৰে অনেকৰ বিশ্বাস হেৰাই গৈছে। তেওঁলোকে সুভাষ বসু, জয়প্ৰকাশ লোহিয়াই দেখুওৱা বাট অনুকৰণ কৰিছে। ৰূপনাৰায়ণৰ যুক্তি, মুক্তিৰ যুঁজ অহিংসাৰে নহয়। হোৱা হ’লে ইমানদিনে ভাৰতে স্বাধীনতা পালেহেঁতেন।

‘মৃত্যুঞ্জয়’ উপন্যাসত নাৰী সমাজকো স্বাধীনতা আন্দোলনৰ সক্ৰিয় অংশগ্ৰহণকাৰী হিচাপে দেখুওৱা হৈছে। এইবোৰত ঐতিহাসিকভাৱে সত্য ঘটনা আৰু চৰিত্ৰকে কাহিনীৰ মাজলৈ আনি উপন্যাসখনত বাস্তৱানুগ কৰি তোলা হৈছে। গহপুৰত কণকলতা বৰুৱা শ্বহীদ হোৱা ঘটনা, তিলেশ্বৰী, তিলক ডেকা, ভোগেশ্বৰী ফুকননী, কুশল কোঁৱৰ আদিৰ সংগ্ৰাম আৰু আত্মত্যাগৰ প্ৰসংগক কাহিনীৰ মাজত অৱতাৰণা কৰা হৈছে। এক কথাত বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ ‘মৃত্যুঞ্জয়’ত বিয়াল্লিছৰ গণ আন্দোলনৰ উগ্ৰ বৈপ্লৱিক দিশটোৰ সাৰ্থক প্ৰকাশ ঘটিছে।

উপসংহাৰ ঃ

উপৰোক্ত অধ্যয়নৰপৰা ভাৰতৰ স্বাধীনতা বিপ্লৱৰ সামগ্ৰিক ৰূপৰ আভাস লাভ কৰাৰ লগতে অসমীয়া উপন্যাসত স্বাধীনতা বিপ্লৱবাদৰ কম-বেছি প্ৰভাৱৰ বিষয়ে পৰিচয় লাভ কৰিব পাৰোঁ। অসম মুলুকত স্বাধীনতা আন্দোলনৰ গান্ধীবাদী আৰু সুভাষবাদী দুই বিপৰীত মতাদৰ্শৰ যে, ব্যাপক প্ৰভাৱ পৰিছিল উপন্যাসকেইখনৰ আলোচনাত সেই কথা স্পষ্ট হৈছে। এইবোৰৰ সত্যতাৰ পৰিমাণ নিৰূপনৰ বাবে সহঃপাঠৰ অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজন। পৰম্পৰাগত সমালোচনাৰ ধাৰাৰপৰা আঁতৰি আহি নব্য ইতিহাসৰ সন্ধান কৰিলে নিশ্চয় বিভিন্ন তথ্য পোহৰলৈ আহিব। ❑

প্ৰসংগসূত্ৰ ঃ

ভৰালী, শৈলেন। (২০১৫)। উপন্যাস বিচাৰ আৰু বিশ্লেষণ। পঞ্চম প্ৰকাশ, চন্দ্ৰ প্ৰকাশন।
মিশ্ৰ, কৃষ্ণ কুমাৰ। (২০১২)।‘প্ৰফুল্লদত্ত গোস্বামীৰ উপন্যাস’। এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস, ঠাকুৰ, নগেন (সম্পা.), অসমীয়া বিভাগ, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়।
শইকীয়া, চন্দ্ৰপ্ৰসাদ। (**১৯৭৮**)। জন্মান্তৰ
বৰমুদৈ, আনন্দ। (২০১২)।‘চন্দ্ৰপ্ৰসাদ শইকীয়াৰ উপন্যাস’। এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস, ঠাকুৰ, নগেন (সম্পা.), অসমীয়া বিভাগ, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়।
শৰ্মা, গোবিন্দ প্ৰসাদ। (২০১০)। বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য ঃ ঔপন্যাসিক। বনলতা।
মিশ্ৰ, কৃষ্ণ কুমাৰ। ২০০৮। প্ৰসংগ ঃ উপন্যাস। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ।
ভট্টাচাৰ্য, বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ।২০১৬। ৰাজপথে ৰিঙিয়ায়। চন্দ্ৰ প্ৰকাশন।
প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ।
প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ।
প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ।
প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ।
প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ।
শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ।২০১৩। অসমীয়া উপন্যাসৰ গতিধাৰা। সৌমাৰ প্ৰকাশ
ভট্টাচাৰ্য, বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ। ২০০৫। মৃত্যুঞ্জয়। সাহিত্য প্ৰকাশ।
প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ।
প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ।
প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ।
প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ।

মহাত্মা গান্ধীৰ ভাষা বিষয়ক চিন্তা-চৰ্চা, হিন্দী ভাষা আৰু স্বাধীনতা সংগ্ৰাম ঃ এটি অধ্যয়ন

ড° কণিমা পাঠক

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ
জাগীৰোড মহাবিদ্যালয়,
জাগীৰোড-৭৮২৪১০
মৰিগাঁও, অসম
ম'বাইল ঃ ৮৪৭১৯২৫৪৬৯
ই-মেইল ঃ kanimaphathak6@gmail.com

প্ৰস্তাৱনা ঃ

কোনো এখন দেশ বা এটা জাতিৰ পৰিচয় সেই দেশ বা জাতিৰ ভাষাৰ জড়িয়তে হয়। সেই ভাষাটো বা ভাষাটোৰ সাহিত্যৰ জড়িয়তে দেশখনৰ পৰিচয় হয়। ভাষাগত দিশৰ পৰা ভাৰতবৰ্ষ এখন সমৃদ্ধিশালী দেশ। ইয়াত বহুতো ভাষাৰ প্ৰচলন আছে আৰু প্ৰত্যেক ভাষাই ভিন্ন ভিন্ন সংস্কৃতিক প্ৰতিনিধিত্ব কৰি নানা ৰঙী সংস্কৃতিৰে ভাৰতবৰ্ষখনক সমৃদ্ধিশালী কৰিছে। ভাৰতবৰ্ষৰ বিবিধ ভাষাৰ মাজত হিন্দী ভাষাৰ মহত্বপূৰ্ণ স্থান আছে। যদিও ভাৰতীয় সংবিধানত ১৯৫০ চনৰ ১৪ চেপ্তেম্বৰৰ পৰাহে হিন্দী ভাষাক ৰাষ্ট্ৰভাষা হিচাপে স্বীকৃতি দিয়া হয়; কিন্তু ভাৰতবৰ্ষত হিন্দী ভাষাৰ প্ৰভাৱ বহুত আগৰপৰাই ভাৰতীয় জনগণৰ ওপৰত আছিল। ভাৰতীয় স্বাধীনতা আন্দোলনৰ যি সংগ্ৰাম তাত হিন্দী ভাষাৰ ভূমিকা অত্যন্ত গুৰুত্বপূৰ্ণ আছিল; যেনে— ৰাষ্ট্ৰীয় আন্দোলনৰ মানুহখিনিক একেলগ কৰিবৰ বাবে আৰু সকলো প্ৰশাসনীয় ভাৱে একত্ৰিত হোৱাৰ বাবে হিন্দী ভাষাকে মাধ্যম হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছিল। তদুপৰি সেই সময়ছোৱাৰ কবি-সাহিত্যিক, লেখক, সাংবাদিক, নাট্যকাৰ, চলচিত্ৰ নিৰ্মাতা সকলোৱে হিন্দী ভাষাৰ ব্যৱহাৰ কৰি হিন্দী ভাষাৰ জড়িয়তে স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ এই ৰাষ্ট্ৰীয় আন্দোলনটোক সক্ৰিয় কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল।

ভাৰতবৰ্ষৰ দৰে বিশাল সংস্কৃতি আৰু বিবিধ ভাষা-ভাষীৰ দেশ এখনত সকলো নাগৰিক একগোট হৈ স্বাধীন ভাৰতৰ সপোন বাস্তৱ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত হিন্দী ভাষাই গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছিল। মহাত্মা গান্ধীৰ ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনত যোগদানৰ বাবে হিন্দী ভাষাৰ প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰত অধিক গুৰুত্ব লাভ কৰিছিল। যেনে— সত্যাগ্ৰহ, অসহযোগ আন্দোলন, সবিনয় অৱজ্ঞা আন্দোলন, ভাৰত ত্যাগ আন্দোলন ইত্যাদিৰ ক্ষেত্ৰত জন নায়কৰ মহত্বপূৰ্ণ ভাষণাৱলী সৰ্ব সাধাৰণৰ মাজত প্ৰকাশ কৰাৰ কাৰণে হিন্দী ভাষাকে মাধ্যম হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছিল। অহিন্দী ভাষী লোকসকলেও ভাষণৰ মাধ্যম হিন্দী ভাষাতে হোৱাত অথবা সমগ্ৰ দেশৰ যোগাযোগৰ মাধ্যম হিন্দী হোৱাৰ বাবে সকলোৱে হিন্দী ভাষাতে সৰলতাৰে মনৰ ভাৱ প্ৰকাশ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল।

ভাৰতবৰ্ষত বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ নিজা নিজা মাতৃভাষা থকা স্বত্বেও সকলো নেতাকো হিন্দী ভাষাৰ প্ৰতি আৰ্কষিত কৰিছিল; যিটো সকলোৱে পক্ষে সম্ভৱ নহৈছিল।

গান্ধীজীৰ মতে বিদেশী ভাষাত শিক্ষা গ্ৰহণ কৰিলে মগজুত অসহ্যকৰ বোজা পৰে। যিটো ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলৰ মগজুৰে সহ্য কৰিব নোৱাৰে। অৰ্থাৎ তেওঁ মাতৃভাষাত শিক্ষাৰ কথাত অধিক গুৰুত্ব দিছিল। মাতৃভাষাটো হৈছে হৃদয়ৰ ভাষা আৰু বিদেশী ভাষা এটা হৈছে মগজুৰে ব্যৱহাৰ কৰা এটা ভাষা। সেইবাবে মাতৃভাষাত শিক্ষা লাভ কৰিলে কম সময়তে জ্ঞান অৰ্জন কৰিব পাৰে। বিদেশী (ইংৰাজী) ভাষাত শিক্ষা গ্ৰহণ কৰিলে ভাষাটো শিকাত বহুত সময় অবাবত নষ্ট হয়। তদুপৰি নিজৰ ভাষাত থকা আবেগ আৰু ভাৱখিনি অন্য বিদেশী ভাষা এটাত প্ৰকৃতভাৱে অনুভৱ কৰিব পৰা নাযায়। গান্ধীজীৰ মতে এগৰাকী শিশুৰ সৰ্বাংগীন বিকাশ মাতৃভাষাত দিয়া শিক্ষাৰ জৰিয়তে সম্ভৱ বুলি কৈছে।

হিন্দী ভাষাৰ পক্ষপাতী হোৱা স্বত্বেও গান্ধীজীয়ে ইংৰাজী ভাষা আৰু ইংৰাজী ভাষাৰ সাহিত্যকো যথেষ্ট আদৰ সন্মান দিছিল। সেইবাবে ইংৰাজী ভাষাৰ সাহিত্যসমূহক জ্ঞান অনুবাদৰ মাধ্যমেৰে হিন্দী নাইবা অন্যান্য ভাৰতীয় প্ৰান্তীয় ভাষাত প্ৰদান কৰাৰ বাবে প্ৰয়াস কৰিছিল। আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় বাণিজ্যৰ ক্ষেত্ৰত তেওঁ ইংৰাজী ভাষাক বিশ্বভাষা ৰূপে স্বীকাৰ কৰিলেও দেশী ভাষাত অৰ্থাৎ হিন্দী, সংস্কৃত, ফৰাছী, আৰবী ইত্যাদি ভাষাক উচ্চ শিক্ষাৰ পৰ্যায়লৈকে গুৰুত্বপূৰ্ণ স্থান প্ৰদান কৰাতহে তেওঁ গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল।

গান্ধীজীয়ে ৰাষ্ট্ৰীয় একতা আৰু অখণ্ডতা ৰক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত হিন্দী ভাষাত গুৰুত্বপূৰ্ণ স্থান প্ৰদান কৰিছিল। সেয়েহে তেওঁৰ শিক্ষাৰ মাধ্যম ইংৰাজী আৰু তেওঁৰ মাতৃভাষা গুজৰাটী হোৱাৰ পাছতো তেওঁ হিন্দী ভাষাক গুৰুত্ব প্ৰদান কৰি হিন্দী ভাষাত লিখা-মেলা আৰু হিন্দী ভাষাকে ব্যৱহাৰ কৰিছিল। তেওঁ বিলাতৰ পৰা আহিয়েই ৩৩ বছৰতকৈ অধিক কাল ইংৰাজী 'ইয়ং ইণ্ডিয়া' আৰু গুজৰাটী 'নৱজীৱন' নামৰ দুখন সাপ্তাহিক কাকতত লিখা-মেলা কৰিছিল। ১৯১৯ চনৰ ৭ চেপ্তেম্বৰত ইণ্ডোলাল যাজ্ঞিকৰ দ্বাৰা সম্পাদিত কাকত গুজৰাটী ভাষাত প্ৰকাশিত 'নৱজীৱন'খন সম্পূৰ্ণ ২ বছৰৰ পিছত ১৯২১ চনৰ ১৯ আগষ্টপৰা 'হিন্দী নৱজীৱন' নামেৰে মাহেকীয়া আলোচনী ৰূপে গান্ধীজীয়ে সম্পাদিত আৰু প্ৰকাশ কৰিছিল। এই আলোচনীৰ যোগেদি তেওঁ হিন্দী ভাষাৰ প্ৰচাৰ আৰু প্ৰসাৰৰ বাবে যথেষ্ট কাম কৰে। লগতে আলোচনীখনৰ যোগেদি স্বদেশী আন্দোলনক সফলভাৱে অধিক গতিশীল কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। তেওঁ হিন্দী ভাষাৰ জড়িয়তে নিজৰ অনুভৱ তথা সমাজ-সংস্কাৰ আৰু দেশৰ জনগণৰ বাবে প্ৰেৰণাদায়ক আৱশ্যকীয় মনোভাৱ; যেনে— পৰ্দাপ্ৰথা, বাল্যবিবাহ, মাদকদ্ৰব্য নিষেধ, সমাজৰ উচ্চ-নীচ ভেদাভেদ ইত্যাদি বিষয়বোৰ সহজ সৰলভাৱে সহৃদয়তাৰে প্ৰকাশ কৰিছিল। তেওঁ 'হিন্দী নৱজীৱন'ৰ জৰিয়তে নিজৰ মনোভাৱবোৰক জনগণৰ ওচৰত প্ৰকাশ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত, হিন্দীভাষা আৰু হিন্দুস্থানী ভাষাৰ প্ৰতি থকা প্ৰেমক প্ৰকাশ কৰাত যথেষ্ট সফল হৈছিল। সেইবাবে পৰৱৰ্ত্তী সময়ত হিন্দী তথা হিন্দুস্থানী ভাষা এটাক ৰাষ্ট্ৰভাষা হিচাপে মৰ্য্যদা প্ৰদান কৰাৰ ক্ষেত্ৰত সফল হৈছিল।

ৰাষ্ট্ৰভাষা হিচাপে হিন্দী আৰু মহাত্মা গান্ধী ঃ

১৯৫০ চনৰ ১৪ চেপ্তেম্বৰৰ পৰা হিন্দী ভাষাক ৰাষ্ট্ৰভাষা হিচাপে স্বীকৃতি প্ৰদান কৰা হৈছিল। হিন্দী ভাষাক ৰাষ্ট্ৰভাষা হিচাপে মৰ্য্যদা প্ৰদান কৰাৰ ক্ষেত্ৰত মহাত্মা গান্ধীৰ ভূমিকা যথেষ্ট গুৰুত্বপূৰ্ণ। বহুতো কষ্ট আৰু ত্যাগ স্বীকাৰৰ ফলস্বৰূপে এনে কাৰ্য সম্ভৱ হৈছিল। ইংৰাজ আৰু বিদেশী বস্ত্ৰ আৰু ইংৰাজী ভাষাক বহিস্কাৰ কৰাৰ বাবে গান্ধীজীৰ নেতৃত্বত যি অহিংসা আন্দোলনৰ গঢ় লৈছিল তাৰ ফলস্বৰূপে দেশ-জাতিৰ লগতে ৰাষ্ট্ৰভাষা স্বৰূপে হিন্দী ভাষাই মৰ্য্যদা লাভ কৰিছিল।

গান্ধীজীৰ মতে ভাষা এটাৰ ৰাষ্ট্ৰভাষাৰ মৰ্য্যদাপ্ৰাপ্ত হ'বলৈ হ'লে নিম্নলিখিত গুণকেইটাৰ আৱশ্যক। যেনে—

ক) ভাষাটো ৰাজ-কৰ্মচাৰীসকলৰ বাবে সৰল হ'ব লাগিব।

খ) ভাষাটোৰ পৰা ভাৰতবৰ্ষৰ পৰস্পৰ ধাৰ্মিক, আৰ্থিক, ৰাজনৈতিক ইত্যাদিৰ ব্যৱহাৰ পৰিপূৰ্ণতাপ্ৰাপ্তি হ'ব লাগিব।

গ) ভাষাটো দেশখনৰ অধিকাংশ লোকে কব পৰা হ'ব লাগিব।

ঘ) ভাষাটো ৰাষ্ট্ৰখনৰ বাবে তথা ৰাষ্ট্ৰৰ লোকসকলৰ বাবে সৰল হ'ব লাগিব।

ঙ) ভাষাটো অল্পস্থায়ী বা ক্ষণস্থায়ী হোৱাৰ পৰিৱৰ্তে স্থায়ী হ'ব লাগিব। (গৌতম, মীনা, ১৫)

এই আটাইখিনি গুণ হিন্দী ভাষাৰ ক্ষেত্ৰত পোৱা যায়। গান্ধীজীয়ে ৰাষ্ট্ৰভাষাৰ বাবে হিন্দী বা উৰ্দু শব্দৰ উপেক্ষা কৰি হিন্দুস্থানী ভাষা শব্দটোৰ প্ৰয়োগ কৰাটোহে উচিত বুলি ভাবিছিল। সেয়েহে হিন্দী-উৰ্দুৰ মিশ্ৰিত ৰূপ হিন্দুস্থানী ভাষাকহে ৰাষ্ট্ৰভাষা হ'ব লাগে বুলি ভাবিছিল। কিন্তু ভাষাৰ সৰলতা আৰু ব্যৱহাৰৰ গুণৰ ওপৰত ভিত্তি কৰিয়েই হিন্দী ভাষাক ৰাষ্ট্ৰভাষা হিচাপে ব্যৱহাৰ হ'ব লাগে বুলি কৈছিল; তথাপিও তেওঁ হিন্দী ভাষা বুলি হিন্দু-মুছলমান সকলোৱে ব্যৱহাৰ কৰা এটা সমিল-

মিলৰ ভাষা বুলিহে ক'ব বিচাৰিছিল।

গান্ধীজীয়ে জীৱনত দুটা কাম নিজৰ জীৱনৰ সংগী কৰি লৈছিল। সেইকেইটা হৈছে— সূতা কটা আৰু হিন্দী শিকা। সেইবাবেই হয়তো তেওঁ কৈছিল — "অগৰ মুঝে অকেলা ছোড় দিয়া জায় তৌ মুঝে অপ্‌নি শক্তিভৰ্ সুত কাত্‌নে অৰ দত্তচিত্ত হৌকৰ হিন্দুস্থানী কী পুস্তকৌ কৌ পঢ়তে হোৱে হী পায়েংগে।" (গৌতম, মীনা. ১৭) অৰ্থাৎ যদি মোক অকলে ক'ৰবাত এৰি দিয়া হয়, তেতিয়া শক্তি থকা মানে সূতা কটা আৰু হিন্দী ভাষাৰ বহুতো কিতাপ পঢ়াতে তেওঁক ব্যস্ত পাব বুলি কৈছে।

গান্ধীজীৰ মতে হিন্দী ভাষাই ৰাষ্ট্ৰভাষা হোৱাৰ সকলো গুণৰ অধিকাৰী। স্বৰাজ্য প্ৰাপ্তিৰ গতিক তিব্ৰতা আনিবলৈ হিন্দু-মুছলমানৰ মাজত একতাৰ বান্ধোনেৰে বান্ধ খাবলৈ ৰাষ্ট্ৰভাষা ৰূপে হিন্দী ভাষাৰ প্ৰচাৰ যথেষ্ট আৰশ্যক। গৌতম, মীনা. ১৮) সেইবাবে তেওঁ হিন্দী ভাষাক ৰাষ্ট্ৰভাষাৰ মৰ্য্যদা প্ৰদানৰ গৌৰৱ প্ৰাপ্তিৰ বাবে তেওঁ বাৰে বাৰে সকলো সভা-মেলত হিন্দী ভাষা ক'ব আৰু লিখিবৰ বাবে জনসাধাৰণক আগ্ৰহিত কৰি হিন্দী ভাষাৰ বিকাশৰ বাবে প্ৰস্তাৱ গ্ৰহণ কৰিছিল। দক্ষিণ ভাৰতৰ মাদ্ৰাছ প্ৰেছিডেন্সিত হিন্দী ভাষাৰ প্ৰচাৰৰ বাবে তেওঁৰ আহ্বান মৰ্মে বোম্বাই, কলিকতা ইত্যাদিৰ সমৃদ্ধ মাৰোৱাৰীসকলৰ পৰা যথেষ্ট পৰিমাণৰ ধন সংগ্ৰহ কৰিছিল।

তেওঁ হিন্দী ভাষা প্ৰচাৰৰ বাবে গুজৰাটী সাপ্তাহিক কাকত 'নৱজীৱন'খন ১৯২১ চনৰপৰা হিন্দী ভাষাত প্ৰচাৰ কৰি নিজে সম্পাদনাৰ দায়িত্ব গ্ৰহণ কৰিছিল। ইয়াৰ জৰিয়তে ভাৰতবাসীক হিন্দী ভাষা ক'ব, লিখিব আৰু পঢ়িবৰ বাবে প্ৰেৰণা প্ৰদান কৰিছিল।

গান্ধীজীয়ে হিন্দী ভাষাক ৰাষ্ট্ৰভাষাৰ মৰ্য্যদা প্ৰদান কৰাৰ ক্ষেত্ৰত 'ভাসোতেজক সংঘ'ৰ দৰে মহত্বপূৰ্ণ সংঘৰ স্থাপন কৰিছিল। যাৰ উদ্দেশ্য আছিল প্ৰত্যেক পাঠশালা (বিদ্যালয়)ত হিন্দী ভাষাৰ প্ৰয়োগ বঢ়োৱা, পাৰিভাষিক শব্দৰ গৱেষণা, ৰাজনীতি আদিত বিদেশী ভাষাৰ প্ৰয়োগ নহ'বৰ বাবে গুৰুত্ব দিয়া; য'ত হিন্দী শিক্ষকৰ আৰশ্যক হয় তাত যথেষ্ট পৰিমাণৰ সহায় প্ৰদান কৰা, কোনো ধৰণৰ ভৰ্ত্তি মাছুল নোহোৱাকৈ হিন্দী শিক্ষাৰ স্বয়ং সেৱক প্ৰস্তুত কৰা। তেওঁৰ প্ৰচেষ্টাতে মাদ্ৰাছত 'দক্ষিণ ভাৰত হিন্দী প্ৰচাৰ সভা', অসমত 'অসম ৰাষ্ট্ৰভাষা প্ৰচাৰ সমিতি' ইত্যাদিৰ দৰে হিন্দী ভাষাৰ প্ৰচাৰৰ মহৎ সংস্থাসমূহৰ স্থাপন হৈছিল।

গান্ধীজীৰ মতে অসমীয়া, বাংলাৰ বহুতো শব্দৰ হিন্দী ভাষাৰ সৈতে মিল থকাৰ বাবে বাংলা হিন্দীৰ সৰু সৰু শব্দকোষ আৰু কিতাপ তৈয়াৰ কৰাটো গুৰুত্বপূৰ্ণ বুলি অনুভৱ কৰিছিল। —এনেদৰে তেওঁ আজীৱন হিন্দী ভাষাক ৰাষ্ট্ৰভাষাৰ মৰ্য্যদা দিয়াৰ বাবে প্ৰয়াস কৰাৰ ফলস্বৰূপে ১৯৪৭ চনৰ ভাৰত স্বাধীন হোৱাৰ লগে লগে ভাৰতীয় সংবিধানে হিন্দী ভাষাক 'ৰাজভাষা' আৰু দেৱনাগৰী লিপিক 'ৰাজলিপি' ৰূপে স্বীকৃতি প্ৰদান কৰিছিল।

উপসংহাৰঃ

উপসংহাৰত ক'ব পাৰি যে— হিন্দী ভাষাক ৰাষ্ট্ৰভাষা হিচাপে স্বীকৃতি প্ৰদান কৰাৰ ক্ষেত্ৰত জাতিৰ পিতা মহাত্মা গান্ধীৰ অৱদান অত্যন্ত গুৰুত্বপূৰ্ণ। তেওঁৰ প্ৰচেষ্টাতে ভাৰতবৰ্ষত ৰাষ্ট্ৰভাষাৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ কথা অধিকভাৱে গুৰুত্ব লাভ কৰে। ৰাষ্ট্ৰীয় একতা আৰু অখণ্ডতা ৰক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত যে এক ভাষাইহে যথেষ্ট পৰিমাণে সহায় কৰে সেই কথা তেওঁৰ চিন্তা-চৰ্চাৰ জড়িয়তে ভাৰতীয় জনসাধাৰণে অনুভৱ কৰিছিল। হিন্দী ভাষাক ভাৰতৰ যোগাযোগৰ মাধ্যম হিচাপে লৈ দেশৰ জনসাধাৰণক একতাৰ দোলেৰে বান্ধি অহিংসা নীতিৰে আন্দোলন কৰি ভাৰতৰ স্বাধীনতাৰ সপোন দেখিছিল। সেয়ে তেওঁ সকলো সময়তে হিন্দী ভাষাৰ প্ৰচাৰ কৰাৰ বাবে চেষ্টা কৰিছিল। গান্ধীজীৰ হিন্দী ভাষাৰ প্ৰচাৰৰ বহুতো ত্যাগ আৰু কষ্টৰ বিনিময়ত ভাৰতবাসীয়ে হিন্দী ভাষাক ৰাষ্ট্ৰভাষা ৰূপে লাভ কৰিলে। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থ ঃ

অসমীয়া গ্ৰন্থ

দাস, অমিয় কুমাৰ। অনু.। মোহন দাস কৰমচান্দ গান্ধী। ***মোৰ সত্য-অন্বেষণৰ কাহিনী***। তৃতীয় প্ৰকাশ, ২০১১।। নৱজীৱন পাব্লিচিং হাউচ, আহমেদাবাদ-৩৮০০১৪। প্ৰকাশিত।

হিন্দী গ্ৰন্থ

কালেকৰ, কাকাসাহেৱ । সম্পা.। ***বাপু কী কলম সে*** । প্ৰথম আবৃত্তি। নবজীৱন প্ৰকাশন, আশ্ৰম মাৰ্গ আহমদাবাদ -৩৮০০১৪, ১৯৫৭। । প্ৰকাশিত।

গৌতম, মীনা। সম্পা.। ***স্বতন্ত্ৰতা সংগ্ৰাম ঔৰ হিন্দী*** । ৰাষ্ট্ৰীয় অভিলেখাগাৰ জনপথ, নঈ দিল্লী-১০১০০১। প্ৰকাশিত।

অসমীয়া গীতি কবিতাত মহাত্মা গান্ধী

বিকাশ দাস

সাৰংশ ঃ

গান্ধীৰ ভাৱাদৰ্শ কেৱল ভাৰতবৰ্ষতে ব্যাপ্ত নহয়। আঞ্চলিক পৰিসীমা আৰু কালাতীত ব্যৱধান অতিক্ৰম কৰি ই সমগ্ৰ বিশ্বতে চিৰযুগমীয়া হৈ ৰৈছে। এই যুগজয়ী ব্যক্তিত্বৰ মহানায়ক গৰাকীৰ কৰ্মৰাজী আৰু চিন্তাই নিত্য নতুন বাগ্‌ধাৰা (Discourse) ৰ জন্ম দি আহিছে, অধ্যয়ন আৰু গৱেষণাৰ ক্ষেত্ৰখন প্ৰসাৰিত কৰিছে। আমাৰ এই আলোচনাত প্ৰধানকৈ গান্ধীৰ প্ৰভাৱ অসমীয়া গীতি কবিতাত কেনেদৰে পৰিছে তাৰ অধ্যয়ন কৰা হৈছে। ইয়াৰ লগতে প্ৰসংগ আৰু মূল বিষয়ৰ সৈতে সংগতি ৰাখি গান্ধীৰ ভাৱাদৰ্শ, অসমত গান্ধীৰ আগমনৰ বিষয়েও চমুকৈ আলোকপাত কৰা হৈছে।

আৰম্ভণি ঃ

সাম্ৰাজ্যবাদী শোষণ, শাসনৰ বিৰুদ্ধে সত্যাগ্ৰহ, আত্মনিৰ্ভৰশীলতা, অহিংসা নীতি, স্বৰাজ, ৰামৰাজ্যৰ পোষকতা কৰি গণ সংগ্ৰামৰ আধাৰ গঢ়ি তোলা মহাত্মা গান্ধীৰ জীৱনাদৰ্শ তথা দৃষ্টিভংগীৰ প্ৰভাৱ ভাৰতীয় সমাজ জীৱনৰ সৰ্বত্ৰতে বিৰাজমান। ইতিমধ্যে ভাৰতবৰ্ষই স্বাধীনতা লাভৰ ৭৫ বছৰ সম্পূৰ্ণ কৰিছে। এই ৭৫ বছৰীয়া দীৰ্ঘ পৰিক্ৰমাত গান্ধীকেন্দ্ৰিক পাঠ, প্ৰতিপাঠ, ইতিহাসৰ নতুন ব্যাখ্যা, অপব্যাখ্যা আদিয়ে পুনৰ গান্ধীৰ কালাতীত জনপ্ৰিয়তাৰে ইংগিত বহন কৰিছে। সাম্প্ৰতিক সময়ৰ কথাছবি, সাহিত্য, সংগীত, চিত্ৰকলাত যিদৰে গান্ধী চৰ্চাৰ নতুন নতুন দিশ উন্মোচন হৈছে ঠিক তেনেদৰে গান্ধীৰ সমসাময়িক সমাজখনতো তেওঁক লৈ অলেখ লোক গীত, পদ, কবিতাৰ সৃষ্টি হৈছিল।

ঔপনিবেশিক ভাৰতবৰ্ষত গান্ধীবাদী ভাৱাদৰ্শ ঃ

সাম্ৰাজ্যবাদী ধ্যান ধাৰণাত যুগ্ম বৈপৰীত্যকেন্দ্ৰিক চিন্তা চৰ্চাৰ বিশেষ গুৰুত্ব আছে। সাধাৰণতে সাম্ৰাজ্যবাদী শোষক সকলে সদায় নিজক আত্ম (self) ৰ স্থানত ৰাখি ঔপনিবেশিক দুৰ্বল জাতি, ৰাষ্ট্ৰ, দেশ আদিক পৰ (other) বা নিম্নবৰ্গ (subordinate) হিচাপে চিহ্নিত কৰা দেখা যায়। ‘উত্তৰ ঔপনিবেশিক তাত্ত্বিকসকলৰ মতে কেইবা শতিকা জুৰি পাশ্চাত্যৰ ঔপনিবেশিক শক্তিয়ে আদিমতা (primitivism) আৰু নৰমাংশভোজী (canibalism) আদি অভিধাৰ

গৱেষক ছাত্ৰ
আধুনিক ভাৰতীয় ভাষা আৰু
সাহিত্য অধ্যয়ন বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়,
গুৱাহাটী, অসম-১৪
ম'বাইল ঃ ৮১৩৫০৮৬৭৩৭
ই-মেইল - bkdas1126gmail.com

জৰিয়তে এছিয়া আৰু আফ্ৰিকাৰ অধিকৃত অঞ্চলৰ বাসিন্দাসকলক অপৰ ৰূপে প্ৰতিপন্ন কৰি তেওঁলোকৰ তুলনাত নিকৃষ্টৰূপে দেখুৱাবলৈ যত্ন কৰিছে।'[১] (২০১০ঃ০৮) বিখ্যাত উত্তৰ ঔপনিবেশিক চিন্তাবিদ এডৱাৰ্ড ছাইডে শোষকৰূপী সাম্ৰাজ্যবাদীৰ এই অপৰৰ (other) ধাৰণাটোক আধিপত্যবাদী কৌশল হিচাপে অভিহিত কৰিছে। ছাইডৰ মতে সাম্ৰাজ্যবাদীসকলে নিজৰ শাসন, শোষণৰ সুবিধাৰ বাবে গোটেই বিশ্বকে সভ্য/অসভ্য, উৎকৃষ্ট/নিকৃষ্ঠ, উন্নত/অনুন্নত আদি বৈষম্যকেন্দ্ৰিক বৈপৰীত্যৰে আত্মা/পৰ ৰূপে বিভক্ত কৰিছে।

এনে বৈষম্যকেন্দ্ৰিক চিন্তা আৰু শোষণৰ পৰা দক্ষিণ এছিয়াৰ অন্তৰ্গত ভাৰতবৰ্ষয়ো সাৰি যোৱা নাছিল। পৰ্তুগীজ নাবিক ভাস্কো দ্য গামাৰ ভাৰতবৰ্ষৰ আগমনৰ পৰৱৰ্তী সময়ৰ পৰাই ইউৰোপৰ ভিন্ন প্ৰান্তৰ পৰা ভিন্ন লোক ব্যৱসায়ৰ সুবিধাৰ্থে ভাৰতবৰ্ষলৈ পদাৰ্পণ কৰিছিল। ঠিক তেনেদৰে বেহা বেপাৰৰ সুযোগ লৈ ইষ্ট ইণ্ডিয়া কোম্পানীয়েও ভাৰতীয় ৰাজনীতিত খোপনি পুতিছিল আৰু বিভিন্ন নীতি-নিয়ম, আইন প্ৰণয়ন কৰি ভাতবৰ্ষত শোষণৰ এক নতুন ইতিহাস ৰচনা কৰিছিল। ব্ৰিটিছৰ অৱদমন আৰু শোষণৰ বিৰুদ্ধে ভাৰতীয় সমাজত যি গৰাকী ব্যতিক্ৰম চিন্তাৰ মহানায়কৰ উদ্ভৱ হৈছিল তেওঁৰেই হৈছে ভাৰতীয় স্বাধীনতা সংগ্ৰামত সবাতোকৈ গুৰুত্বপূৰ্ণ অৱদান আগবঢ়োৱা মোহন দাস কৰমচাঁদ গান্ধী। ১৮৬৯ চনৰ ২ অক্টোবৰত গুজৰাটৰ পোৰবন্দৰত গান্ধীয়ে জন্ম গ্ৰহণ কৰে। শৈশৱৰ পৰাই আত্মোৎসৰ্গ মনোভাব, সত্য, অহিংসাৰ ধাৰণাই গান্ধীক আকৃষ্ট কৰিছিল। শ্ৰাৱনৰ পিতৃভক্তি নামৰ গ্ৰন্থখনে শৈশৱতে গান্ধীৰ মনত সেৱা শুশ্ৰূষা আদি মনোভাৱৰ জন্ম দিছিল। পৰৱৰ্তী সময়ত জীৱন সম্পৰ্কীয় বিস্তৃত অভিজ্ঞতা, বিভিন্ন গ্ৰন্থ যেনেঃ গীতা, দ্য নিউ টেষ্টামেন্ট, ৰাস্কিনৰ আনটু দিছ লাষ্ট (Unto this last) থ'ৰোৰ এছে অন চিভিল দিছঅ' বিডিয়েন্স (Essay on civil Disobedience) আৰু টয়ষ্টয়ৰ দ্য কিংডম অব্ গ'ড ইজ উইদিন ইউ (The kingdom of god is within you) আদিয়ে গান্ধীৰ দৃষ্টিভংগীক প্ৰসাৰিত কৰাৰ লগতে এক সুকীয়া মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছিল। গান্ধীৰ এনে দৃষ্টিভংগীয়ে তেওঁৰ জীৱিত কালতে এটা বাদ বা ইজিমলৈ ৰূপান্তৰিত হৈছিল। কিন্তু গান্ধীবাদী এই বাদ বা ইজিমৰ ধাৰণাটো উমান সৰল নহয়। কাৰণ 'গান্ধীবাদক সূত্ৰায়িত কৰাটো টান। কিয়নো গান্ধীদৰ্শন বুলি কলেও গান্ধী চিন্তাদৰ্শনক কোনো কঠিন দাৰ্শনিক অভিধাৰ মাজত বান্ধি পেলাব নোৱাৰি। সত্যৰ অন্বেষণ গান্ধী আদৰ্শৰ প্ৰাণশক্তি। সত্যান্বেষণত গান্ধীয়ে নিজে কৰা কঠোৰ আত্ম অনুসন্ধান আৰু আত্মপৰীক্ষাৰ ফল গান্ধী ভাৱনা, গান্ধীজীয়ে নিজে ব্যক্তিগত জীৱনত অনুশীলন কৰা এক নিৰ্মোহ জীৱনশৈলী। এইবাবে গান্ধী চিন্তাদৰ্শ কৰ্মৰে নিৰ্মিত, ইয়াত আদৰ্শৰ সমল কম। আদৰ্শৰ ধাৰণাবোৰক গান্ধীয়ে কামৰ জৰিয়তে প্ৰদৰ্শন কৰিছিল আৰু এনে প্ৰক্ৰিয়াৰদ্বাৰা বিশ্বক, সত্য, অহিংসা আৰু সত্যাগ্ৰহৰ প্ৰতি আকৰ্ষণ কৰিছিল।'[২] [২০১৯: ৫৪]

একোটা বাদ বা ইজিমত যিবোৰ মৌলিক চিন্তা আৰু ধ্যান ধাৰণাৰ প্ৰয়োজন সেইবোৰ কিছু পৰিমানে গান্ধীবাদত অনুপস্থিত। গান্ধীবাদী দৰ্শনত ব্যাপ্ত হৈ থকা অহিংসা, সত্যাগ্ৰহ, ব্ৰহ্মচৰ্য আৰু সৰ্বোদয়ৰ ধাৰণাবোৰ গান্ধীৰ মৌলিক সৃষ্ট নহয়। সেয়ে গান্ধীয়ে নিজেই কৈছে, 'There is no such thing as 'Gandhism' and I do not want to leave any sect after me. I do not claim to have originated any new principle or doctrine. I have simply tried in my own way to apply the eternal truths to our daily life and problems...the opinions I have formed and the conclusions I have arrived at are not final. I

may change them tomorrow. I have nothing new to teach the world. Truth and non violence are as old as the hills.'[৩] বিখ্যাত ফৰাচী দাৰ্শনিক মিশ্বেল ফুকোৱে কৈছিল - 'It is not enough to speak the truth one must be in truth'[৪] অৰ্থাৎ সত্য কোৱাটোৱে যথেষ্ট নহয় সত্যৰ ভিতৰত বাস কৰাঠোও জৰুৰী। ফুকোৰ এনে উক্তিৰ সৈতে গান্ধীয়ে বিশ্বাস কৰা সত্যৰ ধাৰণাটোৰ সৈতে সামাঞ্জস্য বিচাৰি পোৱা যায়। সত্যৰ ধাৰণাটো অতি জটিল। সময় সাপেক্ষে আপেক্ষিক আৰু কেতিয়াবা ব্যক্তি অনুসৰি ভিন্নও হ'ব পাৰে। কিন্তু প্ৰতিখন সমাজতে কিছুমান সাৰ্বিক সত্য কালাতীতভাবে স্থিৰ হৈ থাকে। এনে সত্যৰ প্ৰতিয়ে গান্ধীৰ আত্মা ধাৱমান হৈছিল। যি পৰৱৰ্তী সময়ত চিৰদিনৰ বাবে স্থায়ী হৈ ৰৈ যোৱা দেখা গ'ল। গান্ধীৰ মতে অহিংসাক অনুধাৱন, আবিস্কাৰ কৰিব পাৰি একমাত্ৰ সত্য সন্ধানৰ পথেৰে - "মই সত্যৰ যিমান অহিংসাৰ সিমান উপাসক নাছিলোঁ দৰাচলতে মই প্ৰথমে স্থান দিছিলো সত্যক, তাৰ পিছত অহিংসাক। প্ৰকৃতপক্ষে সত্য সন্ধানৰ পথেৰেই মই অহিংসাৰ আৱিস্কাৰ কৰিছিলোঁ। গান্ধীয়ে বিশ্বাস কৰিছিল যে সত্যৰ সৈতে অহিংসা যুক্ত হ'লেহে বিশ্বক পদানত কৰিব পাৰি। সত্যাগ্ৰহৰ সাৰমৰ্মই হৈছে জাতীয় জীৱনত সত্য আৰু নম্ৰতাৰ প্ৰাথমিক প্ৰয়োগ। ... মোৰ ধাৰণা মোৰ মাজত সত্য আৰু অহিংসাৰ নীতিৰ বাদে অন্য কোনো নীতি নাই। আনকি, ধৰ্ম বা দেশোদ্ধাৰৰ বেলিকাও মই সত্য আৰু অহিংসাক বৰ্জন কৰিব নোৱাৰিম।"[৫]

ইয়াৰ পৰাই অনুমান কৰিব পাৰি গান্ধীৰ জীৱন, ৰাজনৈতিক ভাৱাদৰ্শৰ প্ৰধান কেন্দ্ৰ বিন্দু আছিল সত্য। ইয়াৰ সৈতে সংযোগ হৈছিল অহিংসা, সহযোগিতা, সাৰ্বভৌমত্ব, কৰ্তৃত্ববিহীন সমাজৰ দৰ্শন, আত্মনিৰ্ভৰশীলতা, অৰ্থনৈতিক সমতা, আত্মসংযম, স্বচ্চতা আদি।

অসমত মহাত্মা গান্ধী ঃ

other বা পৰৰ ধাৰণাটোৰ সৈতে সংগতি ৰাখি বিখ্যাত সমালোচক, বুদ্ধিজীৱি গায়ত্ৰী চক্ৰৱৰ্তী স্পিভাকে othering বা 'অপৰীকৰণ'ৰ প্ৰসংগটোক বিশ্লেষণ কৰি কৈছিল যে, অপৰীকৰণৰ অৰ্থই হৈছে এনে এক প্ৰক্ৰিয়া যি প্ৰক্ৰিয়াৰে আধিপত্যবাদীয়ে শাসনৰ প্ৰয়োজনত পৰিকল্পিতভাৱে সাংস্কৃতিক, অৰ্থনৈতিক আৰু মানসিকভাৱে দুৰ্বল অপৰৰ সৃষ্টি কৰে। কিন্তু ভাৰতবৰ্ষৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰামী সকলে জ্ঞাত,অজ্ঞাতভাৱে শাসকৰূপী শোষকৰ অপৰীকৰণৰ এই ৰাজনীতিৰ উমান পাইছিল আৰু ইয়াৰ বিৰুদ্ধে সৰ্বত্ৰে প্ৰতিবাদী সংগ্ৰাম গঢ়ি তুলিছিল। এই সংগ্ৰামৰ সৈতে অসমেও কেতিয়াবা প্ৰত্যক্ষভাৱে আৰু কেতিয়াবা পৰোক্ষভাৱে সংযুক্ত হৈ পৰিছিল। গান্ধীৰ অহিংসা নীতিৰে প্ৰভাম্বিত হৈ অসমৰ ডেকা, বুঢ়া, ল'ৰা-ছোৱালী প্ৰায় সকলোৱে ব্ৰিটিছ শাসিত চৰকাৰী আইন, নীতি-নিয়মৰ বিৰুদ্ধে গৰজি উঠিছিল। ১৯৩০ চনৰ ২৬ জানুৱাৰীত নগাঁৱত পতাকা উত্তোলন কাৰ্য্যসূচীত যোগদান কৰিবলৈ যোৱা গুনেশ্বৰী দেৱী, দৰবাৰী মেছ, মোহিনী গোহাঁই, কিৰণবালা বৰা আদি মহিলাই পতাকা উত্তোলন শোভাযাত্ৰা কাৰ্যসূচীত অংশগ্ৰহণ কৰিবলৈ পুলিচৰ লাঠীচালনাৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হৈছিল। উল্লেখযোগ্য যে "গান্ধীজীৰ আদৰ্শই অসমীয়া নাৰীসমাজৰ মাজত এক অভূতপূৰ্ব জাগৰণৰ সৃষ্টি কৰিছিল। গুৱাহাটীৰ অলমপ্ৰভা দাস, দৰঙৰ চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানী, নগাঁৱৰ গুণেশ্বৰী দেৱী, দৰবাৰী মেছ, কিৰণবালা বৰা, মুক্তাবালা বৈষ্ণৱী আদি মহিলাই কংগ্ৰেছৰ বাবে চান্দা তুলিছিল আৰু স্বেচ্ছা সেৱিকা ভৰ্তিকৰণৰ বাবে প্ৰদেশখনৰ ইমূৰৰ পৰা সিমূৰলৈ ভ্ৰমণ কৰিছিল। পিকেটিং অনুষ্ঠিত কৰা আৰু স্বেচ্ছাসেৱিকা ভৰ্তিকৰণৰ কাৰণে ঠায়ে ঠায়ে নাৰীবাহিনী গঠিত হৈছিল"।[৬]

গান্ধীয়ে অসমত মুঠ চাৰিবাৰ আহিছিল। ১৯২১ চনত গান্ধীয়ে যেতিয়া প্ৰথম অসম আহিছিল তেতিয়া তেওঁ তৰুণৰাম ফুকনৰ ঘৰত আছিল। এই সময়ছোৱাত গান্ধীক চাবলৈ অজস্ৰ মানুহৰ সমাগম হৈছিল। ফুকনে বাস কৰা ঠাইৰ সমুখতে প্ৰায় পঞ্চাশ হাজাৰ মানুহ গোট খাব পৰা এখন ঘাঁহনি আছিল। এই ঠাইৰ পৰাই স্বাধীনতাৰ বাণী বিলাবলৈ অহা গান্ধীয়ে কৈছিল - 'আমাৰ দেশৰ ইমান দূৰ ঠাইলৈ মোক নিমন্ত্ৰণ কৰি মাতি অনাৰ আপোনালোকৰ কি বিশেষ উদ্দেশ্য আছে, মোৰ কথা শুনা আৰু নীৰৱে ঘৰলৈ উভতি যোৱাতেই আপোনালোক সন্তুষ্ট হ'বনে? পাঞ্জাব আৰু খিলাফতৰ অন্যায়ৰ বাবে মই অন্তৰত যি বেদনা পাইছোঁ, সেই বেদনা গুচাবৰ বাবে আৰু ভাৰতৰ কাৰণে স্বৰাজ নাইবা কেৱল মোৰ বক্তৃতা শুনিবলৈকে

ইয়ালৈ আহিছে, তেনেহলে মই হাতযোৰ কৰি কওঁ যেন মোক আমনি নকৰে। এতিয়া মোক উভতি যাবলৈ দিয়ক'।[৭] [২০২১:২৮] তৰুণৰাম ফুকনে গান্ধীৰ এই বক্তব্য অসমীয়া ৰাইজক যেতিয়া অনুবাদ কৰি বুজাই দিছিল তেতিয়া প্ৰতিজন অসমীয়াৰ মনত স্বাধীনতাৰ স্বপ্নই তোলপাৰ লগাইছিল। সমস্বৰে সকলোৰে কৈছিল - 'নহয়, নহয় সেইটো হ'ব নোৱাৰে। আমি আপোনাক আপুনি কোৱাৰ দৰে উভতি যাবলৈ দিব নোৱাৰোঁ। গুৱাহাটীৰ পিছত গান্ধীয়ে তেজপুৰ, নগাঁও, যোৰহাট, ডিব্ৰুগড় আদিলৈ ৰাওনা হৈছিল ।'[৮] [২০২১:২৮]

গান্ধী দ্বিতীয়বাৰ অসম আহিছিল ১৯২৬ চনৰ ডিচেম্বৰ মাহত গুৱাহাটীত অনুষ্ঠিত হোৱা কংগ্ৰেছ অধিৱেশনত। গান্ধীক যেতিয়া এই অধিবেশনলৈ নিমন্ত্ৰণ কৰা হৈছিল তেতিয়া তেওঁৰ মনত কিছু সংশয় ভাৱ আহিছিল। কাৰণ গান্ধীয়ে ভাবিছিল অৰ্থনৈতিকভাবে দুৰ্বল আৰু প্ৰয়োজনৰ জোখেৰে সংগঠিত নোহোৱা অসম কংগ্ৰেছৰ বোজা লবলৈ অসমৰ্থ। কিন্তু গান্ধী দ্বিতীয়বাৰ অসম উপস্থিত হৈ আচৰিত হৈছিল। কাৰণ 'গুৱহাটীয়ে আগৰ অধিবেশনবিলাকক চেৰ পেলাই অভাৱনীয় ভাৱে কম সময়ৰ ভিতৰতে বিশাল ব্ৰহ্মপুত্ৰ পাৰত প্ৰাকৃতিক সৌন্দৰ্য্যৰে পৰিপূৰ্ণ পৰিবেশৰ মাজত খাদী কাপোৰৰ এখন নগৰ গঢ়ি তুলিলে। বিৰাট সভা মণ্ডপটো অসমৰ নিভাজ খাদীৰে সজা হৈছিল। অভ্যৰ্থনা সমিতিয়ে বেলেগ বেলেগ প্ৰতিনিধিৰ ৰুচিৰ খাদ্য আৰু মানুহ বাহিৰৰ পৰা আনিবলগীয়া হৈছিল'।[৯] [২০২১:৮২]

১৯৩৪ চনত গান্ধী মুঠ দহ দিনৰ বাবে অসমলৈ আহিছিল। এই তৃতীয় আগমনৰ মূল উদ্দেশ্য আছিল অসমৰ হৰিজনৰ উন্নতিৰ সাধন আৰু ১৯৪৬ চনত ৭৭ বছৰ বয়সীয়া গান্ধীয়ে শেষবাৰৰ বাবে অসমলৈ আহিছিল।

অসম গীতি কবিতাত গান্ধী ঃ

গান্ধীৰ অসম আগমনক কেন্দ্ৰ কৰি অলেখ লোক-গীত পদৰ সৃষ্টি হৈছিল। যিয়ে অসমৰ লোক সাহিত্যৰ ভঁৰাল চহকী কৰাত সহায় কৰিছিল। গান্ধীক লৈ লোক মানসত কল্পনাৰ অভাৱ নাই। মুখ বাগৰি গান্ধী কেতিয়াবা সাধাৰণ তেজ মঙহৰ মানুহৰ পৰা ক্ৰমাৎ অলৌকিক সত্ত্বাৰ অধিকাৰী, অতিমানৱলৈ ৰূপান্তৰিত হৈছিল। এই অসাধাৰণ ব্যক্তিজনক আদৰিবলৈ ঘৰে ঘৰে, পদুলিয়ে পদুলিয়ে বিশেষ যো-জা চলিছিল -

"ৰাটোৰে দুৰৰি মই ফেলাঁও উভালি
গান্ধী আহিব বুলি।
গান্ধী আহিছে পদূলিত বহিছে
অনাগৈ চোঁৱৰে বৰি।।
কোঁচতে কটাৰী দিয়া গান্ধী ৰাজা
শিলোতে ধৰিলে উঁই ।
মুখ ভৰি ভৰি বোলা হৰি হৰি
সংসাৰোৰ নুমাই দিওঁ জুই।।"

গান্ধীক লোক সমাজখনে আদৰি লোৱাৰ এটা প্ৰধান কাৰণ হৈছে তেওঁ আছিল এজন জন নেতা। আভিজাত্য, বৈষয়িক সুখৰ পৰা মুক্ত হৈ গান্ধী প্ৰকৃত অৰ্থত সত্য আৰু অহিংসাৰ নীতিৰে ৰাইজৰ, দেশৰ সেৱাৰ বাবে আগবাঢ়িছিল। বিলাতত শিক্ষা লাভ কৰা গান্ধী আৰু সাধাৰণ জনতাৰ মাজত কোনো পাৰ্থক্য নাছিল। জাতি ধৰ্ম, বৰ্ণ, লিংগ এই সকলোৰে উৰ্ধত গান্ধীয়ে সত্য আৰু মানৱতাক স্থান দিছিল। সেয়ে চহৰকেন্দ্ৰিক মুষ্টিমেয়ৰ মাজত গান্ধীবাদী ভাবাদৰ্শ আৱদ্ধ নাথাকি গ্ৰামাঞ্চললৈ বিয়পি পাৰিছিল। গান্ধীৰ নিজৰো গ্ৰাম আৰু গ্ৰাম্য জনসাধৰণৰ প্ৰতি এক তীব্ৰ অনুৰাগ আছিল। ১৯৩৬ চনৰ ২ নবেম্বৰ তাৰিখে গুজৰাটী সাহিত্য সন্মিলনত বক্তৃতা দিওঁতে কৈছিল- 'মই গাঁৱলীয়া ৰাইজৰ প্ৰতিনিধি। আচল গণতন্ত্ৰ গাঁৱত আছে। মই আপোনালোকক গাঁৱলৈ লৈ যাব খোজো। মই বাটকটীয়া। কিন্তু কাঁইটীয়া হ'লেও সেই বাটেদি গ'লে গোলাপ নেপাব বুলি মই ক'ব নোৱাৰো। ... আমাৰ মূক জনসাধাৰণ চহৰত নাথাকে গাঁৱতহে আছে। তেওঁলোকক কি লাগে মই জানো। তেওঁলোকৰ লগত থাকি মই তেওঁলোকক জীৱন-ধাৰণৰ পদ্ধতি শিকাইছো।'[১০] [২০১৭:১৩৭]

এই বাবেই নিৰহংকাৰী সত্যৰ সাধক, মাটিৰ মানুহৰ স্বাধীনতাৰ বাবে আপ্ৰান চেষ্টা চলোৱা গান্ধী লোক

সমাজত অধিক জনপ্ৰিয় হৈ পৰিছিল। এনে এজন মহান মানৱক চাবৰ বাবে সেয়ে অসমীয়া গঞা ৰাইজ উদ্‌গ্ৰীৱ হৈ পৰিছিল। কামৰূপী লোকগীতত ইয়াৰ এনেদৰে উল্লেখ আছে -

"ইয়ো ব'লে সিয়ো ব'লে
গান্ধীক চাবা যাওঁ
লগৰীয়া গান্ধী চাবা যাওঁ
ৰে'ল আলিত থিয়া হ'লি
গান্ধীক দেখা পাওঁ
গান্ধীক নহয় ভৰি চাওঁ।"

সাধাৰণতে বিশ্বাস কৰা হয় যে যুগে যুগে অশুভ শক্তিসমূহক দমন কৰিবলৈ পৃথিৱীত একো একোজন যুগ পুৰুষৰ আৰ্বিভাৱ হয়। অসমীয়া লোক সমাজখনো ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। এই লোক সমাজখনেও বিশ্বাস কৰিছিল যিদৰে ত্ৰেতাত ৰামচন্দ্ৰ, দ্বাপৰত প্ৰভু শ্ৰীকৃষ্ণ জন্ম হৈছিল ঠিক তেনেদৰে ব্ৰিটিছ শাসিত কলিযুগত জন্ম হৈছিল মহাত্মাৰ। দৰঙৰ দিহানামত ইয়াৰ উল্লেখ এনেদৰে আছে-

"দিহা ঃ ঐ আহাৰে ঐ আহাৰে জয় গান্ধী অৱতাৰ।
পৰাধীন ভাৰত কৰিলা উদ্ধাৰ।।
পদ ঃ সত্যত হৰিস্বৰূপ ত্ৰেতাত শ্ৰীৰাম
দ্বাপৰত কৃষ্ণ অৱতাৰ
কলিত মহাত্মা গান্ধী সত্যকামী সত্যবাদী
নৰৰূপী ঈশ্বৰ সবাৰ।"

ভাৰতবৰ্ষৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ নেতৃত্ববহন কৰা গান্ধী কেইবাবাৰো কাৰাবৰণ খাটিব লগীয়া হৈছিল। এই সময়ছোৱাত কস্তুৰবাৰ মানসিক জগতখনত কেনে প্ৰভাৱ পৰিছিল সেই সম্পৰ্কে অসমীয়া লোক সমাজখন বাবে বাৰে উদ্বিগ্ন হৈ পৰিছিল। বিয়া গীতত ইয়াৰ উল্লেখ এনেদৰে পোৱা যায় -

"অ' মন জাই, গান্ধীজীৰ বাতৰি পালোঁনে নাই
গান্ধীজী আছিলে সত্যাগ্ৰহ কৰি
ইংৰাজ পুলিছে লৈ গ'ল ধৰি
দেহি ঐ গান্ধীজী কেনিনো গ'ল
দুখুনী কস্তুৰীৰ কি গতি হ'ল
শুনা হোৰ আইদেউ নাৰীৰে জীৱনত
পুৰুষৰ অবিহনে কোনো নাই সংসাৰত।"

ভাৰতবৰ্ষক ব্ৰিটিছৰ কবলৰ পৰা ৰক্ষা কৰিবলৈ গান্ধীয়ে নিত্য নতুন পৰিকল্পনাৰ সূচনা কৰিছিল। ইয়াৰ ভিতৰত বিদেশী বস্ত্ৰ পৰিহাৰ আৰু স্ব উৎপাদিত খাদী বস্ত্ৰ পৰিধান আছিল অন্যতম। ১৯২১ চনত যেতিয়া গান্ধী অসমলৈ আহিছিল তেতিয়া তেওঁ অসমীয়া জনসাধাৰণক উদ্দেশ্যে ৰাজহুৱা সভাত কৈছিল- "আপোনালোকে যদি স্বৰাজ পাবলৈ সঁচাকৈয়ে বাঞ্ছা কৰে আৰু অসমৰ আন আন ঠাইলৈকো মোক নিবলৈ আপোনালোকৰ আগ্ৰহ অপৰিসীম, তেন্তে আপোনালোকৰ গাত থকা বিদেশী কাপোৰবিলাক মই ইচ্ছা কৰাৰ দৰে এই জুইত যেন পেলাই দিয়ে।" [১১] পৰৱৰ্তী সময়ত দেখা গৈছিল অসমৰ প্ৰায় সকলো স্বাধীনতা সংগ্ৰামীয়ে বিদেশী বস্ত্ৰ বৰ্জন কৰি স্ব উৎপাদিত খাদী পোছাক পৰিধান কৰি স্বাধীনতা সংগ্ৰামত এক নতুন জোৱাৰ আনিবলৈ সক্ষম হৈছিল। বিহু গীতত ইয়াৰ উল্লেখ এনেদৰে পোৱা যায় -

" নাহৰ ফুল ফুলিলে কপৌ ফুল ফুলিলে
ফুলিলে কেতেকী তগৰ
আমাৰ ঘৰে ঘৰে কাটে সৰু সূতা
খদ্দৰে ভৰালে নগৰ।"
"হুঁচৰি বাই অ' দলৌ চৰাই।
গান্ধীৰ নাম লৈ আহ অ' ওলাই।।
হুঁচৰি বাই অ' দলৌ চৰাই।
বিদেশী বস্ত্ৰ দে দলিয়াই।"

গান্ধীবাদী ভাৱাদৰ্শই অসমৰ ৰমন্যাসিক কৰি সকলোকে প্ৰভাৱিত কৰিছিল। চিৰবন্দিত এই নেতাজনৰ মৃত্যুই সমগ্ৰ ভাৰতবৰ্ষত শোকৰ ছাঁ পেলাইছিল। ১৯৪৮ চনৰ ৩১ জানুৱাৰীৰ দিনা গান্ধীৰ মৃত্যুত শোকাভিভূত হৈ কবি যতীন্দ্ৰ নাথ দুৱৰাই এইশোক কবিতাটো ৰচনা কৰিছিল -

"আজি ভাৰতৰ মহা সাধকৰ হঠাতে সিপাৰে
অস্তমান।
ইপাৰ জগতে চায় চকুলোৰ মহামানৱৰ
মহাপ্ৰয়াণ।।"

যতীন্দ্ৰ নাথ দুৱাৰৰ দৰে গান্ধীৰ মৃত্যুৱে ডিম্বেশ্বৰ নেওগৰ কবি মানসকো গভীৰ প্ৰভাৱ পেলাইছিল। নেওগৰ মতে, 'গান্ধীজীয়ে সমগ্ৰ ভাৰত আৰু পৃথিৱীক দাসত্ব-শৃংখলাবদ্ধতাৰ পৰা মুক্তি দি শেষত নিজেও নিজৰ 'মায়া-সজা' শৰীৰ পিঞ্জৰ এৰি গুচি গ'ল। এতিয়া মুক্ত ভাৰত, মুক্ত বিশ্ব, 'মুক্তাত্মা মহাত্মা মহাত্মা গান্ধী'। গতিকে হে

দেশবাসী কিয় মৰোঁ কান্দি।' ১২ [২০১৯ :৪২] নেওগৰ 'মুক্তাত্মা মহাত্মা' কবিতাটোৰ কেইশাৰীমান পংক্তি এনেধৰণৰ-

"দাসত্ব-শৃংখলাবদ্ধ আছিল ভাৰত।
অকল ভাৰত জানো? সমগ্ৰ জগৎ
আপোন পাশৰী শক্তি নাগপাশ স'তে
আছিল আবদ্ধ দেহী। আপুনি সততে।
মহাত্মা মোহন দাস কৰম চান্দ।
জগতৰ, ভাৰতৰ, শেষত নিজৰ
এৰি গ'লাঁ মায়া সজ্জা, শৰীৰ পিঞ্জৰ।
বিমুক্ত ভাৰত, বিশ্ব। কোনে ৰাখে বান্ধি?
মুক্তাত্মা মহাত্মা গান্ধী, কিয় মৰোঁ কান্দি।"

অতুল চন্দ্ৰ হাজৰিকাৰ কবিতাৰ মাজতো গান্ধী ভাৱাদৰ্শক বিচাৰি পোৱা যায়। দৰঙৰ দিহানামৰ দৰে হাজৰিকাৰ কবিতাতো গান্ধীয়ে কেতিয়াবা 'নৰৰূপী ভগৱান', জগৎ ঈশ্বৰ মহাপ্ৰভু শ্ৰীকৃষ্ণলৈ পৰ্যবসিত হোৱা দেখা যায়-

"আমাৰ বাপুজী মানুহ নাছিল
নৰৰূপী ভগৱান।
গোটেই বিশ্বই সমস্বৰে যাৰ
গাইছিল বন্দনা গান।।
দ্বাপৰৰ সেই সুদৰ্শন চক্ৰ
ঘূৰা যঁতৰ কৰি।
ৰাজসিংহাসন ভৰিৰে ঠেলিলে
মিচিকীয়া হাঁহিটি মাৰি।"

অশুভ শক্তিৰ বিৰুদ্ধে জগতত শান্তি, সম্প্ৰীতি আৰু মহান মানৱতাৰ বীজ সিঁচিবলৈ অহা এই নৰৰূপী ঈশ্বৰজনেই এদিন হঠাৎ আততায়ীৰ হাতত প্ৰাণ বিসৰ্জন দিব লগা হৈছিল। সেয়ে হাজৰিকাই কৈছে -

"যমুনাৰ পাৰত লীলা সামৰিলে
এৰিলে মানৱী সজা।"

গান্ধীৰ মৃত্যুৰেই যেন শেষ কথা নহয়। গান্ধীৰ জীৱন আৰু ভাৱাদৰ্শৰ প্ৰভাৱ ভাৰতীয় সমাজ জীৱনত যে অপৰিৱৰ্তনীয়ভাৱে স্থিৰ হৈ আছে তাৰ বৰ্ণনাও হাজৰিকাৰ কবিতাত পোৱা যায় -

"দেৱৰো দেৱতা আমাৰ বাপুজী
ৰজাৰ উপৰিও ৰজা।।"

আনহাতে আকৌ জনমানসত একাত্ম হৈ পৰা গান্ধীক বাস্তৱ দৃষ্টিভংগীৰে পৰ্য্যালোচনা কৰি চন্দ্ৰকুমাৰ আগৰৱালাই 'নঙঠা ফকীৰ' শীৰ্ষক কবিতাটো ৰচনা কৰিছে। এই কবিতাটোত মানৱতা, অহিংসা আৰু স্বাধীনতাৰ হকে যুঁজি সৰ্বস্বান্ত হোৱা গান্ধীৰ হৃদয়ৰ বিশালতা, আত্মবলিদানৰ মহানুভৱতাৰ উমান পোৱা যায়-

"সত্যত অটল আস্থা নিচলা শৰীৰ।
লুকাবলৈ একো নাই নঙঠা ফকীৰ।।
দুখীয়াৰ দুখত বাকি হৃদয় ৰুধিৰ।
সৰ্বস্বান্ত হ'লা তুমি নঙঠা ফকিৰ।।
নিমিষকে নাপাহৰি দুদৰ্শা দুখীৰ।
সন্মান হেচুকি হ'লা নঙঠা ফকীৰ।।
নিজৰ হাতেৰে দিলা হেৰোৱা ৰতন।
দুখীৰ হাতত তুলি চক্ৰ সুদৰ্শন।।
বহল বুকুত ঠাই তেত্ৰিশ কৌটিৰ।
ভাৰত দেৱতা তুমি নঙঠা ফকীৰ।।"

তেত্ৰিশ কৌটি হৃদয়ত সমানে স্থান দিব পৰা এই মহামানৱৰ মহানুভৱতাক বুজাত শিশুসকলৰ যাতে অসুবিধা নহয় সেই সম্পৰ্কে সচেতন আছিল ধ্বনি কবি বিনন্দ চন্দ্ৰ বৰুৱা। বৰুৱাই শিশুমনে সহজে বুজি পোৱাকৈ 'মহাত্মা' শীৰ্ষক কবিতাটো লিখিছিল-

"শিশুৰ দৰে অতিকৈ কোমল
হৃদয়ত যাৰ চেনেহ ভৰা
আপোন পৰৰ ভেদ নাজানে
বুকুত চপাই গোটেই ধৰা।"

গান্ধী ভাৱাদৰ্শৰ দ্বাৰা বিশেষভাৱে প্ৰভাৱিত হোৱা আন এগৰাকী বিশিষ্ট কবি, নাট্যকাৰ হৈছে জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালা। জ্যোতিপ্ৰসাদে নিজেও অসমত স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ বিভিন্ন কাৰ্য্যসূচীত যোগদান কৰিছিল। তেজপুৰ হাইস্কুলৰ পৰা ওলোৱা সমদলত তেওঁ নেতৃত্ব প্ৰদান কৰিছিল। শৈশৱৰ সেই স্মৃতিক ৰোমন্থন কৰি আগৰৱালাই লিখিছিল-

"উনৈশ শ একৈশ চন
গান্ধীজীয়ে পাতিলে অহিংসা ৰণ
জাকে-জাকে ওলাল ল'ৰা
স্কুল-কলেজৰ পৰা
ফিৰ্‌ফিৰিয়া ফিতাহী এৰি
পিন্ধিলে দগধা চোলা

চহৰৰ এৰিলে কোলা”

সাম্ৰাজ্যবাদী শোষকৰ বিৰুদ্ধে বন্দুক, বাৰুদ নোহোৰাকৈ যুঁজ দিয়া গান্ধীৰ সত্য আৰু অহিংসা সংগ্ৰামৰ স্বৰূপ কেনে আছিল সেই সম্পৰ্কে আগৰৱালাই লিখা ‘ভলণ্টিয়াৰৰ দুখ’ শীৰ্ষক কবিতাটো বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। কবিতাটোত ভলণ্টিয়াৰে কৈছে -

“গাঁৱতে আছিলোঁ শুই
গান্ধীয়ে লগালে জুঁই
বন্দুক-বাৰুদ নোহোৰাকৈ
চাহাব খেদিব পাৰি হেনো
‘গান্ধী বাপু নহয় কম
ব্ৰিটিছ সাম্ৰাজ্যৰ সাইলাখ যম।
কৰিছে এৰিব খেজেনা কম।
কৈছে ডোলে সূতা কাটিয়েই
স্বৰাজ সোপাকে ল’ম।”

সামৰণি ঃ ওপৰোক্ত আলোচনাৰ পৰা এটা কথা স্পষ্ট হৈ উঠিছে যে গান্ধীৰ প্ৰভাৱৰ পৰা অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ কোনো এটা দিশে বাদ পৰি যোৱা নাছিল। গান্ধীৰ সত্য, নিষ্ঠা, আদৰ্শৰ এই সংগ্ৰামে প্ৰতিজন অসমীয়াৰ মনত গভীৰভাৱে ৰেখাপাত কৰিছিল ফলস্বৰূপে তেওঁলোকৰ সৃষ্টিৰাজী গীত পদৰ মাজত গান্ধী ভাৱাদৰ্শ উদ্ভাসিত হৈ উঠিছিল।

বিঃদ্ৰঃ আলোচনাটোত উদ্ধৃত গীত আৰু কবিতাৰ পংক্তি সমূহ ডঃ সূৰ্য দাস সম্পাদিত ‘অসমীয়া সাহিত্যত মহাত্মা গান্ধী’ গ্ৰন্থখনৰ পৰা লোৱা হৈছে। ❑

প্ৰসংগটো আৰু গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

১. শৰ্মা, মদন, (সম্পা), সমাজ সাহিত্য বিজ্ঞান, তেজপুৰ বিশ্ববিদ্যালয়, ২০১০
২. পূজাৰী, অনুৰাধা শৰ্মা, (সম্পা), সাতসৰী, ২০১৯
দাস, সূৰ্য (সম্পা), ‘অসমীয়া সাহিত্যত গান্ধী’, অসম প্ৰকাশ পৰিষদ, প্ৰথম সংস্কৰণ, আগষ্ট, ২০১৯
৩. Jack, Homer(1965).The Gandhi Reader: A Sourcebook of his life and writings.grove press.
৪. https://www.ncbi.nlm,nih.gov>pmc
৫. প্ৰ ভু, আ ৰ.কে, (সম্পা) গান্ধী মানস, নেচনেল বুক ট্ৰাষ্ট,১৯৯৪
৬. পূজাৰী, অনুৰাধা শৰ্মা, (সম্পা), সাতসৰী,২০১৯
৭. শইকীয়া, চন্দ্ৰ প্ৰসাদ,(সম্পা), ‘অসমত মহাত্মা’, ‘অসম প্ৰকাশ পৰিষদ, প্ৰথম সংস্কৰণ, ২০২১
৮. প্ৰা গু ক্ত গ্ৰন্থ
৯. প্ৰা গু ক্ত গ্ৰন্থ
১০. ভট্টাচাৰ্য, বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ, ‘সাহিত্য আৰু কলা’, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০১৭
১১. শইকীয়া, চন্দ্ৰ প্ৰসাদ, (সম্পা), ‘অসমত মহাত্মা’, ‘অসম প্ৰকাশ পৰিষদ, প্ৰথম সংস্কৰণ, ২০২১
১২. দাস, সূৰ্য (সম্পা), ‘অসমীয়া সাহিত্যত গান্ধী’, অসম প্ৰকাশ পৰিষদ, প্ৰথম সংস্কৰণ, আগষ্ট, ২০১৯

শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা কৰ্মৰত শিক্ষকসকলৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীৰ অভিগম্যতা আৰু ব্যৱহাৰযোগ্যতা ঃ এক গুণগত অধ্যয়ন

জুল দত্ত

গৱেষক
মণিৰাম দেৱান স্কুল অৱ মেনেজমেন্ট, কৃষ্ণ কান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী
ম'বাইল ৮৮২২৯৪৪৫৫৬

ড° নৃপেন্দ্ৰ নাৰায়ণ শৰ্মা

অধ্যাপক
মণিৰাম দেৱান স্কুল অৱ মেনেজমেন্ট, কৃষ্ণ কান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী

সাৰাংশ ঃ

শিক্ষকসকলৰ বাবে বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী তেওঁলোকৰ নিৰন্তৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ তথা শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ গুণগত মান উন্নীতকৰণৰ বাবে গুৰুত্বপূৰ্ণ। শিক্ষকসকলৰ ফলপ্ৰসূ বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ আৰু তাৰ সুযোগ প্ৰদানো সমানে প্ৰয়োজনীয়। শিক্ষকসকলৰ বাবে বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী হৈছে এনে এক ব্যৱস্থা যিয়ে শিক্ষকসকলক বৃত্তিমূলকভাৱে উন্নতি কৰিবলৈ আৰু শিক্ষকতা বৃত্তিত হোৱা শেহতীয়া পৰিৱৰ্তনৰ তথ্যৰ সৈতে সমৃদ্ধ হৈ থাকিবলৈ উৎসাহিত কৰে। এই গৱেষণা পত্ৰৰ সামগ্ৰিক আলোচনাই, কৰ্মৰত শিক্ষকসকলৰ বাবে শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীৰ প্ৰেক্ষাপটত ইয়াৰ অভিগম্যতা আৰু ব্যৱহাৰযোগ্যতাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰিছে। এই গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰাথমিক উৎসৰ তথ্যৰ ওপৰত আধাৰিত। অধিক অন্তৰ্দৃষ্টি তথ্য সংগ্ৰহ কৰিবলৈ এক গুণগত গৱেষণা পদ্ধতি- দৃষ্টিবদ্ধ গোট আলোচনাক বাছনি কৰি লোৱা হৈছিল। তথ্যৰে সমৃদ্ধ সম্পদ সংগ্ৰহ কৰিবলৈ অংশীদাৰ শিক্ষকসকলৰ সৈতে এক ধাৰাবাহিক দৃষ্টিবদ্ধ গোট আলোচনা অনুষ্ঠিত কৰা হৈছিল, আৰু আলোচনাৰ তথ্যসমূহ আগন্তুক বিশ্লেষণৰ বাবে লিপিবদ্ধ কৰি ৰখা হৈছিল। লিখনীত থকা শব্দ আৰু ধাৰণাসমূহ কিমান সঘন আৰু তাৰ আৰ্হি বিশ্লেষণ কৰিবলৈ আৰু নিৰ্দিষ্ট তথ্যসমূহৰ পৰিমাণ নিৰ্ণয় কৰিবলৈ অধ্যয়নত গুণগত বিষয়বস্তু বিশ্লেষণ পদ্ধতি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। এই গৱেষণা পত্ৰখনৰ জৰিয়তে নীতি-নিৰ্ধাৰকসকলক আৰু শিক্ষক-শিক্ষানুষ্ঠানসমূহক শিক্ষা ব্যৱস্থাক উন্নত কৰাৰ বাবে প্ৰয়োজনীয় ব্যৱস্থা গ্ৰহণ কৰাত সহায়ক হ'ব বুলি আশা কৰা হৈছে।

প্ৰাধান্যমূলক শব্দ (Keywords) :

বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী (Professional Development Training Programme), শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী (Learning Management System), বিদ্যালয় প্ৰধান আৰু শিক্ষকসকলৰ সামগ্ৰিক অগ্ৰগতিৰ বাবে লোৱা

ৰাষ্ট্ৰীয় পদক্ষেপ (National Initiative for School Heads' and Teachers' Holistic Advancement), Digital Infrastructure for Knowledge Sharing (DIKSHA), ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষা নীতি-২০২০ (National Education Policy-2020)

অৱতৰণিকা ঃ

শিক্ষাই হৈছে দেশৰ মানৱ সম্পদ উন্নয়নৰ অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ, আৰু শিক্ষকসকল হৈছে শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ মূল ভূমিকা পালনকাৰী। ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষা নীতি-২০২০ অনুসৰি - "শিক্ষকসকলে সঁচাকৈয়ে আমাৰ সন্তানৰ ভৱিষ্যৎ গঢ় দিয়ে- আৰু, সেয়েহে আমাৰ জাতিৰ ভৱিষ্যৎ। আমাৰ শিশু আৰু আমাৰ জাতিৰ বাবে সম্ভৱপৰ উত্তম ভৱিষ্যৎ নিশ্চিত কৰিবলৈ শিক্ষকসকলৰ প্ৰেৰণা আৰু সবলীকৰণৰ প্ৰয়োজন।" শিক্ষকসকলৰ সামাৰ্থ্য গঢ়ি তুলি শিক্ষকসকলৰ সবলীকৰণ বাস্তৱায়িত কৰিব পাৰি আৰু তাৰ বাবে গুণগত মানৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীৰ প্ৰয়োজন। বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীয়ে শিক্ষকসকলক শিকিবলৈ, জ্ঞান আৰু দক্ষতা বৃদ্ধি কৰিবলৈ, বৃত্তিমূলক গুণ বিকাশ কৰিবলৈ আৰু তেওঁলোকৰ বৃত্তিটোক আগুৱাই নিয়াৰ সুযোগ প্ৰদান কৰে। বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীৰ ফলপ্ৰসূতা ইয়াৰ পৰিচালনা তথা কাৰ্যসূচী প্ৰদানৰ কাৰ্যক্ষম পদ্ধতিৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰে আৰু এনে বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী প্ৰচলিত মুখামুখি পদ্ধতিত পৰিচালনা কৰাটো এটা ব্যয়বহুল কাৰ্যকলাপ আৰু শিক্ষক-শিক্ষানুষ্ঠানসমূহৰ বাবে এক ডাঙৰ প্ৰত্যাহ্বান। তদুপৰি এই আধুনিক যুগত গুণগত শিক্ষাৰ লক্ষ্যত উপনীত হ'বলৈ সু-প্ৰশিক্ষিত, দক্ষ, আৰু পৰিচিত শিক্ষক অতি প্ৰয়োজনীয়। দ্ৰুত সামাজিক-প্ৰযুক্তিগত উন্নতিয়ে শিকন-প্ৰশিক্ষণ প্ৰদানৰ বাবে খৰচ-বহনক্ষম আৰু সম্পূৰ্ণ ডিজিটেল আন্তঃগাঁথনিৰ প্ৰয়োজনীয়তা তীব্ৰতৰ কৰি তুলিছে। এই উন্নত কাৰিকৰী যুগত শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীয়ে হৈছে বৰ্তমানৰ নতুন শৈক্ষিক ধাৰা তথা ডিজিটেল আন্তঃগাঁথনি, যিয়ে শিকন-প্ৰশিক্ষণ ফলপ্ৰসূভাৱে প্ৰদান কৰাত সহায় কৰে। শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীয়ে শিক্ষানুষ্ঠানসমূহক খৰচ-বহনক্ষমভাৱে প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী পৰিকল্পনা সংগঠিত আৰু ৰূপায়ণ কৰিবলৈ, কেন্দ্ৰীভূত তথা স্বয়ংক্ৰিয়ভাৱে চলাই নিবলৈ সুবিধা প্ৰদান কৰে।

বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী ঃ (Professional Development Training Programme)

বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীয়ে ব্যক্তিৰ কামৰ সৈতে জড়িত বহু ধৰণৰ শৈক্ষিক অভিজ্ঞতাক বুজায়, য'ত তেওঁলোকে নতুন জ্ঞান আৰু দক্ষতা শিকে আৰু প্ৰয়োগ কৰে, যিয়ে তেওঁলোকৰ কামত কৰ্মক্ষমতা উন্নত কৰে (Mizell,২০১০)। বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী হৈছে এনে এক প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী যি বৃত্তিমূলক গুণ, জ্ঞান, দক্ষতা আৰু ক্ষমতা বৃদ্ধি তথা উন্নত কৰাৰ বাবে ৰূপাংকন কৰা হৈছে। বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীয়ে শিক্ষকসকলক শিক্ষক বৃত্তিৰ লগত জড়িত জ্ঞান আহৰণ কৰিবলৈ তথা দক্ষতা বৃদ্ধি কৰিবলৈ, বৃত্তিমূলক গুণ বিকাশ কৰিবলৈ আৰু তেওঁলোকৰ বৃত্তিটোক আগুৱাই নিয়াৰ সুযোগ প্ৰদান কৰে।

শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী ঃ (Learning Management System)

শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী (LMS) হৈছে এটা ছফ্‌টৱেৰ এপ্লিকেচন, যিয়ে শিকন তথা প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীসমূহ ফলপ্ৰসূভাৱে প্ৰদান কৰিবলৈ এক ডিজিটেল প্লেটফৰ্ম প্ৰদান কৰে, লগতে শিকন- প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী প্ৰদানৰ ক্ষেত্ৰত বিভিন্ন ধৰণৰ কাৰ্যত সহায় কৰে; যেনে- পাঠ্যক্ৰমৰ সমল পৰিচালনা, নিযুক্তি, প্ৰতিক্ৰিয়া সংগ্ৰহ আদি। ই প্ৰশিক্ষণ আৰু তথ্যপাতিসমূহ পৰিচালনাৰ বাবে এটা সৰল প্ৰণালীৰ পৰা আৰম্ভ কৰি জটিল প্ৰণালীলৈকে হ'ব পাৰে, য'ত সকলো ধৰণৰ পাঠ্যক্ৰম সম্পৰ্কীয় কাৰ্যকলাপ অনলাইনত নিৰীক্ষণ কৰা হয়। প্ৰতিষ্ঠানসমূহে শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ ব্যৱহাৰ বিশেষভাৱে অনলাইন প্ৰশিক্ষণ আৰু প্ৰশিক্ষণৰ লগত জড়িত তথ্যপাতিসমূহ পৰিচালনাৰ ক্ষেত্ৰত কৰে।

Digital Infrastructure for Knowledge Sharing (DIKSHA) ঃ

Digital Infrastructure for Knowledge Sharing (DIKSHA) হৈছে বিদ্যালয় শিক্ষাৰ বাবে তৈয়াৰী এক ৰাষ্ট্ৰীয় ডিজিটেল প্লেটফৰ্ম, ভাৰত চৰকাৰৰ শিক্ষা মন্ত্ৰালয় আৰু ৰাষ্ট্ৰীয় শৈক্ষিক অনুসন্ধান আৰু প্ৰশিক্ষণ পৰিষদ(National Council of Educational Research and Training)ৰ এক পদক্ষেপ। DIKSHA হৈছে ছাত্ৰ-ছাত্ৰী আৰু শিক্ষকসকলৰ বাবে ৰাষ্ট্ৰীয় শিকন-শিক্ষণ প্লেটফৰ্ম,

য'ত ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলৰ উন্নত শিক্ষাৰ বাবে পাঠ্যক্ৰমৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি আৰু বিভিন্ন নিৰ্দেশনা মাধ্যমত বিষয়-নিৰ্দিষ্ট ই-সমলসমূহ আপলোড কৰা হয়। লগতে, শিক্ষক আৰু প্ৰশিক্ষকসকলৰ বাবে তেওঁলোকৰ নিৰন্তৰ বৃত্তিমূলক বিকাশৰ বাবে বহুতো বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ পাঠ্যক্ৰমো এই প্লেটফৰ্মত উপলব্ধ। ৰাষ্ট্ৰীয় পদক্ষেপৰ লগতে সংগতি ৰাখি অসম চৰকাৰৰ শিক্ষা বিভাগেও ৰাজ্যৰ ডিজিটেল শিকন-শিক্ষণৰ বাবে DIKSHA কাৰ্যকৰী কৰিছে।

বিদ্যালয় প্ৰধান আৰু শিক্ষকসকলৰ সামগ্ৰিক অগ্ৰগতিৰ বাবে লোৱা ৰাষ্ট্ৰীয় পদক্ষেপ (NISHTSHA)ঃ

বিদ্যালয় প্ৰধান আৰু শিক্ষকসকলৰ সামগ্ৰিক অগ্ৰগতিৰ বাবে লোৱা ৰাষ্ট্ৰীয় পদক্ষেপ (National Initiative for School Heads' and Teachers' Holistic Advancement) চমুকৈ NISHTSHA হৈছে দেশৰ শিক্ষকসকলৰ বাবে অন্যতম আৰু বৃহৎ বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী। NISHTSHA-ৰ লক্ষ হৈছে সকলো ৰাজ্য আৰু কেন্দ্ৰীয় শাসিত অঞ্চলৰ সকলো প্ৰাথমিক পৰ্যায়ৰ চৰকাৰী বিদ্যালয়ৰ সকলো শিক্ষক তথা বিদ্যালয়ৰ প্ৰধান, ৰাজ্যিক শিক্ষা গৱেষণা আৰু প্ৰশিক্ষণ পৰিষদ (SCERT) তথা জিলা শিক্ষা আৰু প্ৰশিক্ষণৰ অধ্যাপক সদস্য, ব্লক সম্পদ কেন্দ্ৰ (Block Resource Centres) আৰু ক্লাষ্টাৰ সম্পদ কেন্দ্ৰ (Cluster Resource Centres)ৰ বিষয়া আৰু সমল ব্যক্তিৰ সামৰ্থ্য গঢ়ি তোলা। ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষা নীতি-২০২০ পৰামৰ্শ অনুসৰি - "প্ৰতিজন শিক্ষক আৰু বিদ্যালয়ৰ প্ৰধান শিক্ষকে নিজৰ বৃত্তিমূলক বিকাশৰ বাবে প্ৰতি বছৰে কমেও ৫০ ঘন্টা নিৰন্তৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ (Continuous Professional Development)ৰ কাৰ্যসূচীত অংশ গ্ৰহণ কৰিব বুলি আশা কৰা হৈছে। ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষা নীতি-২০২০ৰ দৃষ্টিভংগী বাস্তৱায়িত কৰিবলৈ NCERTয়ে ৰাজ্য তথা কেন্দ্ৰীয় শাসিত অঞ্চল আৰু শিক্ষা মন্ত্ৰালয় (MoE), প্ৰতিৰক্ষা মন্ত্ৰালয়(MoD) আৰু জনজাতীয় পৰিক্ৰমা মন্ত্ৰালয় (MoTA)ৰ অধীনত আৰু স্বায়ত্তশাসিত সংস্থাসমূহৰ সহযোগত বিদ্যালয় শিক্ষাৰ বিভিন্ন পৰ্যায়ৰ বাবে NISHTSHA ২.০ অনলাইন সংহত শিক্ষক-প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী আৰম্ভ কৰিছে (http://nishtha.ncert.gov.in/)।

অনলাইন NISHTSHA ২.০-ৰ পৰ্যায়সমূহ হ'ল-

- প্ৰাথমিক স্তৰৰ বাবে NISHTSHA ১.০ (প্ৰথম-অষ্টম শ্ৰেণী)
- মাধ্যমিক স্তৰৰ বাবে NISHTSHA ২.০ (নৱম-দ্বাদশ শ্ৰেণী)
- NIPUN ভাৰতৰ বাবে NISHTSHA ৩.০ FLN (প্ৰাথমিক শিশুৰ যত্ন আৰু শিক্ষা (Early Childhood Care and Education)ৰ পৰা পঞ্চম শ্ৰেণীলৈ)

এই গৱেষণামূলক অধ্যয়নৰ লক্ষ্য হৈছে শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী (DIKSHA)ৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী (NISHTSHA)ৰ প্ৰেক্ষাপটত ইয়াৰ অভিগম্যতা আৰু ব্যৱহাৰযোগ্যতা দিশসমূহ অধ্যয়ন আৰু বিশ্লেষণ কৰা।

সাহিত্য পৰ্যালোচনা (Literature Review)ঃ

কৰ্মৰত শিক্ষকৰ বাবে প্ৰচলিত শৈক্ষিক আৰু প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী

- Kaur (২০১৬)য়ে কৰ্মৰত শিক্ষকসকলৰ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীৰ ওপৰত কৰা অধ্যয়নত শিক্ষকসকলৰ ধনাত্মক মনোভাৱৰ উন্নতি সাধনত এই প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীসমূহ ফলপ্ৰসূ হোৱা বুলি বিবেচনা কৰিছে। এই অধ্যয়নৰ পৰা এটা কথা প্ৰতীয়মান হৈছে যে কৰ্মৰত শিক্ষক প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী সম্পূৰ্ণ হোৱাৰ পিছত শিক্ষকসকলৰ মনোভাব আৰু শিক্ষকসকলৰ কাৰ্যকৰিতা যথেষ্ট উন্নত হৈছে।

- Goswami (২০১৫)য়ে তেওঁৰ অধ্যয়নত প্ৰকাশ কৰিছে যে প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীত অংশগ্ৰহণ কৰি শিক্ষকসকলে শেহতীয়া তথ্যৰে সৈতে সমৃদ্ধ হৈ থাকিব পাৰে। অধ্যয়নৰ তথ্য অনুসৰি কৰ্মৰত শিক্ষক প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীয়ে প্ৰাথমিক বিদ্যালয়ৰ শিক্ষকসকলৰ বৃত্তিমূলক বিকাশত যথেষ্ট প্ৰভাৱ পেলায়। গৱেষকে অপ্ৰশিক্ষিত শিক্ষকসকলক তেওঁলোকৰ বৃত্তিগত বিকাশৰ বাবে প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীত যোগদানৰ বিশেষ গুৰুত্ব দিছে।

- Bordia (২০১৯)য়ে তেওঁৰ অধ্যয়নত উল্লেখ কৰিছে যে শিক্ষকসকলে শিক্ষক প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীৰ ফলত শৈক্ষিকভাৱে লাভান্বিত হৈছে। এই ক্ষেত্ৰত গৱেষকে উনুকিয়াই দিছে যে এই শিক্ষক প্ৰশিক্ষণ প্ৰয়োজনভিত্তিক হ'ব লাগে আৰু নিয়মীয়া ব্যৱধানত অনুষ্ঠিত কৰাটো উচিত।

বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী ঃ

• নিৰন্তৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ হৈছে এক পৰিকল্পিত, নিৰন্তৰ আৰু আজীৱন প্ৰক্ৰিয়া, য'ত শিক্ষকসকলে তেওঁলোকৰ ব্যক্তিগত আৰু বৃত্তিমূলক গুণসমূহ বিকাশ কৰিবলৈ, আৰু তেওঁলোকৰ জ্ঞান, দক্ষতা আৰু অনুশীলন উন্নত কৰিবলৈ চেষ্টা কৰে, যাৰ ফলত শিক্ষকসকলৰ সবলীকৰণ, তেওঁলোকৰ সংস্থাৰ উন্নতি আৰু তেওঁলোকৰ সংগঠন তথা তেওঁলোকৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক বিকাশৰ দিশত আগুৱাই যাবলৈ সহায়ক হয় (Padwad and Dixit, British Council,২০১১)।

• Agravat (২০১৭)ৰ অধ্যয়নত বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ মডিউলসমূহে শিক্ষকসকলক তেওঁলোকৰ নিৰন্তৰ বৃত্তিমূলক বিকাশৰ দিশত অত্যন্ত প্ৰভাৱিত কৰিবলৈ সক্ষম হোৱা বুলি বিবেচনা কৰিছে আৰু তাৰ ফলস্বৰূপে শিক্ষকসকলৰ বৰ্তমানৰ শিক্ষকৰ ভূমিকাত ৰূপান্তৰ আনিছে।

• নিৰন্তৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যকলাপসমূহ বিষয়মূলক জ্ঞান উন্নীতকৰণ তথা শেহতীয়া নতুন পদক্ষেপ আৰু নীতি আদি তথ্যৰ জ্ঞান বৃদ্ধি কৰাত সহায়ক হয়। নিৰন্তৰ বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীৰ এক শক্তি হ'ল ই সমগ্ৰ শিক্ষা-প্ৰতিষ্ঠানসমূহত নেটৱৰ্কিঙৰ সুযোগ দিয়ে (Bertleton,২০১৮)।

ই-শিকন কাৰ্যসূচীৰ অভিগম্যতা ঃ

• বিভিন্ন সংস্থাসমূহে নিজৰ কৰ্মচাৰীসকলক খৰচ-বহনক্ষম, কাৰ্যক্ষম আৰু পুংখানুপুংখভাৱে প্ৰশিক্ষণ আৰু শিক্ষা প্ৰদান কৰাটো প্ৰয়োজনবোধ কৰে। ই-শিকন পদ্ধতিয়ে সংস্থাসমূহক এই লক্ষ্যসমূহ লাভ কৰিবলৈ সমাধান প্ৰদান কৰে। ই-শিকন কাৰ্যসূচীয়ে ব্যক্তিসকলক কৰ্মক্ষেত্ৰৰ দক্ষতা বুজিবলৈ সহায় কৰে, আৰু তাৰ ফলস্বৰূপে তেওঁলোকৰ কৰ্ম প্ৰদৰ্শনত সহায়ক হয় আৰু ইয়ে তেওঁলোকৰ কৰ্মসন্তুষ্টি বৃদ্ধিত সহায় কৰে, যিয়ে প্ৰতিযোগিতামূলক কৰ্মশক্তিৰ সৃষ্টি কৰে (Chen, ২০০৮)।

• ই-শিকন প্ৰণালী এক নমনীয় শিকন বিকল্প প্ৰণালী যি প্ৰণালীয়ে ব্যক্তিসকলক অধিক দ্ৰুতভাৱে দক্ষতা অৰ্জন কৰিবলৈ সহায় কৰে। ই-শিকন প্ৰণালীয়ে প্ৰশিক্ষণক ক্ষেত্ৰত স্থিৰতা প্ৰদান কৰে, শিক্ষাৰ্থীসকলৰ বাবে সুবিধাত্মক তথা নিয়ন্ত্ৰিত শিকন প্ৰদান কৰে, আৰু নিয়োগকৰ্তাসকলৰ বাবে উন্নত নিৰীক্ষণ ক্ষমতা আৰু ব্যয়-ফলপ্ৰসূতা প্ৰদান কৰে (Bhardwaj, ২০১৯)।

ই-শিকন কাৰ্যসূচীৰ ব্যৱহাৰযোগ্যতা ঃ

• Tassi (২০১৬)য়ে তেওঁৰ অধ্যয়নত ই-শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী (E-LMS) নিৰ্দেশনামূলক প্ৰদান আৰু জ্ঞান আহৰণৰ বাবে ফলপ্ৰসূ বুলি প্ৰমাণ কৰিছে।

• Thiruselvi (২০১৫)য়েও তেওঁৰ অধ্যয়নত দেখিছে যে শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ ব্যৱহাৰযোগ্যতা আৰু অভিগম্যতা বৈশিষ্ট্য আৰু শিকন শৈলীৰ মাজত এক ইতিবাচক সম্পৰ্ক আছে। অধ্যয়নটোৱে প্ৰকাশ কৰিছে যে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক শিক্ষকসকলে শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ সকলো বৈশিষ্ট্য ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ উৎসাহিত কৰি বিভিন্ন শিকনৰ শৈলীৰে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক উপকৃত কৰিব লাগে।

শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ দ্বাৰা প্ৰদান কৰা সেৱাসমূহ ঃ

• Jamal, আৰু Shanaah (২০১১)য়ে গৱেষণামূলক অধ্যয়নত দেখিছে যে শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীয়ে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক তেওঁলোকৰ শিকন কাৰ্যকলাপত সহায় কৰে আৰু অনলাইন পাৰস্পৰিক ক্ৰিয়া-কলাপ আৰু আলোচনাৰ কাৰ্যকলাপ আগবঢ়ায়। শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীয়ে শিক্ষকসকলক পাঠ্যক্ৰমৰ সমল, আবণ্টন কৰা কাৰ্য আৰু ঘোষণা পৰিচালনাৰ জৰিয়তে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ সৈতে যোগাযোগ কৰিবলৈ সুবিধা প্ৰদান কৰে।

• শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী (LMS) শিক্ষানুষ্ঠানসমূহৰ এক অবিচ্ছেদ্য কাৰ্যকৰী অংগ হৈ পৰিছে। শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীয়ে প্ৰশিক্ষণৰ লক্ষ্য পূৰণ কৰিবলৈ ব্যক্তি আৰু দলৰ বাবে অনুকূলিত শিকন ব্যৱস্থা প্ৰদান কৰে। শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীয়ে বহুমুখী কৌশলগত কাৰ্য যেনে- প্ৰতিভা ব্যৱস্থাপনা, কৰ্মক্ষমতা জোখা, পুৰস্কাৰ তথা ক্ষতিপূৰণ আৰু লগতে পৰামৰ্শ সম্পৰ্কীয় বিষয় যেনে- সঠিক প্ৰতিভা নিযুক্তি, নেতৃত্ব বিকাশ আৰু পৰৱৰ্তী পৰিকল্পনা আদি প্ৰদান কৰে (Ilyas, Kadir, and Adnan,২০১৭)।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ ঃ

i অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী-NISHTHA-ৰ প্ৰসংগত ইয়াৰ শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী-DIKSHA-ৰ অভিগম্যতাৰ দিশসমূহ অধ্যয়ন আৰু বিশ্লেষণ কৰা।

ii অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী-NISHTHA-ৰ প্ৰসংগত ইয়াৰ শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী- DIKSHA-ৰ ব্যৱহাৰযোগ্যতাৰ দিশসমূহ অধ্যয়ন আৰু বিশ্লেষণ কৰা।

গৱেষণাৰ পদ্ধতি ঃ

অসমৰ কৰ্মৰত শিক্ষকসকলৰ বাবে প্ৰদান কৰা অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী- NISHTHA-ৰ প্ৰসংগত ইয়াৰ শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী- DIKSHA-ৰ প্ৰেক্ষাপটত অভিগম্যতা আৰু ব্যৱহাৰযোগ্যতা দিশসমূহৰ সৈতে জড়িত বিষয়সমূহ বুজি পাবলৈ এক নিৰ্দিষ্ট গৱেষণা পদ্ধতিৰ প্ৰয়োজন। ই গুণগত বা সংখ্যাগত বা দুয়োটাৰে মিশ্ৰণ এটি হ'ব পাৰে। এই গৱেষণামূলক অধ্যয়ন অসম ৰাজ্যত কৰা হৈছে আৰু অধ্যয়নৰ বাবে লক্ষিত জনসংখ্যা হৈছে অসমৰ কৰ্মৰত শিক্ষকসকল যিসকলে ডিজিটেল প্লেটফৰ্ম- DIKSHA-ৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচী- NISHTHAত অংশগ্ৰহণ কৰিছে।

অধ্যয়নৰ বাবে প্ৰাথমিক তথ্যসমূহ সংগ্ৰহ কৰিবলৈ এক গুণগত গৱেষণা পদ্ধতি ডিজাইন কৰা হৈছিল। তথ্য আৰু ধাৰণাৰ এক সমৃদ্ধ সম্পদ পাবলৈ, অনলাইন NISHTHAত অংশগ্ৰহণ কৰা আৰু বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীৰ কাৰ্যকৰী দিশসমূহৰ অভিজ্ঞতা থকা কৰ্মৰত শিক্ষকসকলৰ সৈতে দৃষ্টিবদ্ধ গোট আলোচনা ডিজাইন কৰা হৈছিল, আৰু তাৰ লগত সংগতি ৰাখি তিনিটা ভিন্ন দৃষ্টিবদ্ধ গোট গঠন কৰা হৈছিল যাতে গৱেষণাৰ সমীক্ষাৰ আহিলাটো ডিজাইন কৰাৰ পূৰ্বে ব্যৱহাৰিক অন্তৰ্দৃষ্টি লাভ কৰিব পৰা যায়।

• প্ৰথম দৃষ্টিবদ্ধ গোটটো ৰাজ্যৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ (তিনিচুকীয়া, ডিব্ৰুগড়, যোৰহাট, গোলাঘাট, মৰিগাঁও, ধুবুৰী) পৰা ১০ জন দক্ষ শিক্ষকক তেওঁলোকৰ সাফল্যতাৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি বাছনি কৰা হৈছিল। বিবেচনা কৰা সাফল্যতাসমূহ আছিল ৰাষ্ট্ৰীয় আৰু ৰাজ্য চৰকাৰৰ বঁটা আৰু স্বীকৃতিপ্ৰাপ্ত শিক্ষক তথা বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী সংগঠিত কৰাৰ কাৰ্যকৰী দিশসমূহৰ অভিজ্ঞতা থকা শিক্ষক।

• দ্বিতীয় আৰু তৃতীয় দৃষ্টিবদ্ধ গোটৰ প্ৰতিটো গোটত ৭ জনকৈ অংশগ্ৰহণকাৰী শিক্ষকসকলক তেওঁলোকৰ বাসস্থানৰ ভৌগলিক অৱস্থান অৰ্থাৎ ক্ৰমে গ্ৰাম্য আৰু চহৰীয়া স্থানৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি বাছনি কৰা হৈছিল। দ্বিতীয় দৃষ্টিবদ্ধ গোটৰ সদস্যসকল হৈছে ৰাজ্যৰ বিভিন্ন গ্ৰাম্য অঞ্চলৰ (ডিব্ৰুগড়, যোৰহাট, বৰপেটা, কোকৰাঝাৰ আৰু দক্ষিণ শালমাৰা মানকাচৰ- জিলাৰ গ্ৰাম্য অঞ্চল) বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীৰ অংশীদাৰ শিক্ষকসকল। তৃতীয় দৃষ্টিবদ্ধ গোটৰ সদস্যসকল হৈছে ৰাজ্যৰ চহৰীয়া অঞ্চলৰ (কামৰূপ, কামৰূপ মহানগৰ জিলাৰ) বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীৰ অংশীদাৰ শিক্ষকসকল।

ভিডিঅ' কনফাৰেন্সিং সঁজুলি Google meet-ৰ সহায়ত অনলাইন মোডত এই তিনিটা ভিন্ন দৃষ্টিবদ্ধ গোট আলোচনাৰ ডিজাইন আৰু পৰিচালনা কৰা হৈছিল। আলোচনাত দৃষ্টিবদ্ধ গোটৰ অংশগ্ৰহণকাৰীসকলৰ আগলৈ কিছু প্ৰাসংগিক আৰু অৰ্ধগাঁথনিযুক্ত প্ৰশ্ন আগবঢ়োৱা হৈছিল। দৃষ্টিবদ্ধ গোটৰ সকলো সদস্যই সক্ৰিয়ভাৱে আলোচনাত অংশগ্ৰহণ কৰিছিল আৰু ইজনে সিজনৰ লগত মত বিনিময় কৰিছিল। আলোচনাত উত্থান হোৱা বৈশিষ্ট্যসমূহ পৰৱৰ্তী বিশ্লেষণৰ বাবে লিপিবদ্ধ কৰা হৈছিল।

দৃষ্টিবদ্ধ গোট আলোচনাৰ গুণগত বিষয়বস্তু বিশ্লেষণ ঃ

দৃষ্টিবদ্ধ গোট আলোচনাৰ কথোপকথনসমূহ প্ৰতিলিপিত লিপিবদ্ধ কৰা হৈছিল। আলোচনাৰ বৈশিষ্ট্যসমূহত থকা শব্দ আৰু ধাৰণাসমূহ বিশ্লেষণ কৰি নিৰ্দিষ্ট তথ্য আৰু ই কিমান সঘন তথা ইয়াৰ আৰ্হিৰ বিশ্লেষণ কৰি পৰৱৰ্তী পৰিমাণীকৰণ কৰিবলৈ অধ্যয়নত গুণগত বিষয়বস্তু বিশ্লেষণ পদ্ধতি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। বিষয়বস্তু বিশ্লেষণে অংশগ্ৰহণকাৰীসকলৰ উদ্দেশ্য, মনোভাব, আৰ্হি আনকি মানসিক আৰু আৱেগিক অৱস্থা চিনাক্ত কৰাত সহায় কৰিছে। প্ৰতিলিপিৰ লিখনী বাৰে বাৰে পঢ়া হৈছিল, আৰু তাৰ পিছত ভিন্ন শ্ৰেণীত ভাগ কৰি কিছু নিৰ্দিষ্ট ক'ড দিয়া হৈছিল। তাৰ পিছত এই ক'ডসমূহ একেলগ কৰি কিছু প্ৰধান বিষয়বস্তুলৈ গোট খুৱাই লোৱা হৈছিল।

বিষয়বস্তুসমূহৰ উত্থান ঃ

এই খণ্ডত দৃষ্টিবদ্ধ গোট আলোচনাৰ সময়ত সংগ্ৰহ কৰা সঁহাৰিসমূহৰ ওপৰত কৰা বিষয়বস্তু বিশ্লেষণৰ পৰা উদ্ভৱ হোৱা বিষয়বস্তুসমূহ আলোকপাত কৰা হৈছে। আলোচনাৰ সঁহাৰিসমূহ পৰিলক্ষিত কৰা হৈছিল, সাধাৰণ আৰু গুৰুত্বপূৰ্ণ কথাবোৰ চিনাক্ত কৰিবলৈ কেইবাবাৰো পঢ়া আৰু পুনৰ পঢ়া হৈছিল। লিখনীসমূহৰ পৰা ওলোৱা বৰ্ণনাত্মক ক'ডসমূহ ব্যৱহাৰ কৰি বক্তব্যসমূহক একেলগে গোট কৰা হৈছিল। তাৰ পিছত এই ক'ডসমূহক কিছু প্ৰধান বিষয়বস্তুলৈ একগোট কৰা হৈছিল। আলোচনাৰ পৰা উত্থান হোৱা প্ৰধান বিষয়বস্তুসমূহ হৈছে-

ক) ডিজিটেল প্লেটফৰ্মৰ অভিগম্যতা আৰু বিশেষজ্ঞতা
খ) অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীত প্ৰত্যাহ্বান
গ) অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীৰ ডিজাইন আৰু ডেলিভাৰী
ঘ) জ্ঞান আৰু দক্ষতা আহৰণ কৰা
ঙ) কৰ্ম পৰিৱেশ আৰু নতুন জ্ঞান তথা দক্ষতাৰ প্ৰয়োগ
চ) ব্যক্তিগত কৰ্মক্ষমতা আৰু উৎপাদনশীলতা

অধ্যয়নৰ প্ৰাপ্তিসমূহ ঃ

উদীয়মান বিষয়বস্তুৰ সন্দৰ্ভত অধ্যয়নৰ প্ৰাপ্তিসমূহ তলত দিয়া ধৰণৰ-

ক) ডিজিটেল প্লেটফৰ্মৰ অভিগম্যতা আৰু বিশেষজ্ঞতা

• ডিজিটেল প্লেটফৰ্ম- DIKSHA-ৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচী- NISHTHA-ৰ অভিগম্যতা সম্পৰ্কে শিক্ষকসকলৰ অভিজ্ঞতা ভাল আছিল আৰু প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী শিক্ষকসকলৰ বাবে উপযোগী আছিল।

• COVID-১৯ মহামাৰী বৰ্ষৰ সময়ছোৱাত যেতিয়া শিক্ষা ব্যৱস্থাত ব্যাঘাত জন্মিছিল একে সময়তে শিক্ষক শিক্ষা ব্যৱস্থা আৰু প্ৰশিক্ষণতো ব্যাঘাত জন্মিছিল তেতিয়া শিকন-শিক্ষণ কাৰ্যসূচীত ডিজিটেল প্লেটফৰ্মে সহায় কৰিছিল আৰু পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু প্ৰদানৰ বাবে এক বিকল্প উপায় হৈ পৰিছিল।

• শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী DIKSHA-প্লেটফৰ্মৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচী- NISHTHA ৰেছিভাগ ডিজিটেল ডিভাইচত যেনে মোবাইল ফোন, আৰু ব্যক্তিগত কম্পিউটিং ছিষ্টেম- ডেস্কটপ, লেপটপ, টেবলেট আদিত অতি সহজলভ্য।

• DIKSHA-প্লেটফৰ্মে শিকন আৰু শিক্ষণ ব্যৱস্থাত একাকাৰিতাৰে গণ প্ৰশিক্ষণক প্ৰচাৰিত কৰে, য'ত ভৌগলিক সীমা নিৰ্বিশেষে সকলোৰে বাবে শিকন আৰু শিক্ষণ একাকাৰীতা প্ৰামাণিক কৰা হয়। অৰ্থাৎ ৰাজ্যখনৰ সকলো শিক্ষকে একেটা পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু শিকিব আৰু জানিব পাৰে।

• DIKSHA-প্লেটফৰ্মে আজীৱন শিকনক প্ৰচাৰিত কৰে। গতানুগতিক অফলাইন প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীত শিক্ষকসকলে সাধাৰণতে শ্ৰেণীকোঠাত একেলগে বহি মুখামুখিকৈ শিক্ষা গ্ৰহণ কৰে, য'ত পাঠ্যক্ৰমৰ ১০০ শতাংশ বিষয়বস্তু মুখস্থ নহ'বও পাৰে, কিন্তু অনলাইন প্ৰশিক্ষণত শিক্ষকসকলে আজীৱন বিষয়বস্তু লাভ কৰিব পাৰে আৰু পাঠ্যক্ৰম সম্পূৰ্ণ কৰাৰ পিছতো পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তুৰ পৰা শিকিব পাৰে। যিহেতু পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু লিপিবস্তু লিপিবদ্ধ কৰা হয় আৰু DIKSHA-প্লেটফৰ্মত সকলো সময়তে উপলব্ধ কৰা হয়, সেয়েহে শিক্ষকসকলে প্ৰয়োজনৰ সময়ত যিকোনো সময়তে পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু পাব পাৰে।

• শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালী খৰচ-বহনক্ষম কাৰণ ইয়াৰ খৰচ অফলাইন মুখামুখিকৈ দিয়া প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীতকৈ বহুত কম।

• অফলাইন মোডত অনুষ্ঠিত হোৱা প্ৰশিক্ষণ পাঠ্যক্ৰমৰ যদি কোনো বিষয়বস্তু শিকিবলৈ ৰৈ যায়, তেন্তে সেইবোৰ অন্য সময়ত বিচাৰি পোৱা নাযায়। এই ক্ষেত্ৰত অনলাইন বৃত্তিমূলক প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী অতি সহায়ক হৈ পৰে কিয়নো শিক্ষকসকলে পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু যেতিয়াই বিচাৰে তেতিয়াই পাব পাৰে আৰু প্ৰয়োজনৰ সময়ত তাৰ পৰা শিকিব পাৰে। অফলাইন প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীত যি শিকনৰ ক্ষতি হয়, সেই ধৰণৰ ক্ষতি অনলাইন প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীয়ে হ্ৰাস কৰে।

• লেহেমীয়া শিক্ষাৰ্থীসকলেও নিজৰ গতিৰে পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তুসমূহ শিকিব আৰু বুজিব পাৰে, কাৰণ শিকন ব্যৱস্থা প্ৰণালীয়ে সকলো ধৰণৰ শিক্ষাৰ্থীক শিকনত সহায় কৰে।

• NISHTHA অফলাইন মুখামুখি মোডত অনুষ্ঠিত কৰা বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী আৰু NISHTHA অনলাইন মোডত অনুষ্ঠিত কৰা বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ এই দুই ভিন্ন মোডত অনুষ্ঠিত কাৰ্যসূচীৰ মাজৰ এক তুলনামূলক বিশ্লেষণ পোৱা গৈছিল যে অফলাইন NISHTHA কাৰ্যসূচীৰ ক্ষেত্ৰত ৰাষ্ট্ৰীয় পৰ্যায়ৰ সমল ব্যক্তিসকলে ৰাজ্যিক পৰ্যায়ৰ সমল ব্যক্তিসকলক প্ৰশিক্ষণ দিয়ে, আৰু ৰাজ্যিক পৰ্যায়ৰ সমল ব্যক্তিসকলে জিলা পৰ্যায়ৰ সমল ব্যক্তিসকলক প্ৰশিক্ষণ দিয়ে, জিলা পৰ্যায়ৰ সমল ব্যক্তিসকলে ব্লক পৰ্যায়ৰ সমল ব্যক্তিসকলক প্ৰশিক্ষণ দিয়ে, আৰু ব্লক পৰ্যায়ৰ সমল ব্যক্তিসকলে ক্লাষ্টাৰ পৰ্যায়ৰ সমল ব্যক্তিসকলক প্ৰশিক্ষণ দিয়ে, আৰু আগলৈ ক্লাষ্টাৰ পৰ্যায়ৰ সমল ব্যক্তিসকলে কৰ্মৰত শিক্ষকসকলক

প্ৰশিক্ষণ দিয়ে। অফলাইন প্ৰশিক্ষণ এই প্ৰক্ৰিয়াত প্ৰতিটো পৰ্যায়তে বিষয়বস্তুৰ সঞ্চাৰণত ক্ষতি ঘটে যিয়ে শিকনৰ ক্ষতিৰ ইংগিত দিয়ে। কিন্তু DIKSHA-ৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা অনলাইন NISHTHA কাৰ্যসূচীৰ ক্ষেত্ৰত তৃণমূল পৰ্যায়ৰ প্ৰতিজন শিক্ষকে পাঠ্যক্ৰমৰ সকলো বিষয়বস্তু লাভ কৰিব পাৰে আৰু ৰাষ্ট্ৰীয় পৰ্যায়ৰ সমল ব্যক্তিৰ পৰা পোনপটীয়াকৈ শিকিবলৈ সুযোগ পায় যিয়ে শিকনৰ সকলো ব্যৱধান মচি পেলায়।

• যিসকল শিক্ষকৰ ডিজিটেল সাক্ষৰতা আছে তেওঁলোকে ডিজিটেল প্লেটফৰ্ম DIKSHA সহজেই চম্ভালিব পাৰিছে আৰু যিসকল শিক্ষকৰ ডিজিটেল সাক্ষৰতা নাই, তেওঁলোকক অভিবিন্যাস প্ৰশিক্ষণৰ প্ৰয়োজন হৈছিল আৰু তাৰ বাবে প্ৰশাসকসকলে ডিজিটেল প্লেটফৰ্ম DIKSHA ব্যৱহাৰৰ ওপৰত অভিবিন্যাস প্ৰশিক্ষণ প্ৰদান কৰে। ডিজিটেল প্লেটফৰ্ম DIKSHA চম্ভালাটো যথেষ্ট সহজ আৰু অভিবিন্যাস প্ৰশিক্ষণৰ পিছত প্ৰতিজন শিক্ষকে সহজেই NISHTHA পাঠ্যক্ৰমত যোগদান কৰি কাৰ্যসূচী সম্পূৰ্ণ কৰিব পাৰিছে।

খ) অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীত প্ৰত্যাহ্বান

• অনলাইন মোডৰ জৰিয়তে শিকনৰ ক্ষেত্ৰত ৰাজ্যৰ কিছুমান অভ্যন্তৰীণ অংশ বা দূৰৱৰ্তী অঞ্চলত দুৰ্বল ইন্টাৰনেট সংযোগ সেৰাই হৈছে এক অন্যতম বাধা। ৰাজ্যৰ নৈপৰীয়া অঞ্চল, পাহাৰীয়া অঞ্চল আদিৰ দৰে দুৰ্গম অঞ্চলত ইন্টাৰনেটৰ সংযোগ সেৰা খুবেই দুৰ্বল।

• নতুন প্ৰজন্মৰ শিক্ষকসকলে অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী- NISHTHAক ভাল পাইছে, কাৰণ তেওঁলোকৰ ডিজিটেল জ্ঞান আছে। কিন্তু প্ৰথম অৱস্থাত জ্যেষ্ঠ শিক্ষকসকলে অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীত কিছু প্ৰতিৰোধৰ সন্মুখীন হৈছিল, কাৰণ তেওঁলোকৰ বাবে এই অনলাইন ব্যৱস্থাটো সম্পূৰ্ণ নতুন আছিল। কিন্তু অভিবিন্যাস প্ৰশিক্ষণ আৰু অধিক অনুশীলন কৰাৰ পিছত তেওঁলোকে ডিজিটেল ডিভাইচটো কেনেকৈ ব্যৱহাৰ কৰিব লাগে আৰু ডিজিটেল প্লেটফৰ্ম DIKSHA ব্যৱহাৰ কৰি অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী- NISHTHAত কেনেদৰে অভিগম কৰিব পাৰি তাৰ ওপৰত তেওঁলোকৰ আত্মবিশ্বাস আৰু দক্ষতা গঢ়ি উঠে।

• ৰাজ্যত NISHTSHA ২.০ মাধ্যমিক পৰ্যায়ৰ কাৰ্যসূচী কেৱল ইংৰাজী মাধ্যমতহে প্ৰস্তুত কৰা হৈছিল। যদি পাঠ্যক্ৰমটো অন্য থলুৱা মাধ্যম যেনে- অসমীয়া, বড়ো, বাংলা আদিতো বিকশিত কৰা হ'লহেঁতেন তেন্তে ই শিক্ষকসকলক অধিক সহজে শিকিবলৈ সহায় কৰিব পাৰিলে হয়, কাৰণ অংশগ্ৰহকাৰী শিক্ষকসকলে নিজৰ মাতৃভাষাত শিকিবলৈ অধিক সুবিধাবোধ কৰে।

• বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ পাঠ্যক্ৰমসমূহ মাতৃভাষা তথা সহজ ভাষাত হ'ব লাগে যাতে প্ৰতিজন শিক্ষকে পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু সহজে বুজিব পাৰে। অধিকাংশ জ্যেষ্ঠ শিক্ষকসকলে প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীত ভাষা সমস্যাৰ সন্মুখীন হৈছিল।

• কেইজনমান শিক্ষকে ডিজিটেল প্লেটফৰ্ম সম্পৰ্কীয় কিছুমান কাৰিকৰী বাধাৰ সন্মুখীন হৈছিল, যেনে- ডিজিটেল প্লেটফৰ্মত লগ ইন কৰাৰ সময়ত বাধা, ছফ্টৱেৰৰ সামঞ্জস্যতা, এপ্লিকেচন ছফ্টৱেৰটো বিকল হৈ পৰা আদি।

• অনলাইন NISHTSHA কাৰ্যসূচী কেইটামান ভিডিঅ' সমল সুকলমে চলা নাছিল, সেইবোৰ সম্ভাব্য দুৰ্বল ইন্টাৰনেট সংযোগৰ বাবে হ'ব পাৰে, কিয়নো ভিডিঅ' সমল চলিবলৈ দ্ৰুতবেগী ইন্টাৰনেটৰ প্ৰয়োজন হয়।

• NISHTSHA কাৰ্যসূচীৰ প্ৰমাণপত্ৰ ডাউনলোড কৰাৰ সন্দৰ্ভত কিছুসংখ্যক শিক্ষকে সমস্যাৰ সন্মুখীন হৈছিল তথা অনলাইন- NISHTSHA কাৰ্যসূচী সফলতাৰে সম্পূৰ্ণ কৰাৰ পিছত কেইজনমান শিক্ষকে প্ৰমাণপত্ৰ লাভ কৰা নাছিল।

• বহু সময়ত কাৰিকৰী বাধাসমূহ ডিজিটেল প্লেটফৰ্মৰ বাবে নহয় বৰঞ্চ শিক্ষকসকলে ব্যৱহাৰ কৰা ডিজিটেল ডিভাইচ আৰু ডিজিটেল ডিভাইচৰ সামঞ্জস্যতাৰ বাবেহে হোৱা দেখা যায়।

• NISHTSHA ৩.০ FLN-ত পাঠ্যক্ৰম মূল্যায়ন অংশসমূহত কিছুমান কাৰিকৰী সমস্যা দেখা দিছিল, যেনে- প্ৰশ্নৰ সকলো বিকল্পসমূহ ভালকৈ দৃশ্যমান হোৱা নাছিল। যিটো শিক্ষকসকলৰ মাজত ভুলভাৱে প্ৰচাৰ হৈছিল।

• অনলাইন- NISHTSHA কাৰ্যসূচীৰ কিছুমান পাঠ্যক্ৰম কিছু দীঘলীয়া আছিল। পাঠ্যক্ৰমবোৰ দীঘলীয়া হ'ব নালাগে, বৰঞ্চ ই অধিক আকৰ্ষণীয় হ'ব লাগে। শিক্ষকসকল তেওঁলোকৰ দৈনন্দিন পাঠদান কাৰ্যসূচীত ইমানেই ব্যস্ত থাকে যে যদি প্ৰশিক্ষণ পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু

দীঘলীয়া হয় তেন্তে শিক্ষকসকলে পাঠ্যক্ৰমটো ফলপ্ৰসুভাৱে সম্পূৰ্ণ কৰিব নোৱাৰে, কিন্তু কেৱল সেৱা আদেশৰ হেঁচাত তেওঁলোকে সম্পূৰ্ণ কৰিব।

• বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণৰ পাঠ্যক্ৰমসমূহ আকৰ্ষণীয় আৰু শিক্ষকসকলৰ ওপৰত কোনো ধৰণৰ হেঁচাৰ পৰা মুক্ত হ'ব লাগে। শিক্ষকসকলে বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীটো ফলপ্ৰসুভাৱে গ্ৰহণ কৰিব যেতিয়া ই আকৰ্ষণীয় হ'ব , অন্যথা তেওঁলোকে পাঠ্যক্ৰমৰ পৰা নতুন জ্ঞান আহৰণৰ তুলনাত পাঠ্যক্ৰমটো যেনেতেনে শেষ কৰিবলৈহে চেষ্টা কৰিব।

গ) অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীৰ ডিজাইন আৰু ডেলিভাৰী

• ডিজিটেল প্লেটফৰ্ম- DIKSHA-ৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচী- NISHTHA-ৰ অভিগম্যতা সম্পৰ্কে শিক্ষকসকলৰ অভিজ্ঞতা ভাল আৰু সুগঠিত আছিল।

• অনলাইন NISHTHA-ৰ পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তুসমূহৰ ডিজাইন সুসংগঠিত, আৰু বিশদভাৱে প্ৰস্তুত কৰা হৈছে আৰু ইয়াৰ বিষয়বস্তুসমূহ ৰাষ্ট্ৰীয় পৰ্যায়ৰ বিজ্ঞ সমল ব্যক্তিসকলৰ দ্বাৰা প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

• শিক্ষণ-বিজ্ঞানৰ দিশসমূহ বিবেচনা কৰি তথা শিক্ষকসকলৰ সৰ্বাংগীণ বৃত্তিমূলক বিকাশৰ সকলো দিশ বিবেচনা কৰি অনলাইন বৃত্তিমূলক প্ৰশিক্ষণ- NISHTHA পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

• অনলাইন NISHTHA পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তুসমূহ বিভিন্ন ডিজিটেল মাধ্যম যেনে ভিডিঅ', ব্যাখ্যা কৰা প্ৰতিলিপি, ডিজিটেল পাৰস্পৰিক ক্ৰিয়াশীল (interactive) কাৰ্যকলাপ আদিত উপলব্ধ যিয়ে শিকনক অধিক আকৰ্ষণীয় কৰি তোলে।

• প্ৰাথমিক পৰ্যায়ৰ শিক্ষকসকলৰ বাবে প্ৰস্তুত কৰা NISHTSHA ১.০ আৰু NISHTSHA ৩.০ কাৰ্যসূচীত একাধিক মাধ্যম ব্যৱহাৰ কৰা হৈছিল, যিয়ে শিক্ষকসকলক তেওঁলোকৰ মাতৃভাষাত পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু বুজিবলৈ সহায় কৰিছিল।

• অনলাইন NISHTHA-ৰ প্ৰতিটো পাঠ্যক্ৰমত থকা মূল্যায়নে কেৱল প্ৰশাসকসকলকেই নহয়, শিক্ষকসকলকো তেওঁলোকে পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু কিমান দূৰলৈকে শিকিব পাৰিছে তাক বুজিবলৈ সহায় কৰিছে।

ঘ) জ্ঞান আৰু দক্ষতা আহৰণ কৰা

• অনলাইন NISHTHA কাৰ্যসূচীয়ে শিক্ষকসকলৰ জ্ঞান উন্নীতকৰণৰ বাবে সহায় কৰিছে। অনলাইন-NISHTHA-ৰপাঠ্যক্ৰমৰ সমলবোৰ ইমান প্ৰাসংগিক যে নতুন জ্ঞান শিকিবলৈ তথা আহৰণ কৰিবলৈ সহায়ক হয়।

• শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ জৰিয়তে প্ৰশিক্ষণ, নিজেই অসমৰ শিক্ষকসকলৰ বাবে এক নতুন জ্ঞান। অনলাইন NISHTHA কাৰ্যসূচীত অভিগমৰ জৰিয়তে শিক্ষকসকলে ডিজিটেল ডিভাইচ আৰু ডিজিটেল প্লেটফৰ্ম প্ৰয়োগ কৰাৰ দক্ষতা বৃদ্ধি কৰিছে।

• অনলাইন- NISHTHA পাঠ্যক্ৰমটো নতুন জ্ঞান আহৰণ কৰাত সহায়ক আছিল। নতুন জ্ঞান যেনে- কলা সমন্বিত শিকন, পুতলাভিত্তিক শিকনশৈলী, শিকন-শিক্ষণত তথ্য আৰু যোগাযোগ প্ৰযুক্তিৰ ব্যৱহাৰ, শিকনৰ ফলাফলভিত্তিক শিকন-শিক্ষণ, লিংগ সংবেদনশীলতা আদি।

ঙ) কৰ্ম পৰিৱেশ আৰু নতুন জ্ঞান তথা দক্ষতাৰ প্ৰয়োগ

• অনলাইন NISHTHA কাৰ্যসূচীয়ে ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষা নীতি ২০২০ৰ প্ৰয়োজন অনুসৰি শিক্ষকসকলক আপডেট কৰাত সহায় কৰিছে, যিটোৱে শিক্ষকসকলক শিক্ষাৰ নতুন ধাৰাসমূহৰ বাবে সাজু কৰি তোলাত সহায় কৰিব।

• অনলাইন NISHTHA কাৰ্যসূচীত শিক্ষকসকলে শিকন-শিক্ষণৰ লগত কলাক কিদৰে সমন্বিত কৰিব পাৰি আৰু শিকন-শিক্ষণক এক আনন্দদায়ক কাৰ্যকলাপ হিচাপে গঢ় দিব পাৰি সেই বিষয়ে শিকিছে। পুতলাৰ সহায়ত ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক কেনেদৰে শিকাব পাৰি আৰু শিকন প্ৰক্ৰিয়াক কিদৰে আনন্দময় কাৰ্যকলাপ হিচাপে গঢ় দিব পাৰি আদিৰ দৰে নতুন জ্ঞান শিক্ষকসকলে এই বৃত্তিমূলক বিকাশ কাৰ্যসূচীৰ পাঠ্যক্ৰমৰ পৰা লাভ কৰিছে। আৰু শিক্ষকসকলে আহৰণ কৰা এই নতুন জ্ঞানসমূহ শ্ৰেণীকোঠাৰ পাঠদানত কাৰ্যকৰীভাৱে প্ৰয়োগ কৰিব পাৰিছে।

• অনলাইন NISHTHA কাৰ্যসূচীৰ অন্তৰ্গত শিকন-শিক্ষণত ব্যৱহৃত তথ্য আৰু যোগাযোগ প্ৰযুক্তি পাঠ্যক্ৰমৰ জৰিয়তে শিক্ষকসকলে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ শিকনৰ উন্নত অভিজ্ঞতাৰ বাবে শিকন-শিক্ষণত ব্যৱহৃত তথ্য আৰু

যোগাযোগ প্ৰযুক্তিৰ সঁজুলিসমূহ কেনেদৰে ব্যৱহাৰ আৰু সংহত কৰিব লাগে সেই বিষয়ে জানিব পাৰিছে।

চ) ব্যক্তিগত কৰ্মক্ষমতা আৰু উৎপাদনশীলতা

• অনলাইন NISHTHA কাৰ্যসূচীৰ পৰা উপকৃত হৈ শিক্ষকসকলে শিকন-শিক্ষণ প্ৰক্ৰিয়াত কলাক কেনেদৰে একত্ৰিত কৰি শিকন-শিক্ষণ প্ৰক্ৰিয়াক এক আনন্দদায়ক কাৰ্যসূচী হিচাপে গঢ়ি তুলিব পাৰি, লগতে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক পুতলাৰ সহায়ত শিকাই ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ বাবে শিকন প্ৰক্ৰিয়াক আমোদজনক কৰি তুলিব পাৰি এই সকলোবোৰ কাৰ্যকলাপ শ্ৰেণীকোঠাত কাৰ্যকৰী কৰিবলৈ শিক্ষকসকল সক্ষম হৈ উঠিছে। ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ শিকনৰ উন্নত অভিজ্ঞতাৰ বাবে শিক্ষকসকলে শ্ৰেণীকোঠাৰ কাৰ্যকলাপত তথ্য আৰু যোগাযোগ প্ৰযুক্তিৰ সঁজুলিসমূহ প্ৰয়োগ কৰিব পাৰিছে। লগতে, শিক্ষকসকলে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলৰ উন্নত শিকন অভিজ্ঞতাৰ বাবে তথ্য আৰু যোগাযোগ প্ৰযুক্তিৰ সঁজুলিৰ সহায়ত বিভিন্ন শিকন-শিক্ষণ সামগ্ৰী প্ৰস্তুত কৰিব পাৰিছে।

• অনলাইন NISHTHA কাৰ্যসূচীৰ যোগেদি শিক্ষকসকলে ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ অংগ সঞ্চালন দক্ষতা বিকাশ কৰিবলৈ পাঠদানৰ বিভিন্ন পদ্ধতিসমূহ বুজিব আৰু উপলব্ধি কৰিব পাৰিছে।

• বিষয়-নিৰ্দিষ্ট আৰু শিক্ষাবিজ্ঞান-নিৰ্দিষ্ট জ্ঞান আহৰণ কৰা যেনে- ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক, বিশেষকৈ প্ৰাক-প্ৰাথমিক আৰু নিম্ন শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলক কেনেকৈ শিকাব লাগে, অধিক আনন্দময় শিকনৰ বাবে শিকন-শিক্ষণ কাৰ্যসূচীত পুতলা কেনেদৰে একত্ৰিত কৰিব লাগে ইত্যাদি জ্ঞানবোৰ নিয়মীয়া শ্ৰেণীকোঠাত প্ৰয়োগ কৰি পাঠদান সম্পন্ন কৰাৰ যোগেদি শিক্ষকসকলে ব্যক্তিগত কৰ্মক্ষমতা আৰু উৎপাদনশীলতা বৃদ্ধি কৰিছে।

সামৰণি আৰু পৰামৰ্শ ঃ

• ডিজিটেল শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ জৰিয়তে প্ৰদান কৰা অনলাইন বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী- NISHTHAৰ অভিগম্যতা আৰু ব্যৱহাৰযোগ্যতাৰ প্ৰেক্ষাপটত অসমৰ কৰ্মৰত শিক্ষকসকলে অনুকূলভাৱে গ্ৰহণ কৰিছে আৰু ইয়াৰ প্ৰতি ইতিবাচক মনোভাব ব্যক্ত কৰিছে। ডিজিটেল প্লেটফৰ্ম- DIKSHA অতি সুলভ কাৰণ ই বেছিভাগ ডিজিটেল ডিভাইচতে উপলব্ধ, যেনে- মোবাইল ফোন, আৰু ব্যক্তিগত কম্পিউটিং ছিষ্টেম- ডেস্কটপ, লেপটপ, টেবলেট আদিত। DIKSHA প্লেটফৰ্মে আজীৱন শিকন-শিক্ষণক প্ৰচাৰিত কৰে আৰু পাঠদানত একাকাৰীভাৱে গণ প্ৰশিক্ষণ প্ৰদান কৰিবলৈ সক্ষম।

• অনলাইন NISHTHA পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তুসমূহ সুসংগঠিত, বিশদভাৱে প্ৰস্তুত কৰা হৈছে আৰু ইয়াক শিক্ষকসকলৰ সৰ্বাংগীণ বৃত্তিমূলক বিকাশৰ সকলো দিশ বিবেচনা কৰি বিকশিত কৰা হৈছে। অনলাইন- NISHTHA কাৰ্যসূচীৰ পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু বিভিন্ন ডিজিটেল মাধ্যম যেনে- ভিডিঅ', ব্যাখ্যা কৰা প্ৰতিলিপি, ডিজিটেল পাৰস্পৰিক ক্ৰিয়াশীল কাৰ্যকলাপ আদিত উপলব্ধ যিয়ে শিকনক অধিক আকৰ্ষণীয় কৰি তোলে।

• দৃষ্টিবদ্ধ গোট আলোচনাত অংশগ্ৰহণকাৰী শিক্ষকসকলৰ বাবে অনলাইন NISHTHA জ্ঞান উন্নীতকৰণৰ বাবে সহায়ক হৈছিল। শিকন ব্যৱস্থাপনা প্ৰণালীৰ জৰিয়তে শিকাতো নিজেই অসমৰ শিক্ষকসকলৰ বাবে নতুন জ্ঞান আৰু অভিজ্ঞতা। অনলাইন NISHTHA কাৰ্যসূচীয়ে শিক্ষকসকলৰ ডিজিটেল সাক্ষৰতা বৃদ্ধি কৰাত সহায় কৰিছে। অনলাইন NISHTHA-ৰ পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু শিকিবলৈ আৰু নতুন জ্ঞান আহৰণ কৰিবলৈ প্ৰাসংগিক আৰু সহায়ক বুলি শিক্ষকসকলে মন্তব্য প্ৰদান কৰিছিল। যিসকল শিক্ষকে এই নতুন জ্ঞান শ্ৰেণীকোঠাৰ পাঠদানত প্ৰয়োগ কৰিছে, ইয়াৰ জৰিয়তে তেওঁলোকৰ ব্যক্তিগত কৰ্মক্ষমতা আৰু উৎপাদনশীলতাৰ যথেষ্ট উন্নতি সাধন কৰিছে বুলি অভিমত ব্যক্ত কৰিছে।

• সকলো ভালৰ মাজতো শিক্ষকসকলে অনলাইন NISHTHA কাৰ্যসূচীত কেইটামান প্ৰত্যাহ্বানৰ সন্মুখীন হৈছে যেনে- জ্যেষ্ঠ শিক্ষকসকলে অনলাইন বৃত্তিমূলক কাৰ্যসূচীত কিছু প্ৰতিৰোধৰ সন্মুখীন হৈছিল, কাৰণ তেওঁলোকৰ বাবে এই অনলাইন ব্যৱস্থাটো সম্পূৰ্ণ নতুন আছিল, কিন্তু পিছলৈ অনুশীলনৰ যোগেদি শিক্ষকসকলৰ আত্মবিশ্বাস আৰু দক্ষতা গঢ় লৈ উঠে। অনলাইন মোডৰ জৰিয়তে শিকনৰ ক্ষেত্ৰত ৰাজ্যখনৰ কিছুমান অভ্যন্তৰীণ অংশ বা দুৰ্গম অঞ্চলত দুৰ্বল ইন্টাৰনেট সংযোগ সেৱাই বাধাৰ সৃষ্টি কৰিছে। ৰাজ্যৰ নৈপৰীয়া অঞ্চল, পাহাৰীয়া অঞ্চল আদিৰ দৰে দূৰৱৰ্তী অঞ্চলসমূহত ইন্টাৰনেট সংযোগ দুৰ্বল আৰু তাৰ বাবে শিক্ষকসকলে অনলাইন মোডৰ জৰিয়তে শিকনত বাধা পাইছে।

• ডিজিটেল প্লেটফৰ্ম- DIKSHA ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্ৰত

শিক্ষকসকলে কিছু কাৰিকৰী বাধাৰ সন্মুখীন হৈছিল, যেনে- ডিজিটেল প্লেটফৰ্মত লগ ইন কৰাৰ সময়ত বাধা, ডিজিটেল ডিভাইচৰ সৈতে ছফ্টৱেৰৰ সামঞ্জস্যতা, দুৰ্বল ইন্টাৰনেট সংযোগৰ বাবে ভিডিঅ' সমল নবজা, প্ৰমাণপত্ৰ ডাউনলোড কৰাৰ সমস্যা। এই কাৰিকৰী সমস্যাবোৰ মাত্ৰ ডিজিটেল প্লেটফৰ্মৰ বাবেই যে হয় তেনেকোৱা নহয়, কেতিয়াবা শিক্ষকসকলে ব্যৱহাৰ কৰা ডিজিটেল ডিভাইচ আৰু সেই ডিজিটেল ডিভাইচৰ সামঞ্জস্যতাৰ বাবেও সৃষ্টি হয়।

- অংশগ্ৰহণকাৰী শিক্ষকসকলে প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী নিজৰ মাতৃভাষাত শিকিবলৈ অধিক সুবিধাবোধ কৰে। অধিক ফলপ্ৰসূ শিকনৰ বাবে পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তুসমূহ স্থানীয় বিকশিত কৰিব লাগে। যদি পাঠ্যক্ৰমবোৰ অসমীয়া, বড়ো, বাংলা আদি অন্য স্থানীয় মাধ্যমতো বিকশিত কৰা হয় তেন্তে ইয়ে হয়তো শিক্ষকসকলক অধিক সহজে শিকিবলৈ সহায় কৰিব।

- ডিজিটেল প্লেটফৰ্মত গোটৰ কাৰ্যকলাপ কৰিব পৰাকৈ সুবিধা থাকিব লাগে আৰু লগতে ডিজিটেল প্লেটফৰ্মত আলোচনাৰ মঞ্চৰ দৰে যোগাযোগমূলক আৰু সহযোগিতামূলক সঁজুলি থাকিব লাগে।

- অনলাইন বৃত্তিমূলক প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচীত পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু দীঘলীয়া হ'ব নালাগে বৰঞ্চ ই আকৰ্ষণীয় হ'ব লাগে। শিক্ষকসকল তেওঁলোকৰ দৈনন্দিন পাঠদান কাৰ্যত ইমানেই ব্যস্ত যে যদি পাঠ্যক্ৰমৰ বিষয়বস্তু বেছি দীঘলীয়া হয় তেন্তে শিক্ষকসকলে পাঠ্যক্ৰমটো ফলপ্ৰসূভাৱে সম্পূৰ্ণ কৰিব নোৱাৰি কেৱল সেৱা আদেশৰ হেঁচাতহে সম্পূৰ্ণ কৰিব।

বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণৰ পাঠ্যক্ৰমসমূহ আকৰ্ষণীয় আৰু শিক্ষকসকলৰ ওপৰত কোনো ধৰণৰ হেঁচাৰ পৰা মুক্ত হ'ব লাগে। শিক্ষকসকলে বৃত্তিমূলক বিকাশ প্ৰশিক্ষণ কাৰ্যসূচী ফলপ্ৰসূভাৱে গ্ৰহণ কৰিব যেতিয়া ই আকৰ্ষণীয় হ'ব, অন্যথা তেওঁলোকে পাঠ্যক্ৰমৰ পৰা নতুন জ্ঞান শিকাৰ তুলনাত পাঠ্যক্ৰমটো সোনকালে শেষ কৰিবলৈহে চেষ্টা কৰিব। ❑

তথ্যসূত্ৰ ঃ

Agravat, M. R. (2017). *An investigation of continuous professional development of teachers of English at college level in Gujarat* (Doctoral thesis). AMET University. Chennai. Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/314885

Bartleton, L. (2018). A Case study of teachers' perceptions of the impact of continuing professional development on their professional practice in a further education college in the West Midlands. *Educational futures.* 1758-2199. Retrieved from http://hdl.handle.net/2436/621633

Bhardwaj, A. (2019). *"Employee Training and Development Through E-Learning" (A Study Of Some Selected Units In Power Sector)* (Doctoral thesis). University of Kota, Kota (Raj). Retrieved from https://www.uok.ac.in/notifications/Amrita,20Bhardwaj,20Business,20Administration.pdf

Bordia, M. (2019). *Measuring the effectiveness of in-service teacher training a comparative study of government and private elementary school teachers* (Doctoral thesis). IIS (Deemed to be University). Jaipur. Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/287406

Chen, E. T. (2008) "Successful E-learning in corporations". *Communications of the IIMA*, 8(2), 45-II. Retrieved from https://scholarworks.lib.csusb.edu/cgi/viewcontent.cgi?referer=https://www.google.com/&httpsredir=1&article=1080&context=ciima

Goswami, A. (2015). *Effectiveness of Teachers Training programme at the Elementary Schools Stage in Assam* (Doctoral thesis). Rajiv Gandhi University. Itanagar. Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/212375

Ilyas, M., Kadir, K. A. and Adnan, Z., (2017). Training and Development in Organizations: Strategic Innovations and Applications. *International Business Management*, 11: 370-374, DOI: 10.36478/ibm.2017.370.374. Retrieved from https://medwelljournals.com/abstract/?doi=ibm.2017.370.374

Jamal, H., & Shanaah, A. (2012). *The Role of Learning Management Systems in Educational Environments: An Exploratory Case Study* (Master thesis). Linnaeus University. Sweden. Retrieved from http://lnu.diva-portal.org/smash/get/diva2:435519/FULLTEXT01.pdf

Kaur, R. (2016). *Effectiveness of in-service teacher training programmes at elementary stage in Punjab an evaluative study* (Doctoral thesis). Punjabi University. Patiala. Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/251165

Mizell, H. (2010). *Why professional development matters.* United States of America. ISBN 978-0-9800393-9-9. Retrieved from https://learningforward.org/wp-content/uploads/2017/08/professional-development-matters.pdf

National Education Policy (2020), Ministry of Human Resource Department, Govt. of India. Retrieved from https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

NISHTHA : National Initiative for School Heads' and Teachers' Holistic Advancement. (n.d.). NISHTHA. http://nishtha.ncert.gov.in/

Padwad, A., and Dixit, K. (2011). *Continuing Professional Development- An Annotated Bibliography.* London: British Council. Retrieved from https://www.teachingenglish.org.uk/sites/teacheng/files/CPDbiblio.pdf

Tassi, A. (2016). *Electronic Learning Management System Integration Impact on Tertiary Care Hospital Learners' Educational Performance* (Doctoral thesis). Walden University. Walden. Retrieved from https://scholarworks.waldenu.edu/cgi/viewcontent.cgi?article=3797&context=dissertations

Thiruselvi, P. (2015). *Usability and Accessibility Features of Learning Management System and its Relation to Learning Styles* (Doctoral thesis). Bharathiar University. Tamilnadu. Retrieved from http://hdl.handle.net/10603/233205

কুল শইকীয়াৰ গল্প ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন

প্ৰণিতা কাকতি

ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ
ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়
গাঁও ঃ পুব ঘগ্ৰা নলবাৰী
ডাক ঃ ঘগ্ৰাবস্তি, গহপুৰ,
থানা ঃ গহপুৰ, জিলা ঃ বিশ্বনাথ,
পিন ঃ ৭৮৪১৬৮
ম'বাইল ঃ ৮৮২২০৪৯৮০৫

হিৰণ্য কুমাৰ বৰা

গৱেষক
অসম বিশ্ববিদ্যালয়, ডিফু চৌহদ
গাঁও ঃ পুব ঘগ্ৰা নলবাৰী
ডাক ঃ ঘগ্ৰাবস্তি, গহপুৰ,
থানা ঃ গহপুৰ, জিলা ঃ বিশ্বনাথ,
পিন ঃ ৭৮৪১৬৮
ম'বাইল ঃ ৮৬৩৮২১০৩৯৩

সংক্ষিপ্তসাৰ ঃ

অসমীয়া সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনত নাটক, গল্প, উপন্যাস, কবিতা, সাহিত্য-সমালোচনা আদি বিষয়সমূহৰ উপৰি অন্য এক প্ৰণিধানযোগ্য বিষয় হ'ল 'অসমীয়া চুটিগল্প'। জোনাকী আলোচনীৰ চতুৰ্থ বছৰৰ চতুৰ্থ সংখ্যাত প্ৰকাশিত 'সেউতি' শীৰ্ষক গল্পটোৰ মাধ্যমেৰে বেজবৰুৱাৰ হাতত প্ৰাণ পাই উঠা অসমীয়া চুটিগল্পই আৱাহন, ৰামধেনু আদি আলোচনীৰ পাতত বিকাশ লাভ কৰি সাম্প্ৰতিক সময়ৰ প্ৰান্তিক, গৰিয়সী আদি আলোচনীৰ মাজেৰে বৰ্তমানৰ সমৃদ্ধ অৱস্থা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। অসমীয়া চুটিগল্পৰ এই আলোচনীকেন্দ্ৰীক যাত্ৰাত লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা, দণ্ডিনাথ কলিতা, নগেন্দ্ৰ নাৰায়ন চৌধুৰী, শৰৎ চন্দ্ৰ গোস্বামী, ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়া, সৌৰভ কুমাৰ চলিহা আদিকে ধৰি যিসকল নবীন-প্ৰবীন গল্পকাৰে অসমীয়া চুটিগল্পৰ ক্ষেত্ৰখনলৈ অৱদান আগবঢ়াইছে, তেওঁলোকৰ ভিতৰত সাম্প্ৰতিক সময়ত গল্প চৰ্চা কৰি থকা এগৰাকী গল্পকাৰ হ'ল - 'কুল শইকীয়া'। আমাৰ এই আলোচনাৰ মাধ্যমেৰে গল্পকাৰ কুল শইকীয়াৰ গল্পত প্ৰকাশিত বিভিন্ন দিশ যেনে - কুল শইকীয়াৰ গল্পৰ ৰচনা শৈলী, তেওঁৰ গল্পৰ মনস্তাত্বিক দৃষ্টিকোণ, কুল শইকীয়াৰ গল্পৰ তাত্বিক সম্পৰীক্ষা আদি দিশসমূহৰ বিষয়ে অধ্যয়নৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

(**বীজ শব্দ** ঃ কুল শইকীয়া, চুটি গল্প, তাত্বিক সম্পৰীক্ষা, চেতনা শ্ৰোত, নিসংগতাবোধ)

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

সাম্প্ৰতিক সময়ত সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনত পাঠক সমাজৰ সমাদৰ লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হোৱা এক শ্ৰেণীৰ সাহিত্য হ'ল চুটিগল্প। ব্যস্ততাপূৰ্ণ জীৱন প্ৰণালীৰ মাজত ক্ষন্তেক সময়ৰ ভিতৰতে অনুৰাগীসকলক সাহিত্যৰ অমিয়া প্ৰদান কৰিবলৈ সক্ষম হোৱাৰ বাবেই হয়তো চুটিগল্পই পাঠক সমাজত এনে সমাদৰ লাভ কৰিছে।

বৰ্তমান অসমীয়া চুটিগল্পৰ ক্ষেত্ৰখনত গল্প চৰ্চাৰ মাধ্যমেৰে এক সুকীয়া পৰিচয় লাভ কৰা গল্পকাৰসকলৰ ভিতৰত অন্যতম হ'ল কুল শইকীয়া। অসম আৰক্ষীৰ সঞ্চালক প্ৰধান হিচাপে অৱসৰ গ্ৰহণ কৰা তথা বৰ্তমান অসম সাহিত্য সভাৰ সভাপতি হিচাপে দায়িত্বভাৰ গ্ৰহণ কৰা কুলধৰ শইকীয়াই তেখেতৰ ব্যস্ততাপূৰ্ণ কৰ্মজীৱনৰ মাজতো নিৰলসভাৱে গল্পচৰ্চা কৰি প্ৰসিদ্ধি লাভ কৰিবলৈ

সক্ষম হৈছে। বৰ্তমানলৈকে তেওঁৰ প্ৰায় ১২ খন চুটিগল্প সংকলন প্ৰকাশ হৈছে।[১] এই গল্পসংকলনসমূৰ ভিতৰত তেখতৰ “**আখৰাত মই আৰু অন্যান্য**” শীৰ্ষক গল্প সংকলনৰ বাবে ১৯৯৮ চনত মুনিন বৰকটকী বঁটা আৰু ‘**আকাশৰ ছবি আৰু অন্যান্য**’ শীৰ্ষক গল্প সংকলনৰ বাবে ২০১৫ চনত সাহিত্য অকাডেমি বঁটা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হয়।[২] তদুপৰি তেখেতৰ সাহিত্য কৰ্মৰ বাবে ২০০০ চনত তেওঁক ‘কথা’ বঁটাৰেও সন্মানীত কৰা হয়।[৩]

গল্প ৰচনাৰ একক শৈলী আৰু শব্দ প্ৰয়োগৰ চাতুৰ্যতাৰে জনপ্ৰিয়তা অৰ্জন কৰিবলৈ সক্ষম হোৱা কুল শইকীয়াৰ গল্পসমূহত সততে পৰিলক্ষিত হোৱা কেতবোৰ দিশ হ’ল - চেতনাশ্ৰোত ৰীতিৰ প্ৰয়োগ, আধুনিক মানুহৰ জতিল মনস্তত্বৰ প্ৰতিফলন, নিসংগতাবোধৰ ছবি, প্ৰতীকধৰ্মীতা, জটিল সাহিত্যিক তত্বৰ সম্পৰীক্ষামূলক প্ৰয়োগ ইত্যাদি।

আমাৰ এই আলোচনাপত্ৰখনৰ জৰিয়তে গল্পকাৰ কুল শইকীয়াৰ গল্পত প্ৰকাশিত এনেসমূহ দিশক মুখ্য কৰি তেওঁৰ গল্পৰ এক সামগ্ৰীক অৱলোকনৰ প্ৰয়াস কৰা হ’ব।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব ঃ

অসমীয়া গল্পৰ ক্ষেত্ৰখনত গল্পকাৰ হিচাপে প্ৰতিস্থা লাভ কৰা কুল শইকীয়াৰ গল্পসমূহত প্ৰকাশিত বিভিন্ন দিশ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰাই আমাৰ এই আলোচনা পত্ৰখনৰ মুল উদ্দেশ্য।

সাম্প্ৰতিক সময়ৰ গল্পকাৰ হিচাপে কুল শইকীয়াৰ গল্পসমূহত প্ৰকাশিত নতুন দৃষ্টিভঙ্গীসমূহে অসমীয়া গল্পক সমৃদ্ধ কৰাৰ লগতে গল্পৰ ক্ষেত্ৰখনত এক অগতানুগতিক শৈলীৰ সৃষ্টি কৰিছে, যাৰ আলোচনা অবিহনে অসমীয়া চুটিগল্পৰ অধ্যয়ন অসম্পূৰ্ণ হৈ ৰ’ব। সেই দৃষ্টিকোণৰ পৰা কুল শইকীয়াৰ গল্প সম্পৰ্কে কৰা আমাৰ এই অধ্যয়ণৰ যথেষ্ঠ গুৰুত্ব আছে।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ ঃ

অসমীয়া সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰখনত নিৰলস ভাবে গল্প চৰ্চা কৰি অহা কুল শইকীয়াৰ বৰ্তমানলৈকে প্ৰায় ১২ খন চুটিগল্প সংকলন প্ৰকাশ হৈছে। এই প্ৰকাশিত সংকলন সমূহৰ উপৰি প্ৰান্তিক গৰিয়সী আদি বিভিন্ন আলোচনীৰ পাতত নিয়মিত ভাৱে তেওঁৰ গল্প প্ৰকাশিত হৈ আহিছে। গতিকে স্বাভাৱিকতেই তেওঁৰ গল্পৰ পৰিসৰ যথেষ্ট

ব্যাপক। এনে ব্যাপক পৰিসৰ যিহেতু আমাৰ এই আলোচনা পত্ৰৰ মাজত সামৰি লোৱা অসম্ভৱ,গতিকে বিভিন্ন গল্প সংকলনত প্ৰকাশিত তেওঁৰ কেইটামান নিৰ্দিষ্ট গল্প - ‘হোষ্টেলৰ ৰঙা গোলাপ’, ‘শব্দভূত’, পৰীক্ষা, প্ৰায় মানুহ, সৰা দাঁত, প্ৰাতঃ ভ্ৰমন, প্ৰলয় প্ৰলাপ, ফোট, মম জ্বলিছে গলিছে, ছাতি, ১ + ১ = ২, গিফট আৰু পিয়ানো বাজিছে, এই গল্পকেইটাহে আমাৰ অধ্যয়নৰ পৰিসৰৰ অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে।

০.০৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

“কুল শইকীয়াৰ গল্প ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন” শীৰ্ষক আলোচনা পত্ৰখনিত গল্পকাৰ কুল শইকীয়াৰ গল্প সম্পৰ্কে আলোচনা কৰোঁতে অধ্যয়নৰ পদ্ধতি হিচাপে মূলতঃ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে আৰু প্ৰয়োজন সাপেক্ষে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। তথ্য আহৰণৰ উৎস হিচাপে ‘কুল শইকীয়াৰ নিৰ্বাচিত গল্প’ শীৰ্ষক কিতাপখনৰ লগতে তেখেতৰ গল্পৰ আলোচনা সম্বলিত বিভিন্ন কাকত- আলোচনী তথা ইণ্টাৰনেটৰ সহায় লোৱা হৈছে।

১.০০ মূল বিষয়ৰ আলোচনা ঃ

আধুনিক অসমীয়া গদ্য সাহিত্যৰ অন্যতম শাখা হ'ল-চুটিগল্প। জোনাকীৰ পাতত জন্ম লাভ কৰা চুটিগল্পই পৰীৱৰ্তীত সময়ৰ লগে লগে নিজকে সলনি কৰি বৰ্তমান এনে এক ৰূপ পৰিগ্ৰহ কৰিছে যে ইয়াক বাদ দি সমসাময়িক অসমীয়া সাহিত্যৰ গতি-প্ৰকৃতি মূল্যায়ন কৰা অসম্ভৱ। অসমীয়া সাহিত্যৰ এক অবিচ্ছেদ্য অংগ হৈ পৰা অসমীয়া চুটিগল্পৰ ক্ষেত্ৰখনলৈ কুল শইকীয়াৰ অৱদান অনস্বীকাৰ্য। পৰম্পৰাগত কাহিনি সংঘটন আৰু তাৰ অনিবাৰ্য পৰিণতিৰ পৰা আঁতৰি আহি সম্পূৰ্ণ নতুন চিন্তাৰে নিজৰ গল্পসমূহ উপস্থাপন কৰাৰ দিশৰ পৰা অন্যান্য গল্পকাৰৰ তুলনাত কুল শইকীয়াৰ গল্পসমূহৰ প্ৰকাশ ৰীতি যথেষ্ট পৃথক। কুল শইকীয়াৰ গল্পসমূহলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে,তেওঁৰ গল্পত সময় আৰু স্থানৰ ধাৰণাটো এক আপেক্ষিক ধাৰণা মাত্ৰ। তদুপৰি তেওঁৰ প্ৰায়সমূহ গল্পই পাঠকৰ মনোজগতখনক এখন নিজস্ব পৃথিৱী প্ৰদান কৰা বিধৰ গল্প, যাৰ বাবে প্ৰায়ে তেওঁৰ গল্পৰ মাজত পাঠকে নিজকে বিচাৰি পাবলৈ সক্ষম হয়। কুল শইকীয়াৰ গল্পৰ আৰম্ভনি আৰু সামৰণিৰ দিশটোও বিশেষ ভাবে মন কৰিবলগীয়া। মূলতঃ আধুনিক মানুহৰ জটিল মনস্তত্বক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত হোৱাৰ বাবে গল্পসমূহৰ আৰম্ভনি আৰু সামৰণিৰ এক নিৰ্দিষ্ট আভাস পোৱা নাযায়। সাধাৰণতে মানুহৰ মনত কোনো ভাবে জন্ম লাভ কৰি সৰল ৰৈখিক ভাবে গতি কৰিব নোৱাৰে। এই ভাববোৰৰ ক্ষন্তেকতে যতি পৰি এক নতুন ভাবৰ জন্ম হয় আৰু এনেদৰেই অহৰহ সৃষ্টি হোৱা চিন্তাৰ তৰংগই মানুহৰ মনোজগতখনক অস্থিৰ কৰি তোলে। কুল শইকীয়াৰ গল্পসমূহত চিত্ৰিত ঘটনাপ্ৰৱাহৰ মাজতো এনে এক অস্থিৰতা দেখা যায়, যাৰ বাবে তেওঁৰ গল্পসমূহৰ আৰম্ভণি আৰু সামৰণি একৰৈখিক নহৈ এক বক্ৰৰৈখিক গতিৰে আগবঢ়া পৰিলক্ষিত হয়।

অতি সাম্প্ৰতিক কালৰ গল্পকাৰ হিচাপে কুল শইকীয়াৰ গল্পৰ অধ্যয়ন এক প্ৰয়োজনীয় বিষয়। বিংশ শতিকাৰ শেষৰ দশকৰ পৰা গল্প চৰ্চা কৰা এই গল্পকাৰগৰাকীৰ গল্পৰ পৰিধি যথেষ্ট বিশাল। এই বিশাল সৃষ্টিৰাজিৰ মাজত তেওঁৰ গল্পত পৰিলক্ষিত কেইটামান গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ সম্পৰ্কে এনেদৰে আলোচনা কৰিব পাৰি-

১.০১ কুল শইকিয়াৰ গল্পত প্ৰতিফলিত চেতনাশ্ৰোত ৰীতি ঃ

সমকালীন অসমীয়া সাহিত্যত বহুল ভাবে ব্যৱহৃত হোৱা এক সাহিত্য শৈলী হ'ল-চেতনাশ্ৰোত ৰীতি। চেতনাশ্ৰোতৰ ৰীতিটো যদিও মূলতঃ পাশ্চাত্য সাহিত্যৰ পৰা অসমীয়া সাহিত্যলৈ প্ৰৱাহিত হৈছে, কিন্তু অসমীয়া সাহিত্যটো প্ৰফুল্ল দত্ত গোস্বামী, দেবেন্দ্ৰনাথ আচাৰ্য, সৌৰভ কুমাৰ চলিহা, অপূৰ্ব কুমাৰ শৰ্মা আদি বহুসংখ্যক সাহিত্যিকৰ লেখনীৰ মাজেৰে এই ৰীতি অসমীয়া সাহিত্যৰ এক অংগ হৈ পৰিছে। চেতনাশ্ৰোতৰ ধাৰণা অনুসৰি যিদৰে এখন নদীৰ সোঁত চিৰ প্ৰৱাহমান, একেদৰেই মানুহৰ চিন্তাৰ সোঁতো বোঁৱতিসুঁতিৰ দৰেই প্ৰৱাহমান। কোনো এক নিৰ্দিষ্ট চিন্তাই মানুহৰ চেতনাত অধিক সময় স্থায়ীভাৱে থাকিব নোৱাৰে। সেয়েহে এই ধাৰণাৰ ভিত্তিত প্ৰতিস্থিত সাহিত্যত প্ৰকাশিত চিন্তাৰ প্ৰৱাহো অস্থিৰ আৰু বাস্তৱৰ সৈতে সংগতিবিহীন হোৱা দেখা যায়। গল্পকাৰ কুল শইকীয়াৰ গল্পসমূহতো এই ৰীতিৰ বহুল প্ৰয়োগ পৰিলক্ষিত হয়। এই ক্ষেত্ৰত তেওঁৰ 'ফোট' আৰু 'প্ৰলয়-প্ৰলাপ' গল্প দুটাৰ প্ৰসংগ উল্লেখযোগ্য।

ফোঁট গল্পটোত বৰ্ণিত কাহিনীটোৰ গতিশীলতাৰ ক্ষেত্ৰত গল্পটোৰ কথক চৰিত্ৰটোৰ মনত সৃষ্টি হোৱা বিভিন্ন ভাবৰ যি তীব্ৰ পৰিৱৰ্তন, এই পৰিবৰ্তনে মূলতঃ চেতনা শ্ৰোত ৰীতিৰে আভাস প্ৰদান কৰে। গল্পটোৰ কাহিনীভাগলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে - জীৱন-জীৱিকাৰ সন্ধানত বিদেশলৈ আহি প্ৰথম বাৰলৈ এটা বিলাস-বহুল জীৱন কোঠাত জিৰণি লোৱা কথক চৰিত্ৰটোৰ মানসপটত একে সময়তে নিৰৱচ্ছিন্ন ভাৱে নিজৰ ভৱিষ্যত, অন্তৰংগ বন্ধু প্ৰদীপৰ জীৱন, প্ৰদীপৰ লগত হোৱা কথোপকথনৰ খণ্ড চিত্ৰ আদি ভাঁহি আহি তেওঁক এখন বেলেগ পৃথিৱীলৈ লৈ গৈছে, আৰু পুনৰ কিছু সময়ৰ পাচতে হঠাৎ দেহৰ ক্লান্তিয়ে তেওঁক পুনৰ বাস্তৱৰ পৃথিৱীখনলৈ ওভতাই আনিছে। পুনৰ পূৰ্বৰ দৰেই এটা সামান্য ফোঁটে তেওঁৰ চিন্তাধাৰাক দূৰৈৰ অতীতত এৰি অহা তেওঁৰ প্ৰেমীকা সুনীতিৰ ওচৰলৈ বোৱাই নি সমগ্ৰ চিন্তাধাৰা সুনীতি কেন্দ্ৰীক কৰি তুলিছে। এনেদৰে গল্পটোৰ মূল চৰিত্ৰটোৰ ভাব আৰু চিন্তাধাৰাৰ যি সামঞ্জস্যহীন পৰিৱৰ্তন, এনে পৰিৱৰ্তনে মানুহৰ মনোজগতত বিৰামহীন ভাৱে চলি থকা চিন্তাৰ বাধাহীন নদীখনকে প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। সেয়ে এগৰাকী বাস্তৱবাদী গল্পকাৰ হিচাপে কুল শইকীয়াৰ গল্পৰ কথনশৈলীত চেতনাশ্ৰোতৰ প্ৰয়োগ দেখা যায়।

শইকীয়াৰ আন এটা গল্প 'প্ৰলয়-প্ৰলাপ' ৰ কাহিনীৰ মাজতো একেদৰেই প্ৰমোদ, নৃপেন, ৰশ্মি আদি চৰিত্ৰসমূহে পৃথিৱী ধ্বংস হোৱাৰ আগমুহূৰ্তত এটা কোঠাৰ মাজত শেষবাৰৰ বাবে ঐক্যবদ্ধ হৈ বিভিন্ন বিষয় আলোচনা কৰিছে যদিও প্ৰায় একে সময়তে সিহঁতে নিজৰ মনোজগতখনৰ মাজতো বিচৰণ কৰি আছে, যাৰ ফলত সিহঁতৰ চিন্তাৰ সোঁত বাৰে বাৰে বিক্ষিপ্ত হৈ অন্য দিশলৈ গতি কৰিছে। এনে বিক্ষিপ্ত চিন্তাৰ ফলতে গল্পটোৰ শেষ লৈ নৃপেনে ভাবি পেলাইছে যে তাৰ পত্নী ৰশ্মিয়ে পৃথিৱী ধ্বংসৰ আগ মুহূৰ্তত শেষ বাৰৰ বাবে কথা পাতিবলৈহে প্ৰমোদক ঘৰলৈ মাতি আনিছে। নৃপেনৰ এনে চিন্তাৰ অন্তৰালত নিহিত হৈ আছে সিহঁতৰ কলেজীয়া দিনৰে এটা স্মৃতি, য'ত কলেজৰ শেষৰ দিনাখন ৰশ্মিৰ অ'টোগ্ৰাফৰ শেষ পৃষ্ঠাত সহপাঠী প্ৰমোদে লিখিছিল - "পৃথিৱী ধ্বংসৰ দিনাখন কমচে কম মনত পেলাবা।" নৃপেনৰ অৱচেতন মনত সঞ্চিত হৈ থকা এই স্মৃতিয়ে বহু বছৰৰ পাচত হঠাৎ তাৰ মনত ক্ৰিয়া কৰিছে, যাৰ ফলত সি নিজৰ পত্নীকে সন্দেহৰ দৃষ্টিৰে চাইছে। এনেদৰে গল্পৰ চৰিত্ৰসমূহে হঠাতে আত্মবিস্মৃত হৈ বাস্তৱ জগতৰ পৰা ফালৰি কাটি বিশৃংখল চিন্তাৰ মাজত আঁত হেৰুৱাই পেলোৱাৰ ধাৰণাই গল্পটো চেতনাশ্ৰোত ধৰ্মী গল্পৰ শাৰীলৈ উন্নিত কৰিছে। উল্লেখ্য যে কেৱল ফোঁট বা প্ৰলয় প্ৰলাপেই নহয়, কুল শইকীয়াৰ আন বহু সংখ্যক গল্পৰ মাজতো চেতনাশ্ৰোত ৰীতিৰ প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়, যাৰ ফলত ই কুল শইকীয়াৰ গল্পৰ এক বৈশিষ্ট্যলৈ পৰিণত হৈছে।

১.০২ কুল শইকীয়াৰ গল্পত নিসংগতাবোধ ঃ

আধুনিক জীৱন যাত্ৰাত অভ্যস্ত মানুহৰ এক প্ৰধান সমস্যা হ'ল নিসংগতাবোধ। নিসংগতাবোধ হ'ল এক মানসিক পৰিস্থিতি, য'ত এজন মানুহে তেওঁৰ চৌপাশে থকা হাজাৰজন মানুহৰ মাজতো নিজকে অকলশৰীয়া অনুভৱ কৰে। যেতিয়া এগৰাকী ব্যক্তি শাৰিৰীক নাইবা মানসিক ভাবে সমাজৰ পৰা বিছিন্ন হয়, তেতিয়াই নিসংগতাবোধে ক্ৰমাগত ভাবে তেওঁক ভাৰাক্ৰান্ত কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰে। বিশেষতঃ বৰ্তমানৰ আধুনিক সমাজৰ ব্যস্ততাপূৰ্ণ জীৱন-প্ৰণালীৰ মাজত আৱদ্ধ হৈ নিজৰ পৰিয়াল-পৰিজনৰ মাজতে হেৰাই যাবলৈ ধৰা আধুনিক মানুহৰ মাজত এই নিসংগতাবোধে এক গভীৰ সমস্যা ৰূপে দেখা দিছে। সেয়েহে এগৰাকী সমাজ-সচেতন গল্পকাৰ হিচাপে কুল শইকীয়াৰ গল্পত আধুনিক মানুহৰ নিসংগতাবোধৰ সমস্যাৰ প্ৰতিফলন পৰিলক্ষিত হয়। তাৰ উৎকৃষ্ট উদাহৰণ স্বৰূপে তেওঁৰ 'পিয়ানো বাজিছে' আৰু 'ছাটি' শীৰ্ষক গল্প দুটা উল্লেখযোগ্য।

'পিয়ানো বাজিছে' গল্পটোত গল্পটোৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ শাৰদা দেৱীৰ নিসংগতাবোধৰ ছবিখন অতি মৰ্মস্পৰ্শী ৰূপত উপস্থাপিত হৈছে। নিজৰ কৰ্মব্যস্ত পুত্ৰ-বোৱাৰীৰে সৈতে একেটা ঘৰতে বসবাস কৰিও ক্ৰমশঃ একাকীত্বৰ মাজত সোমাই পৰা বৃদ্ধা শাৰদা দেৱীয়ে সেয়েহে মাজৰাতি সাৰ পাই উঠি তেওঁৰ বন্ধ কোঠাৰ মাজত কাৰোবাৰ উপস্থিতিৰ কল্পনা কৰি তেওঁক সৈতে যুঁজ কৰিছে, তেওঁক শুশ্ৰূষা কৰিছে আৰু অৱশেষত পুত্ৰ-বোৱাৰী আহি উপস্থিত হোৱা ৰ পূৰ্বেই সেই কাল্পনিক ব্যক্তিগৰাকীক বিদায় দিয়াৰ পৰিকল্পনাৰে দুৱাৰ খুলি দিছে। প্ৰকৃতাৰ্থত কিমান নিসংগ হ'লে এগৰাকী ব্যক্তিয়ে নিজৰ মানসপটত কোনো কাল্পনিক চৰিত্ৰ অংকন কৰি তেওঁৰ সৈতে সুখ-দুখৰ আদান-প্ৰদান কৰিবলৈ বাধ্য হয়, সেই কথা কেৱল ভূক্তভোগীয়েহে অনুভৱ কৰিব পাৰে। 'পিয়ানো বাজিছে' গল্পটোতো নিসংগতাৰ চিকাৰ হৈ শাৰদা দেৱীয়ে নিজৰ মনোজগতত এক কাল্পনিক চৰিত্ৰ নিৰ্মাণ কৰি তেওঁৰ নিসংগতা দূৰ কৰাৰ এক বৃথা চেষ্টা পৰিলক্ষিত হৈছে।

'ছাটি' গল্পটোতো ঠিক একেদৰেই গল্পৰ নামহীন কথক চৰিত্ৰটোৱে আনৰ দৃষ্টিত স্বাভাৱিক জীৱন-যাপন কৰিও প্ৰিয়জনক হেৰুৱাই নিজৰ মনোজগতত এনেভাবে অকলশৰীয়া হৈ পৰিছে যে, জীৱনৰ একমাত্ৰ সংগী ৰূপে তেওঁ নিজৰ ছাটিটোকে গ্ৰহণ কৰিছে। বাহ্যিক দৃষ্টিত এটা ছাটি আৰু এগৰাকী মানুহৰ সম্পৰ্ক অস্বাভাৱিক যদিও প্ৰকৃতাৰ্থত গল্পটোত ছাটিতো এক প্ৰতীকৰ ৰূপতহে ব্যৱহৃত হৈছে। গল্পটোত উল্লিখিত ছাটিতো বাস্তৱত কথক চৰিত্ৰটোৰ দূৰ অতীতৰ কোনো এক মনোৰম স্মৃতিৰ প্ৰতীক, যাক অৱলম্বন কৰিয়েই কথকজনে নিসংগতাৰ সৈতে অহৰহ চলি থকা যুঁজখনত নিজক স্থিতপ্ৰজ্ঞ কৰি ৰখাৰ প্ৰয়াস কৰিছে।

এনেদৰেই গল্পকাৰ কুল শইকীয়াৰ গল্পৰ মাজত চেতনাশ্ৰোত ৰীতিৰ লগতে আধুনিক মানুহৰ নিসংগতাবোধ চিত্ৰৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে।

১.০৩ কুল শইকীয়াৰ গল্পত প্ৰতিফলিত মনস্তাত্ত্বিক দিশ ঃ অতি-সাম্প্ৰতিক সময়ৰ গল্পকাৰ হিচাপে কুল শইকীয়াৰ গল্পত প্ৰতিফলিত আন এটা দিশ হ'ল - আধুনিক

মানুহৰ জটিল মনস্তাত্ত্বিক দিশৰ উপস্থাপন। তেখেতৰ প্ৰায়সমূহ গল্পই মূলতঃ মানসিক পৰ্যায়ৰ গল্প, যাৰ প্ৰকৃত স্বৰূপ উদ্‌ঘাটন কৰিবলৈ পাঠকসকলৰো মানসিক কচৰৎ নিতান্তই আৱশ্যকীয়। তদুপৰি তেখেতৰ গল্পসমূহত উপস্থাপিত চৰিত্ৰসমূহৰ চিত্ৰণৰ ক্ষেত্ৰতো চৰিত্ৰসমূহৰ মানসিক জগতখনত চলি থকা ঘটনা প্ৰবাহক অধিক গুৰুত্ব দিয়া হয়, যাৰ ফলত গল্পৰ বিষয়বস্তু হৈ পৰে অধিক জটিল আৰু ভাৱগধুৰ। এনেধৰণৰ চিন্তাধাৰা প্ৰকাশিত তেওঁৰ দুটা গল্প হ'ল - পৰীক্ষা আৰু প্ৰলয়-প্ৰলাপ।

মানুহে আনৰ দৃষ্টিত বাহ্যিক ভাবে জাক-জমকতাপূৰ্ণ জীৱন কটোৱাৰ লগতে অজস্ৰ সা-সম্পত্তিৰ গৰাকী হোৱাৰ পাচতো কিদৰে কেৱল মানসিক প্ৰশান্তিৰ অভাৱত হাহাকাৰ কৰে, তাৰ সুন্দৰ চিত্ৰ কুল শইকীয়াৰ 'পৰীক্ষা' গল্পটোত প্ৰকাশিত হৈছে।

গল্পটোত বৰ্ণিত ঘটনা অনুসৰি 'ৰাজীৱ' নামৰ চৰিত্ৰটোৱে এক বাহ্যিক জাক-জমকতাৰে পূৰ্ণ অভাৱহীন জীৱন জীয়াই থকাৰ পাচতো অহৰহ এক মানসিক অশান্তিত দিন কটাব লগা হৈছে আৰু সেই অশান্তিৰ অন্তৰালত নিহিত হৈ আছে তাৰ অতীত জীৱনৰ এক অন্ধকাৰাচ্ছন্ন ঘটনা। এক বিশেষ পৰিস্থিতিত পৰি এক হত্যা কাণ্ড সংঘটিত কৰা ৰাজীৱে আইন আৰু সমাজৰ দৃষ্টিৰ পৰা সাৰি গ'লেও নিজৰ বিবেক দংশনৰ কবলৰ পৰা সাৰি যাব পৰা নাই, যাৰ পৰিণতি স্বৰূপে সি আজীৱন মানসিক অস্থিৰতাত ভুগিছে আৰু সেই অস্থিৰতাৰ পৰা মুক্তি পাবলৈ অৱশেষত সি নৰেণ মাষ্টৰৰ পত্নী ৰফিকাৰ ওচৰত আত্ম-সমৰ্পণ কৰিছে। বাহ্যিক দৃষ্টিৰে চাবলৈ গ'লে আইনৰ দৃষ্টিৰ পৰা সাৰি যোৱা এজন অপৰাধ প্ৰৱন মানসিকতাৰ মানুহে নিজৰ অপৰাধ স্বীকাৰ কৰাটো অস্বাভাৱিক, কিন্তু মনস্তাত্ত্বিক দৃষ্টিৰে চাবলৈ গ'লে প্ৰকৃতাৰ্থত প্ৰতিগৰাকী মানুহৰ অন্তৰতে সুপ্ত হৈ থাকে এক মানৱীয় সত্তা; যাৰ বাবে পৰিস্থিতিত পৰি অপৰাধ সংঘটিত কৰা এগৰাকী অপৰাধীয়েও নিজৰ বিবেকৰ সৈতে অহৰহ এখন অঘোষিত যুঁজত লিপ্ত হৈ থাকিব লগা হয়। সেই মানসিক অৰ্ন্তদ্বন্দৰ পৰিণতি স্বৰূপেই অৱশেষত ৰাজীৱে নিজৰ মানসিক শান্তিৰ বাবে নিজৰ ভুল স্বীকাৰ কৰিবলৈ বাধ্য হৈছে।

একেদৰেই 'প্ৰলয়-প্ৰলাপ' গল্পটোতো পৃথিৱী ধ্বংস হোৱাৰ আগমুহূৰ্তত এটা কোঠাৰ মাজত শেষবাৰৰ বাবে ঐক্যবদ্ধ হৈ বিভিন্ন আলোচনাত ব্যস্ত থকা আসন্ন মৃত্যুৰ বাবে প্ৰতীক্ষাৰত ৰশ্মি, নৃপেন, প্ৰমোদ আদি চৰিত্ৰৰ মানসিক জগতখনত চলি থকা ভিন্নমুখী চিন্তাধাৰাইয়ো আধুনিক মানুহৰ জটিল মনস্তাত্ত্বিক জগতখনকে প্ৰতিফলিত কৰিছে। বাহ্যিক দৃষ্টিত সিহঁতে পৰস্পৰৰ মাজত আলাপ কৰিছে যদিও প্ৰায় একে সময়তে সিহঁতে নিজৰ মনোজগতখনৰ মাজতো বিচৰণ কৰি আছে । সেয়েহে হয়তো নৃপেনে ভাবি পেলাইছে যে তাৰ পত্নী ৰশ্মিয়ে পৃথিৱী ধ্বংসৰ আগ মুহূৰ্তত শেষ বাৰৰ বাবে কথা পাতিবলৈহে প্ৰমোদক ঘৰলৈ মাতি আনিছে। নৃপেনৰ এনে চিন্তাৰ অন্তৰালত নিহিত হৈ আছে কলেজৰ শেষৰ দিনাখন ৰশ্মিৰ অ'টোগ্ৰাফৰ শেষ পৃষ্ঠাত সহপাঠি প্ৰমোদে লিখা এশাৰী কথা - "পৃথিৱী ধ্বংসৰ দিনাখন কমচে কম মনত পেলাবা।" নৃপেনৰ অৱচেতন মনত সঞ্চিত হৈ থকা এই স্মৃতিয়ে বহু বছৰৰ পাচত হঠাৎ তাৰ মনত ক্ৰিয়া কৰিছে, যাৰ ফলত সি জীৱনৰ অন্তিম সময়তো নিজৰ পত্নীক সন্দেহৰ দৃষ্টিৰে চাইছে।

এনেদৰেই কুল শইকীয়াৰ বিভিন্ন গল্পৰ মাজত মানুহৰ জীৱনত মনস্তাত্ত্বিক দিশটোৰ গুৰুত্ব অতি নিখুঁত ৰূপত উপস্থাপিত হৈছে।

১.০৪ কুল শইকীয়াৰ গল্পত তাত্ত্বিক সম্পৰীক্ষা ঃ কুল শইকীয়াৰ গল্পৰ আন এটা উল্লেখযোগ্য দিশ হ'ল- তেখেতৰ গল্পত প্ৰয়োগ হোৱা তাত্ত্বিক সম্পৰীক্ষা। পৰম্পৰাগত গল্প কথন শৈলীৰ পৰা বিচ্যুত হৈ এক পৃথক পৰম্পৰাৰে গল্পৰ ঘটনাৰাজি উপস্থাপন কৰাৰ লগতে সাহিত্যৰ বিভিন্ন তত্ত্বসমূহৰ পৰীক্ষামূলক প্ৰয়োগেৰে গল্প সাহিত্যক এক সুকীয়া বৈশিষ্ট্য প্ৰদান কৰাৰ চেষ্টা কুল শইকীয়াৰ গল্পত সততে পৰিলক্ষিত হয়। তদুপৰি বৈজ্ঞানিক চিন্তাধাৰাৰ প্ৰতি আগ্ৰহী এগৰাকী ব্যক্তি হিচাপে তেখেতৰ গল্পত কল্পবিজ্ঞানমূলক চিন্তাধাৰাৰ সংমিশ্ৰণ তেখেতৰ গল্পৰ আন এক গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ।

আধুনিক অসমীয়া চুটি গল্পত তাত্ত্বিক সম্পৰীক্ষা এক আলোচনাযোগ্য বিষয়। এই ক্ষেত্ৰত পৰম্পৰাগত গল্প কথন শৈলীৰ পৰা সম্পূৰ্ণৰূপে আঁতৰি আহি অগতানুগতিক চিন্তাধাৰাৰে গল্প উপস্থাপন কৰাৰ ক্ষেত্ৰত কুল শইকীয়া অন্যতম। এনে তাত্ত্বিক সম্পৰীক্ষাৰ আধাৰত ৰচনা কৰা তেখেতৰ এটা উল্লেখযোগ্য গল্প হ'ল - ' ১ + ১ = ২ ' শীৰ্ষক গল্পটো। সংখ্যাৰ যোগ, বিয়োগ, পূৰণ, হৰণ আদি পদ্ধতিৰ সৈতে মানুহৰ দৈনন্দিন কাৰ্য-কলাপক মিলাই চোৱাৰ যি অ-গতানুগতিক চিন্তাধাৰা, এনে

চিন্তাধাৰাৰ মাজত লুকাই আছে আমাৰ দৈনন্দিন জীৱনত ঘটি থকা বহুটো 'নিমিলা অংক'ৰ প্ৰতিচ্ছবি। এই সমাজত সততে দেখা পোৱা এই 'নিমিলা অংক'ৰ ধাৰণাটো পাঠকৰ সন্মুখত দাঙি ধৰিবলৈ গৈ গল্পকাৰে অতি কৌশলেৰে দেখুৱাইছে যে চৰকাৰী কামৰ বাবে আবণ্টন হোৱা ধনৰ পৰা আৰম্ভ কৰি সাংবাদিকে যুগুত কৰি আনি প্ৰকাশৰ বাবে সংবাদ মাধ্যমৰ হাতত দিয়া খবৰটোলৈকে, নাইবা ঠিকাদাৰ-ব্যৱসায়ীৰ পৰা আৰম্ভ কৰি ৰাজনৈতিক নেতা-পালিনেতালৈকে সকলোবোৰ এনে কিছুমান নিমিলা অংকৰেই সমষ্টি, যিবোৰ অংকৰ সমাধান ১ + ১ = ২, ২ + ১ = ৩ আদিৰ দৰে কোনো পৰম্পৰাগত গাণিতিক সূত্ৰই উলিয়াব নোৱাৰে। সংখ্যাতত্ত্বৰ ধাৰণাৰে সমাজত প্ৰচলিত সমস্যাৰাজিৰ উপস্থাপনৰ ক্ষেত্ৰত গল্পকাৰগৰাকীৰ যি অগতানুগতিক চিন্তাধাৰা, এনে চিন্তা প্ৰকৃতাৰ্থত অসমীয়া গল্পৰ পৰম্পৰাত নতুন।

কুল শইকীয়াৰ গল্পত তত্ত্বিক সম্পৰীক্ষাৰ বিষয়ে আলোচনা কৰোঁতে আন এক উল্লেখযোগ্য দিশ হ'ল গল্পৰ চৰিত্ৰৰ উপস্থাপনৰ ক্ষেত্ৰত নতুনত্ব। এই ক্ষেত্ৰত এখন 'দুৱাৰ', নিশাৰ 'এন্ধাৰ' নাইবা মানুহৰ মানসপটত অহৰ্নিশে ঘূৰি থকা এটা চিন্তাক গল্পৰ চৰিত্ৰৰ ৰূপত উপস্থাপন কৰাৰ ক্ষেত্ৰত গল্পকাৰৰ যি চিন্তাধাৰা, সিয়ো অসমীয়া চুটি গল্পক নতুন বৈশিষ্ট্যৰে সমৃদ্ধ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ।

২.০০ সামৰণি ঃ

আৰম্ভণিৰ কালৰে পৰা আলোচনী কেন্দ্ৰীক অসমীয়া চুটিগল্পই বিভিন্ন গল্পকাৰৰ চিন্তাৰ পৰশেৰে তথা নিত্য-নতুন সাহিত্যৰ তত্ত্ব আৰু শৈলীৰে সমৃদ্ধ হৈ বৰ্তমানৰ এই সমৃদ্ধ অৱস্থা পাইছেহি। অসমীয়া চুটি গল্পৰ এই যাত্ৰা পথত নিজৰ অৱদান আগবঢ়াই অসমীয়া গল্পক সমৃদ্ধ কৰা গল্পকাৰ কুল শইকীয়াৰ গল্পসমূহ সাম্প্ৰতিক সময়ত এক বহু চৰ্চিত তথা আলোচনাযোগ্য বিষয়। তেখেতৰ গল্পত প্ৰয়োগ হোৱা ন-ন সম্পৰীক্ষাই অসমীয়া চুটি গল্পক পৰম্পৰাগত গল্পশৈলীৰ পৰা পৃথক কৰি এক নতুন মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছে। তদুপৰি পাঠকৰ মনস্তাত্ত্বিক দিশটোৰ প্ৰতি বিশেষ ভাৱে গুৰুত্ব দি ৰচনা কৰা এই গল্পসমূহে পাঠকসমাজকো বৌদ্ধিক ভাবে সচেতন কৰাত বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে।

পৰিশেষত ক'ব পাৰি যে, অসমীয়া চুটি গল্পৰ গতি-প্ৰকৃতি অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰত কুল শইকীয়াৰ গল্পৰ আলোচনা অবিহনে এই আলোচনা সদায় আধৰুৱা হৈ ৰ'ব।

২.০১ সিদ্ধান্ত ঃ

"কুল শইকীয়াৰ গল্প ঃ এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন" শীৰ্ষক আলোচনাপত্ৰখনত সাম্প্ৰতিক সময়ৰ গল্পকাৰ কুল শইকীয়াৰ গল্পৰ বিষয়ে কৰা বিশ্লেষণৰ পৰা নিম্ন উল্লিখিত সিদ্ধান্তসমূহত উপনীত হ'ব পাৰি -

১. কুল শইকীয়াৰ গল্পসমূহৰ গৰিষ্ঠসংখ্যক গল্পই মনস্তাত্ত্বিক, যি সমূহৰ মৰ্ম উপলব্ধি কৰিবলৈ পাঠক সমাজো বৌদ্ধিক ভাৱে সচেতন হোৱাৰ প্ৰয়োজন ।

২. কুল শইকীয়াৰ গল্পসমূহত চেতনাশ্ৰোত ৰীতিৰ প্ৰয়োগ পৰিলক্ষিত হয়।

৩. সাহিত্যৰ নতুন শৈলীৰ প্ৰয়োগৰ লগতে তেখেতৰ গল্পত প্ৰয়োগ হোৱা ন-ন সম্পৰীক্ষাই অসমীয়া চুটি গল্পক এক নতুন মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছে।

৪. সৰ্বোপৰি এগৰাকী সমাজ সচেতন গল্পকাৰ হিচাপে তেখেতৰ গল্পত সমকালীন সমাজখনত বসবাস কৰা মানুহৰ সামাজিক আৰু মানসিক সমস্যাৰ প্ৰতিফলন পৰিলক্ষিত হয়। ❑

প্ৰসংগ সূত্ৰ ঃ ১. https://as.m.wikipedia.org ২ . https://as.m.wikipedia.org
৩ . https://as.m.wikipedia.org

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

গগৈ, লীলা (সম্পা.), আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যৰ পৰিচয়, তৃতীয় সংস্কৰণ, বনলতা গুৱাহাটী, ২০১৩।

বৰুৱা, প্ৰহ্লাদ কুমাৰ, অসমীয়া চুটি গল্পৰ অধ্যয়ন, পুনৰ মুদ্ৰণ, বনলতা, ডিব্ৰুগড়, ২০১৭।

শইকীয়া, কুল, কুল শইকীয়াৰ নিৰ্বাচিত গল্প, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী, ২০১৪।

শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ, অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, পুনৰ মুদ্ৰণ, সৌমাৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ২০১৭।

শৰ্মা, হেমন্ত কুমাৰ, অসমীয়া সাহিত্যত দৃষ্টিপাত, চতুৰ্দশ সংস্কৰণ, বীণা লাইব্ৰেৰী, গুৱাহাটী, ২০১২

POSTAL REGISTRATION NO. GHY/127/2022-24 ❖ Date of Publication : 30th September, 2022 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

एक हृदय हो भारत जननी

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी–781032

मो. 9101541395 / 9101541380, ई–मेल : rastrasewak51@gmail.com